देव ! हम सर्दी, वर्षा, वायुके वेग, अग्नि और छेद भेदको सदा सहा करती हैं । हे त्रिलोकेश्वर ! अब आपकी आज्ञासे इस ब्रह्महत्याको ग्रहण करेंगी ; परन्तु आप हम लोगोंको इससे छूटनेकी उपाय बिचारिये ।

ब्रह्मा बोले, पर्व्वकालमें जो मनुष्य मोहके वशमें होकर तुम लोगोंको छेदन करेगा वा काटेगा, यह ब्रह्महत्या उसहीको अनुगत होगी ।

भीष्म बोले, अनन्तर वृक्ष औषधि और तृण समूह ब्रह्माका ऐसा वचन सुनके उनकी सब तरहसे पूजा करके शीघ्र ही निज निज स्थानपर चले गये । हे भारत ! तिसके अनन्तर लोक पितामह अप्सराओंको आह्वान करके उन्हें मधुर वचनसे धीरज देके बोले, यह वराङ्गना ब्रह्महत्या रे इन्द्रके शरीरसे निकली है, इस लिये मैं कहता हूं, कि तुम लोग इसका अंश ग्रहण करो ।

अप्सरा बोलीं, हे देवेश पितामह ! आपकी आज्ञाके अनुसार हम इसे ग्रहण करनेमें सम्मत हुई हैं, परन्तु इससे जिस प्रकार हमारी निष्कृति हो, आप वही उपाय करिये ।

ब्रह्मा बोले, जो पुरुष रजस्वला स्त्रीसे मैथुन करेगा यह ब्रह्महत्या उस ही समय उसे आक्रमण करेगी, इसलिये तुम लोग अपनी मानसिक चिन्ता त्याग दो ।

भीष्म बोले, हे भरतप्रवर ! अप्सराओंने "ऐसा ही होवे" यह वचन कहके प्रसन्नचित्त होकर निज निज स्थानमें जाकर क्रीड़ा करने लगीं । फिर महातपस्वी त्रिलोककर्त्ता प्रजापतिने जलको स्मरण किया, स्मरण करते ही वह आके उपस्थित हुआ । हे राजन् ! वह अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्माके निकट जाके उन्हें प्रणाम करके यह वचन बोला । हे देव अरिन्दम ! आपके शासनके अनुसार हम आपके निकट आये हैं, हे प्रभु लोकेश ! हमें क्या करना होगा, उसके लिये आज्ञा करिये ।

ब्रह्मा बोले, यह महाभयावनी ब्रह्महत्या वृत्रासुरसे प्रकट होके इन्द्रके शरीरमें प्रविष्ट हुई थी, इस समय तुम इसका अंश ग्रहण करो ।

जल बोला, हे प्रभु लोकेश ! आपने मुझसे जो कहा वही होगा, परन्तु समयके अनुसार मैं जिस प्रकार इससे छूटूं आपको वैसा ही उपाय सोचना उचित है । हे देवेश ! आप ही सब जगत्के एक मात्र अवलम्ब हैं, आपको छोड़के दूसरे किसको प्रसन्न करें, जो हमें क्लेशसे उबारेगा ।

ब्रह्मा बोले, जो मनुष्य मोहके वशमें होकर अल्प विचार करके तुम्हारे ऊपर मूत्र, श्लेष्म और विष्ठा परित्याग करेगा, यह ब्रह्महत्या शीघ्र ही उसे अवलम्बन करेगी और उसमें ही वास करती रहेगी, इस ही प्रकार तुम्हारी इससे निष्कृति होगी, यह मैंने तुम्हारे समीप यथार्थ कहा है ।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर ! अनन्तर ब्रह्महत्या इन्द्रको परित्याग करके ऊपर कहे हुए स्थानोंमें गई । हे प्रजानाथ ! इस ही प्रकार ब्रह्महत्या इन्द्रके शरीरमें प्रविष्ट हुई थी, उन्होंने पितामहकी कृपासे उससे छूटकर अन्तमें उनकी आज्ञासे अश्वमेध यज्ञ किया । हे महाराज ! मैंने सुना है, कि देवराज ब्रह्महत्यासे आक्रान्त होनेपर शेषमें अश्वमेध यज्ञ करके पवित्र हुए थे । हे पृथ्वीनाथ ! देवराजने सहस्रारि शत्रुओंको संहार करके श्रीसे युक्त होकर आनन्दित हुए थे । हे पृथापुत्र ! वृत्रासुरके रुधिरसे जो शिखण्ड नाम कुक्कुट उत्पन्न हुए थे, वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और विशेष करके दीक्षित तपस्वियोंके अभक्ष्य हैं । हे कुरुनन्दन ! तुम भी सब समयमें इन सब द्विजातियोंके प्रिय कार्य्य को सिद्ध करो, येही पृथ्वी मण्डलपर देवतारूपसे विख्यात हैं । हे कुरुकुल धुरन्धर ! इस ही प्रकार अत्यन्त तेजस्वी सुरपतिने सूक्ष्मबुद्धिके सहारे उपाय रचके महासुर

वृत्रको मारा था। हे कुन्तीनन्दन! तुम भी शत्रुनाशन देवराज आखण्डलकी भांति अखण्ड पृथ्वीमण्डलपर अपराजित रहोगे। जो प्रति पर्व्वमें इस दिव्य देवेन्द्र कथाको विप्रोंके बीच कहेंगे, उन्हें कभी पापस्पर्श न कर सकेगा। हे तात! तुम्हारे निकट यह सुरपति और वृत्रासुरका अत्यन्त अद्भुत महत् कर्म्म वर्णन किया अब क्या सुननेकी अभिलाषा करते हो?

२८१ अध्याय समाप्त।

वृत्र बध समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे सर्व्वशास्त्र बिशारद महा प्राज्ञ पितामह! वृत्रबध निबन्धनसे इस बिषयमें मुझे यह पूछनेकी इच्छा है, कि आपने जो कहा है, कि वृत्रासुर ज्वरसे मोहित होकर इन्द्रके जरिये वज्रसे मरा। हे महाप्राज्ञ! वह ज्वर किस प्रकार और कहांसे उत्पन्न हुआ था। उस ज्वरकी उत्पत्तिके विषयको मैं यथार्थ रूपसे सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, हे भारत! इस लोक बिख्यात् ज्वरकी उत्पत्तिका जैसा बिषय है, उसे बिस्तारके सहित कहता हूं सुनो। हे महाराज! पहिले समयमें सुमेरु पर्व्वतपर त्रिलोकपूजित, सब रत्नोंसे बिभूषित और सवितमण्डलाधिष्ठित ज्योतिष्क नाम एक शटङ्ग था। हे भारत! सब लोकोंके बीच वह शटङ्ग ही अप्रमेय और अधर्षणीय था, देवोंके देव सुवर्ण भूषित पर्य्यङ्कको भांति उस शैलतलमें बैठकर बिराजते थे। शैलराजपुत्री सदा उनके पार्श्ववर्त्तिनी रहके शोभा पारही थीं; और महानुभाव देववृन्द, अत्यन्त तेजस्वी वस्तुगण, भिषग्वर महात्मा दोनों अश्विनीकुमार यक्षोंके राजा कैलासवासी गुह्यकोंसे घिरे हुए श्रीमान् कुबेर और महामुनि शुक्र उस महात्माकी उपासना कर रहे थे। सनत्कुमार आदि महर्षि अङ्गिरा आदि देवऋषि, बिश्वावसु नाम गन्धर्व्व, महर्षि नारद और पर्व्वत तथा बहुतसी अप्सरा वहांपर उपस्थित हुईं। उस समय बिबिध सुगन्धियुक्त सुखस्पर्श पवित्र और कल्याणकर वायु बहने लगा वृक्ष सब ऋतुके पुष्पोंसे युक्त होकर फूलोंसे सुशोभित हुए। हे भारत! बिद्याधर, सिद्ध और तपस्वी लोग देवोंके देव पशुपतिकी सब प्रकारसे उपासना करने लगे। हे महाराज! अनेक रूपवाले भूतवृन्द, महा रौद्र राक्षसगण-महाबलवान पिशाच और महादेवके अनेक रूप तथा नाना शस्त्रोंको धारण करके प्रसन्न चित्तवाले सब सेवक वहांपर अग्निके समान रूप धरके स्थित थे। भगवान् नन्दी निज तेजसे प्रकाशित होकर प्रज्वलित शूल लेकर महादेवकी आज्ञानुसार वहां खड़े थे। हे कुरुनन्दन! सब तीर्थोंके जलसे उत्पन्न हुई सरिद्वरा गङ्गा मूर्त्तिमान् होकर उस देवकी उपासना कर रही थीं। वह महातेजस्वी भगवान् महादेव इस ही प्रकार देवर्षि और देवताओंसे सब प्रकार पूजित होकर वहां निवास करते थे, कुछ समयके अनन्तर दक्ष नामक प्रजापतिने पूर्व्वोक्त बिधानके अनुसार यज्ञ करना आरम्भ किया। इन्द्रादि सब देवता उस समय सम्मत होके उनके यज्ञमें जानेके अभिलाषी हुए। ऐसा सुना जाता है, कि देवताओंने उन महादेवकी अनुमतिके अनुसार अर्क और गङ्गा द्वारमें गमन किया था। उस समय साध्वी शैलराजपुत्री देवताओंको जाते हुए देखकर निजपति देवोंके देव पशुपतिसे यह वचन बोली, हे तत्वज्ञ भगवन्! ये इन्द्र आदि देवता कहां जा रहे हैं। उसे आप यथार्थ रीतिसे कहिये; मुझे अत्यन्त सन्देह होरहा है।

महादेव बोले, हे महाभागे! दक्ष नाम प्रजापतिने अश्वमेध यज्ञ आरम्भ किया है, देवता लोग उस ही यज्ञमें गये हैं।

शर्व्वाणी बोली, आपने किस लिये उस

यज्ञमें गमन नहीं किया और किस प्रतिषेधके अनुसार आपका वहां जाना नहीं होता है।

महादेव बोले, हे महाभागे! पहले समयमें देवताओंने जो अनुष्ठान किया था, उस किसी यज्ञमें ही मेरा भाग कल्पित नहीं हुआ हे वरवर्णिनि! पूर्व्व-अनुष्ठानपद्धतिके क्रमसे देवता लोग धर्म्मके अनुसार मुझे यज्ञभाग प्रदान नहीं करते।

भवानी बोली, हे भगवन्! आप गुणोंसे सब भूतोंके बीच अत्यन्त प्रभावसे युक्त हैं; तेज, यश और श्रीसम्पत्तिसे सबसे ही अजय और अधृष्य हैं, हे अनघ महाभाग! इसलिये आपके यज्ञभाग प्रतिषेधसे मुझे बहुत ही दुःख उत्पन्न हुआ है और सब शरीर शिथिल होरहा है।

भीष्म बोले, हे राजन्! देवीने देवोंके देव पशुपतिसे ऐसा कहके दह्यमान अन्तःकरणसे मौनावलम्बन किया। अनन्तर भगवान् देवीके हृदयके चिकिर्षित विषयको जानके नन्दीको "तुम निवास करो" इस ही प्रकार आज्ञा करी अन्तमें वह सर्व्वयोगेश्वर महातेजस्वी पिनाकधारी महादेव योगबल अवलम्बन करके भयङ्कर अनुचरोंके सहारे सहसा उस यज्ञको विध्वंश करनेके लिये उद्यत हुए। हे राजन्! भूतोंके बीच किसी किसीने अत्यन्त दारुण शब्द करना आरम्भ किया, कोई विकट रूपसे हंसने लगे, किसीने उस यज्ञस्थलमें रुधिर प्रवाहके जरिये हव्यवाहको पूरित कर दिया। कोई कोई विकृतानन प्रमथगण यज्ञके यूपोंको उखाड़के घूमने लगे किसी किसीने मुखके जरिये परिचारकोंको ग्रास कर लिया। हे राजन्! अनन्तर उस यज्ञने सब प्रकारसे वध्यमान होकर हरिनका रूप धरके आकाशको ओर गमन किया। निग्रहानिग्रहमें समर्थ शूलपाणिने उस यज्ञको मृगरूप धरके जाते हुए जानके धनुष बाण ग्रहण करके उसका पीछा किया। तिसके अनन्तर क्रोधके कारण उस अत्यन्त तेजस्वी महादेवके ललाटसे महाघोर पसीनेको बूंद प्रकट हुई वह पसीनेकी बूंद पृथ्वीपर गिरते ही उस समय कालानल सदृश अत्यन्त महान् अग्नि प्रकट हुई। हे पुरुषप्रवर! तब उस अग्निसे एक भयङ्कर पुरुष उत्पन्न हुआ। वह अत्यन्त ह्रस्व शरीरवाला था, उसके दोनों नेत्र लाल, श्मश्रु, पिङ्गलवर्ण, केश ऊपरको बढ़े हुए थे और बाज तथा उलूकको भांति उसका सब शरीर रोमयुक्त था। वह लाल वस्त्र काला वर्णवाला प्रबलपराक्रमी कराल पुरुष यज्ञको इस प्रकार जलाने लगा, जैसे अग्नि तृणसमूहको भस्म करती है। उस पुरुषने सब भांतिसे देवताओं और ऋषियोंकी ओर दौड़के उपद्रव मचाना आरम्भ किया, देवता लोग उससे डरके दशों दिशामें भाग गये। हे भरतश्रेष्ठ महाराज! उस समय उस पुरुषके भ्रमण करनेसे पृथिवी अत्यन्त ही विचलित हुई और सारा जगत् हाहाकार करने लगा,—उसे देखके प्रजापति पितामह महादेवके निकट उपस्थित हुए।

ब्रह्मा बोले, हे प्रभु सर्व्व देवेश्वर! सब देवता तुम्हें यज्ञका भाग प्रदान करेंगे, इसलिये तुम क्रोध परित्याग करो। हे परन्तप! हे महादेव! ये सब देवता और ऋषि लोग तुम्हारे क्रोधसे किसी प्रकार शान्ति लाभ करनेमें समर्थ नहीं हैं। हे देवश्रेष्ठ! हे धर्म्मज्ञ! जो पुरुष तुम्हारे स्वेदबिन्दुसे उत्पन्न हुआ है, वह लोकके बीच ज्वर नामसे विख्यात होगा। हे प्रभु! तुम्हारे एक भूतके तेजको धारण करनेमें सारी पृथ्वी भी समर्थ नहीं है, इसलिये इसे कई प्रकारसे विभक्त करो महादेवने प्रजापतिका वचन सुन और अपना यज्ञ भाग प्रकल्पित हुआ जानके अमित तेजस्वी सब ऐश्वर्य्यसे पूर्ण शिवने ब्रह्मासे कहा कि "ऐसा ही होगा।" तब पिनाकधारी महादेव प्रजापतिके दिये हुए यथा उचित यज्ञभागको पाकर परम प्रीतिके सहित उत्साह युक्त हुए और वह सर्व्वधर्म्मज्ञ

सदाशिव सब प्राणियोंकी शान्तिके निमित्त प्रागुक्त ज्वरको अनेक प्रकारसे विभक्त करने लगे। हे तात! उन्होंने जिस जीवमें जिस प्रकार उस ज्वरको स्थापित किया उसे सुनो। हे धर्मज्ञ! हाथियोंमें शिरस्ताप, पर्व्वतोंमें शिलाजीत, जलमें सिवार, सांपोंमें केचुलि, और भेयोंमें खुर रोग पृथिवीमें ऊसरपन, पशुओंमें दृष्टि अवरोध, घोड़ोंमें गल छिद्रके मांसखण्ड, मोरोंमें शिखोद्भेद और कोकिलोंमें नेत्र रोग, ये सबको उक्त महानुभावने ज्वर रूपसे वर्णन किया है और मैंने ऐसा सुना है, कि मेष जातीय पशुमात्रमें पित्तभेद ज्वर रूपसे निर्णीत हुआ है। हे धर्मज्ञ भारत! यह ज्वर मनुष्योंके जन्म मरण और जन्म मरणके मध्यकालमें सदा मनुष्य शरीरमें प्रवेश करता है। महादेवका तेज स्वरूप यह अत्यन्त दारुण सर्व्वनियन्ता ज्वर सब प्राणियोंका नमस्य और माननीय है। धार्म्मिक प्रवर वृत्रासुर इस ही ज्वरसे आक्रान्त होके जमुहाई लेने लगा, तब देवराजने उसके ऊपर वज्र चलाया था। हे भारत! इन्द्रका चलाया हुआ वह वज्र वृत्रासुरके शरीरमें प्रविष्ट होके उसे बिदार किया था। महायोगी महासुर वृत्रने वज्रसे मरकर अत्यन्त तेजसे विष्णुके परम धाममें गमन किया, उस समय उसकी विष्णुभक्तिसे यह सब जगत् व्याप्त हुआ था, इसलिये वृत्रासुरने युद्धमें मरके विष्णुका स्थान प्राप्त किया। हे पुत्र! यह मैंने तुम्हारे निकट वृत्र संक्रान्त महत् ज्वरका विषय विस्तारके सहित कहा है, अब दूसरा कौनसा विषय वर्णन करूं; जो लोग निर्भय चित्त और सावधान होकर इस ज्वरकी उत्पत्तिका विषय सदा पाठ करते हैं, वे रोग रहित, अत्यन्त सुखी और आनन्दित होकर सब अभिलषित विषयोंको पाते हैं।

२८२ अध्याय समाप्त।

जनमेजय बोले, हे ब्रह्मन्! वैवस्वत मन्वन्तरमें प्रचेताके पुत्र प्रजापति दक्षका अश्वमेध यज्ञ किस प्रकार विनष्ट हुआ था। देवीको क्रोधित जानके सर्व्वमय महादेव क्रुद्ध हुए थे; फिर दक्षने उनकी कृपासे पुनर्व्वार किस प्रकारसे उस यज्ञको पूर्ण किया था। मैं इसे ही जाननेकी इच्छा करता हूं, इसलिये आप यथार्थ रीतिसे उसे वर्णन करिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पहिले समयमें हिमालय पर्व्वतपर गन्धर्व्व अप्सराओंसे युक्त अनेक वृक्ष लताओंसे परिपूरित गंगाद्वारमें दक्ष प्रजापतिने यज्ञ किया। उस यज्ञमें भूर्लोक, स्वर्गलोक और आकाशचारी सब लोग ऋषियोंके सहित धर्म्मात्मा प्रजापति दक्षके निकट हाथ जोड़के उपस्थित हुए थे। देवता, दानव, गन्धर्व्व, पिशाच, सर्प, राक्षस और हाहा हूहू नाम गन्धर्व्व, तथा तुम्बुरु, नारद, विश्वावसु, विश्वसेन आदि गन्धर्व्व, समस्त अप्सरा, आदित्यगण, वसु, रुद्र, साध्य और मरुद्गण आदि सब देवता इन्द्रके सहित वहांपर आये थे। उष्मपा, सोमपा, धूमपा और आज्यपा आदि ऋषि भी पितरों तथा ब्रह्माके सहित वहां इकट्ठे हुए थे। ये सब तथा दूसरे बहुतेरे प्राणी जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज, ये चारों प्रकारके जीव आमन्त्रित होके वहां उपस्थित हुए थे। निमन्त्रित देवतावृन्द निज निज स्त्रियोंके सहित विमानोंमें निवास करते हुए प्रज्वलित अग्निकी भांति बिराजते थे। दधीचि उन लोगोंको देखकर क्रुद्ध होके बोले, जिस यज्ञमें भगवान् रुद्रदेव पूजित न हों, वह यज्ञ अथवा धर्म्म नहीं है; समयकी कैसी उलटी गति है, सबका ही सर्व्वनाश उपस्थित हुआ है, इस महायज्ञमें महाघोर प्राणिनाश होनेवाला है, मोह वशसे कोई उसे देखने वा जाननेमें समर्थ नहीं होता है। महायोगी दधीचि इतना कहके ध्यानयुक्त नेत्रसे देखने लगे।

उन्होंने भगवान् महादेव तथा वरदात्री देवीका दर्शन किया और देखा कि महात्मा नारद देवीके निकट वर्त्तमान हैं। योगीश्वर महर्षिने योगबलसे यह सब देखकर परम सन्तुष्ट होके बिचारा, कि इस यज्ञमें जब भगवान् शङ्कर नहीं निमन्त्रित हुए, तब देवताओंने मिलके एकमत किया है, इससे इसके निकटसे कुछ दूरपर मुझे निवास करना उचित बोध होता है। दधीचि मनहीमन ऐसा निश्चय करके वहांसे पृथक् होकर बोले, कि पहले मैंने कभी मिथ्या बचन नहीं कहा और कदाचित कहूंगा भी नहीं; देवता और ऋषियोंके बीच सत्य बचन ही कहता हूं,—अपूज्योंकी पूजा करने और पूज्य पुरुषकी पूजा न करनेसे मनुष्य नर हत्याके समान पापभाजन होता है। देखो जगत्पति विश्वस्रष्टा यज्ञभोक्ता सर्व्वेश्वर पशुपति इस अध्वरमें आरहे हैं।

दक्ष बोले, हाथमें त्रिशूल लिये जटाजूटधारी जो ग्यारह रुद्रगण विद्यमान हैं, वे मुझे अविदित नहीं हैं; परन्तु मैं महादेवको विशेषरूपसे मालूम न कर सका।

दधीचि बोले, जब महादेव इस यज्ञमें निमन्त्रित नहीं हुए, तब मुझे बोध होता है, सब देवताओंने आपसमें सलाह करके एकता की है; जो हो दक्षका यह वृहत् यज्ञ किसी प्रकार भी सिद्ध न होगा।

दक्ष बोले, मैंने इस सुवर्णपात्रमें बिधि और मन्त्रपूत समस्त हवि स्थापित करके यज्ञपति अप्रतिम विष्णुके उद्देश्यसे समर्पण किया। ये सर्व्वव्यापी यज्ञपति विष्णु यज्ञभाग ग्रहण करनेके अधिकारी हैं, इसलिये उनके उद्देश्यसे आहुति देनी विहित है।

देवी बोली, मैं किस प्रकार दान, नियम वा तपस्या करूं, जिससे कि मेरे पति अचिन्त्य शक्ति भगवान् इस समय आधा वा तीसरा भाग पावेंगे।

नित्य सन्तुष्ट भगवान निज पत्नीको क्षुब्धचित्तसे ऐसा कहते हुए सुनकर बोले, हे कृशोदराङ्गि देवि! क्या तुम मेरी महिमा भूल गई हो; तुम्हारा ऐसा बचन क्या युक्तिसङ्गत हुआ है। हे विशाललनयनो! मैं जानता हूं, कि ध्यान हीन असत् पुरुष ही मुझे नहीं जानते; इन्द्रके सहित सब देवता और तीनों लोक तुमसे युक्त मोहके जरिये सब प्रकारसे बिमूढ़ हुए हैं। प्रस्तोता साधु लोग अध्वरमें मेरी स्तुति किया करते हैं; साम गान करनेवाले ब्राह्मण रथन्तर सामरूपी मेरी महिमा गाया करते हैं; ब्रह्मविद् ब्राह्मण लोग मेरा यजन किया करते हैं और यजुर्व्वेदी अध्वर्य्यगण मेरे उद्देश्यसे यज्ञभाग प्रदान करनेमें तत्पर हुआ करते हैं।

देवी बोली, अत्यन्त साधारण पुरुष भी स्त्रियोंके निकट निःसन्देह आपकी प्रशंसा और गर्व्व किया करते हैं।

भगवान बोले, हे तनुमध्यमे वरारोहे वरवर्णिनि देवेशि! मैं अपनी प्रशंसा नहीं करता हूं, इस समय जिसे उत्पन्न करता हूं उसे देखो भगवानने प्राणसे भी अधिक प्यारी निज पत्नी उमासे ऐसा कहके निज वक्रसे ज्वालमाला संयुक्त शरीरवाले अनेक प्रकार भुजरूपी शस्त्रधारी महाघोर प्रहर्षण एक अद्भुत भूत उत्पन्न किया। वह भूत उत्पन्न होतेही भगवानके समीप हाथ जोड़के बोला, कि "क्या आज्ञा है।" महादेवने उसे दक्षके यज्ञको विध्वंस करनेकी आज्ञा दी।

अनन्तर महादेवके वक्रसे उत्पन्न हुआ सिंहके समान उस वीरने अकेलेही देवीका क्रोध शान्त करनेके लिये दक्षके यज्ञको खेलकी भांति विध्वंस किया। महाभीमा महाकाली माहेश्वरी मन्युवशसे महादेवकी आज्ञा लेकर उनके चरणमें प्रणाम करके आत्मकर्म्म साक्षिस्वरूपसे साधन विषयमें उसके सहित अनुगामिनी हुईं, पराक्रममें अपने समान बल और रूपसे युक्त

उन भगवान महेश्वरने ही क्रोध स्वरूप धारण किया। अनन्त बल वीर्यसे युक्त अशेष पौरुषके आधार महादेव देवीके मन्यु-मार्ज्जनके निमित्त बीरभद्र नामसे विख्यात हुए। उन्होंने निज रोमकूपोंसे रौम्य नामक गणेश्वरोंको उत्पन्न किया। अनन्तर वे सब रुद्रके समान वीर्य्यवान और पराक्रमशाली रौद्रगण दक्ष यज्ञको विध्वंस करनेके लिये शीघ्रही वहांसे बाहर हुए। सो हजार भीमरूप महाकाय गणोंने किलकिला शब्दसे आकाशमण्डलको परिपूरित किया। यज्ञस्थलमें उनके उस भयङ्कर शब्दसे देवता लोग भयभीत हुए पर्वत टूटने लगे और पृथ्वी कांपने लगी; वायु घूमते हुए चलने लगा और समुद्रका जल उथलने लगा; अग्नि निस्तेज हुई और सूर्य्य प्रभाहीन होगया; ग्रह, नक्षत्र, चन्द्रमण्डल प्रकाशरहित होगये; देव, ऋषि और मनुष्य अप्रकाशित होकर स्थित हुए। इसी प्रकार सब जगत अन्धकारसे छिप गया, महादेवके अनिमन्त्रणसे अवमानित होकर रुद्रगण सबको जलाने तथा उनके ऊपर प्रहार करनेमें प्रवृत्त हुए। किसी किसीने घोर प्रचण्ड मूर्त्तिधारण करके यज्ञ यूपोंको उखाड़ा, कोई यज्ञस्थलके सब लोगोंको मर्द्दन करने लगी। वायुके समान वेगशाली मनोजव गणोंने दौड़के यज्ञपात्रों और दिव्य आभरणोंको चूर्ण कर दिया। उक्त यज्ञपात्र और सब आभरण टूटनेपर आकाशमण्डलमें स्थित तारा समूहकी भांति दिखाई देने लगी। दिव्य अन्न, पीने और खानेकी वस्तुओंकी पर्व्वतके समान राशि तथा घृत, दूधरूपी कीचड़ और दही मट्ठेरूपी जल तथा खांड़ शक्कर रूपी बालूसे युक्त प्रकाशमान षड्रसवाली गुड़कुल्या मनोरम दिव्य क्षीरकी नदियें बहती हुई दिखाई देने लगीं। रुद्रकोपसे कालाग्निके समान महाकाय गण अनेक प्रकार मांस, बहुतसी खाने पीने और दिव्य लेह्य तथा चुष्य वस्तुओंको अनेक प्रकारके रूपसे भोजन करने लगे, किसी किसीने प्रायुक्त भक्ष्य वस्तुओंको लुप्त किया किसीने उठाके फेंक दिया। विविध रूपवाले गणोंने देवताओंकी सेनामें सब तरहसे विभीषिका प्रदर्शित करके उसे विध्वस्त कर दिया और सुरयोषितोंको गिराके क्रीड़ा करने लगे। रुद्रकर्म्मा बीरभद्रने रुद्र क्रोधके वशमें होकर यत्नपूर्व्वक देवताओंसे रक्षित उस यज्ञको शीघ्र ही भस्म कर दिया और यज्ञका सिर काटके प्रसन्न होकर सर्व्वभूत भयङ्कर भैरव नाद करने लगे। अनन्तर ब्रह्मा आदि देवताओं, और प्रजापति दक्षने हाथ जोड़के कहा, "आप कौन हैं; यही वर्णन करिये।"

बीरभद्र बोले, मैं रुद्रदेव नहीं हूं, ये भी देवी नहीं हैं, और हम लोग यहांपर भोजन करनेके लिये नहीं आये हैं। देवीको क्रुद्ध हुई जानके सर्व्वात्मा महादेवने क्रोध किया है। मैं विप्रेन्द्रगणोंको देखने वा कौतूहलसे यहां नहीं आया हूं, तुम यह निश्चय जानो, कि मैं तुम्हारे यज्ञको विध्वंस करनेके निमित्त आया हूं। मैं रुद्रकोपसे उत्पन्न होके बीरभद्र नामसे विख्यात् हूं, और ये भी देवीके क्रोधसे प्रकट होके भद्रकाली नामसे विख्यात् हुई हैं। हम दोनों महादेवसे प्रेरित होकर इस यज्ञ स्थलमें उपस्थित हुए हैं। हे विप्रेन्द्र! इसलिये अब तुम देवोंके देव उमापतिकी शरणमें जाओ, महादेवका क्रोध भी उत्तम है, और दूसरेसे वर प्राप्त होना भी कार्य्यकारी नहीं है।

धार्म्मिक प्रवर प्रजापति दक्ष बीरभद्रका बचन सुनके महादेवको प्रणाम करके स्तुतिवाक्यसे उन्हें प्रसन्न करनेमें प्रवृत्त हुए।

दक्ष बोले, "मैं दक्ष प्रजापति हूं, इस समय नित्य, निश्चल, अव्यय, समस्त जगत्के ईश्वर, महानुभाव महादेव ईशानका शरणागत होता हूं।" जिस यज्ञमें इकट्ठी की हुई यज्ञीय वस्तुओंके जरिये सब देवता और तपस्वी ऋषिवृन्द बुलाये गये हैं, उसमें विश्वकर्म्मा महेश्वर निम-

न्वित नहीं हुए ; इसीसे महादेवीने क्रोधित होकर इस यज्ञ स्थलमें निज गणोंको भेजा है यज्ञस्थलके जलने ब्राह्मणोंके भागने और भयङ्कर अग्नि तारासमूहमें प्रविष्ट होनेपर तथा परिचारकोंके शूलसे भिन्न हृदय होके चिल्लाते रहनेपर गणोंने निखात यूपोंको उखाड़के उसहीसे सेवकोंको मारते हुए इधर उधर भगाना आरम्भ किया, मांसलोभी गिद्ध सब ओर उड़ने लगे, उनके पंखकी वायुसे सब लोक कांप उठे, सैकड़ों सियार भयावनी बोली बोल रहे थे, यक्ष, गन्धर्व्व, पिशाच, सर्प और राक्षसोंसे यज्ञभूमि भर गई, शत्रुविजयी अनेक नेत्रवाले देवोंके ईश्वर महादेव यत्नपूर्व्वक वक्रसे प्राण और अपान वायुको निरोध करके सब तरफ देखते हुए सहसा अग्निकुण्डसे प्रकट भये। महादेव उस समय सम्वर्त्तक समान सहस्र सूर्य्यका तेज धारण करके हंसकर दक्षसे बोले, कहो तुम्हारा कौनसा कार्य्य सिद्ध करूं? अनन्तर देवगुरुने यज्ञाध्याय श्रवण कराया, तब प्रजापति दक्ष भयभीत, शङ्कित तथा डरवश होकर दुःखित शरीरसे आंखोंमें आंसू भरके हाथ जोड़कर कहने लगे।—दक्ष बोले, हे भगवान! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हुए हों, अथवा यदि मैं आपका प्रियपात्र समझा जाऊं, अथवा मुझपर कृपा करके यदि आप वरदान करें, तो मैंने बहुत समयतक अनेक प्रयत्नोंसे जो जो सब यज्ञकी सामग्री सञ्चय की थी, जो आपकी आज्ञाके अनुसार खायी, पीयी, जलाई, नष्ट बिध्वंस और चूर की गई, मेरे यज्ञकी शाधन वे सब वस्तु जिसमें व्यर्थ न हों, मैं यही वर मांगता हूं।

धर्म्माध्यक्ष देव बिरूपाक्ष त्रिलोचन प्रजानाथ रविनेत्र भगवान दक्षसे "वही होगा" ऐसा बचन कहा अनन्तर दक्ष महादेवसे वर पाकर दोनों जानु पृथ्वीपर रखके एक सौ आठ नामके सहारे वृषभध्वजकी स्तुति करने लगे।

२८३ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पापरहित पितामह! प्रजापति दक्षने जिन सब नामोंके जरिये महादेवकी स्तुति की थी आप वह सब वर्णन करिये, मुझे उन नामोंके सुननेकी अत्यन्त श्रद्धा होरही है।

भीष्म बोले, हे भारत! अद्भुतकर्म्म करनेवाले महादेवके अप्रकाश्य और प्रकाश्य नामोंको सुनो।

दक्ष बोले, हे जगन्निर्माण क्रीड़ा परायण देवारि बल सूदन देवेश! तुम इन्द्रियों और बुद्धिके बलको विशेष रूपसे स्तब्ध किया करते हो, तुम इन्द्रादि देवताओं और वाण प्रभृति दानवोंसे पूजित हो, तुम सहस्राक्ष अर्थात् सर्व्वज्ञ हो और हम लोगोंसे विलक्षण व्यवहित विषयोंको जानते हो, इसीसे विरूपाक्ष हो; तुम सोम सूर्य्य और अग्नि रूपी तीन नेत्र धारण करते हो, इस ही लिये त्रिलोचन कहाते हो; तुम यज्ञाधिपति कुबेरके ऊपर प्रीति किया करते हो इससे तुम्हें नमस्कार है। हे देव! सब दिशाविभाग ही तुम्हारे कर चरणके समीप विद्यमान हैं, सब दिशामें ही तुम्हारे नेत्र, सिर और मुख प्रकाशित होरहे हैं; सर्व्वत्र तुम्हारे श्रोत्र (कान) फैले हुए हैं, तुम लोकके बीच सब वस्तुओंमें परिपूरित होकर निवास कर रहे हो, इसलिये तुम्हें नमस्कार है। तुम शंकुकर्ण, महाकर्ण, कुम्भकर्ण, अर्णवालय, गजेन्द्रकर्ण, गाकर्ण और पाणिकर्ण, इन सात प्रकारके निजगणोंसे अभिन्न हो, इसलिये तुम्हें नमस्कार है। तुम शतोदर, शतावर्त्त और शतजिह्वरूपी विश्वरूप हो, इसलिये तुम्हें नमस्कार है। तीनों सन्ध्या, गायत्री हो, जपमें रत मुनि लोग तुम्हारी ही महिमा गाया करते हैं, सूर्य्यको उपासनामें तत्पर मनुष्य तुम्हें ही सवितमण्डलाधिष्ठित जानके उपासना करते हैं। मुनि लोग तुम्हें ही शतक्रतु समझते और तुम्हें ही

सर्व्व उपाधिगम्यजल गत आकाशकी भांति प्रसङ्ग बोध किया करते हैं।

हे समुद्र और आकाशरूप महामूर्त्ते! तुममें भूमि, जल, वायु, अग्नि, आकाश, सूर्य्य, चन्द्रमा और यजमानस्वरूप अष्टमूर्त्तिके बीच गोसारमें गौओंकी भांति सब देवता ही निवास करते हैं। तुम्हारे इस शरीरमें चन्द्रमा, अग्नि, आदित्य, वरुण, विष्णु, ब्रह्मा और बृहस्पतिको देखता हूं। तुम्हीं सब ऐश्वर्य्यसे युक्त होकर सत् और असत् पदार्थोंके कारण स्वरूप हो, तुम ही उत्पत्ति और प्रलयके कारण हो। तुम्हीं वरदाता, भव, सर्व्व और रुद्रदेव हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम अन्धक दानवके मारनेवाले पशुपति हो, इससे तुम्हें सदा नमस्कार है। तुम त्रिजटा, त्रिशीर्ष, त्रिशूलपाणि हो; तुम शास्त्र, आचार्य्य और ध्यानरूप तीन नेत्र धारण करते हो, इस ही कारण त्र्यम्बक और चन्द्रमा, सूर्य्य तथा अग्निरूपी तीनों नेत्र प्रकट किये हो, इसीसे त्रिनेत्र कहाते हो, त्रिपुर दानवका वध करनेसे तुम्हारा त्रिपुरघ्न नाम हुआ है, इससे तुम्हें नमस्कार है। सबके संहार करनेमें समर्थ होनेसे तुम्हारा चण्डनाम हुआ है, तुम अपनेमें जगत्को धारण करनेमें समर्थ हो, इसीसे कुम्भ नामसे विख्यात हुए हो, तुम ब्रह्माण्ड स्वरूप हो और ब्रह्माण्डको धारण कर रहे हो; तुम सबके शासनकर्त्ता होनेसे दण्डी नामसे अभिहित हुआ करते हो, तुम सीधे और टेढ़े हो; तुम दण्डधर और परिव्राजक हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम ऊर्द्ध दंष्ट्र और ऊर्द्ध केश हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम विशुद्ध हो और जगत् रूपसे विस्तृत हो; तुम विलोहित धूम्रवर्ण और नीलग्रीव हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम विरूप हो तथा तुम्हारे प्रतिरूपमें कोई भी नहीं है और तुम शिवस्वरूप हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम सूर्य्यमण्डल स्वरूप हो और सूर्य्यमण्डलके मध्यवर्त्ती परमेश्वर तथा सूर्य्यके समान पताकायुक्त हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम प्रमथनाथ, वृषस्कन्ध, धनुर्द्धारी, शत्रुदमन, दण्डधारी और पर्णचीर पटधारी हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम हिरण्यगर्भ, हिरण्यकवच, हिरण्यके जरिये कृतचूड़ और हिरण्यपति हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम स्तुत, स्तुत्य और स्तूयमान हो, तुम्हीं सर्व्वस्वरूप, सर्व्वभक्ष और सब भूतोंकी अन्तरात्मा हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम होता और मन्त्रस्वरूप हो, तुम ही शुक्लवर्ण ध्वज पताकाशाली हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम समस्त जगत्के नाभिस्थानीय हो, कार्य्य कारण प्रपञ्चरूप और सब आवरणोंके आवरक हो इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम कृशनास, कृशाङ्ग कृश और संहृष्ट हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम किलकिला शब्द विशेष स्वरूप हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम शयमान, शयित, उत्थित, अवस्थित तथा धावमान हो, तुम मुण्ड और जटी हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम मुखवाद्य करते हुए नर्त्तकशील, नदोमें उत्पन्न पद्म पुष्प उपहारमें लुब्ध और गीतवादित्रशाली हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम सबसे अवस्थामें ज्येष्ठ और गुणोंमें सबसे अधिक होनेसे श्रेष्ठ हो, तुम बलके अभिमानी देवेन्द्रके प्रमथनकारी हो; तुम कालके नियन्ता और सब कार्य्योंमें समर्थ हो; तुम महाप्रलय और अवान्तर प्रलयस्वरूप हो, इससे तुम्हें नमस्कार है भयङ्कर दुन्दभी नक्कारे आदि बाजेकी भांति तुम्हारी हांसी है, तुम अनशन आदि व्रत करते हो, तुम प्रचण्डरूप दशबाहु हो, इससे तुम्हें सदा नमस्कार है। तुम कपालपाणि और चिताभस्म प्रिय हो इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम निर्भय और भयङ्कर हो, तथा शम दम आदि व्रतोंके जरिये तुम्हें जाना जा सकता है, इस ही लिये तुमने

भीमव्रतधर नाम धारण किया है, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम विकृत वक्र, खड्गजिह्व दंष्ट्री हो, तुम पक्वान्न वा आम मांसके लोभी हो और तुम्बी-निर्म्मित वीणाप्रिय हो, इससे तुम्हें प्रणाम है।

तुम वृष्टिकर्त्ता, धर्म्महित, धर्म्म, वृद्धिकारी और धर्म्म हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम वायु आदि रूपसे नित्य गमनशील नियन्ता और सब प्राणियोंके संहारकर्त्ता हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम सबसे वरिष्ठ श्रेष्ठ और वरदाता हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम उत्तम माला, वस्त्र और सुगन्ध धारण किया करते हो; तुम लोगोंके अभिलषित वरसे भी अधिक वरदान करते हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम अनुरक्त और विरक्त हो, तुम ही ध्यानकर्त्ता तथा अक्षिमाली हो; तुम छाया रूप और आतप हो, और तुम कारण रूपसे सर्व्वत्र अनस्युत तथा कार्य्य रूपसे व्यावृत हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम्हीं अघोर तथा घोररूपी हो तुम सब भयङ्कर पदार्थोंसे भी भयङ्कर हो; तुम शिव, शान्त और शान्ततम हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम एकपाद और बहुनेत्र तथा एकशीर्ष हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम क्षुद्र, क्षुद्रलुब्ध और सांख्यभागप्रिय हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम स्वर्णकार, लोहकार और भक्षादि कर्म्मकर्त्ता विश्वकर्म्मा, शिताङ्ग और नित्य शान्त हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम शत्रुओंको शासन करनेके लिये भयङ्कर घण्टा धारण किया करते हो और तुम स्वयं घण्टानाद स्वरूप तथा नादके अभावमें भी तुम नादावशिष्ठ अर्थात् अनाहत ध्वनि-विशिष्ट हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम योगबलसे एकही बार सहस्र घण्टा निनाद करनेमें समर्थ हो, तुम घण्टामालाप्रिय हो, तुम्हारा प्राणवायुमें ही घण्टाकी भांति शब्दका हेतु है, इसलिये तुम प्राणघण्टा हो; तुम अतिशय प्रसिद्ध गन्ध और कलकल महाध्वनि स्वरूप हो, इससे तुम्हें प्रणाम है।

तुम क्रोधवर्ण हुङ्कारके शान्तिस्वरूप हो, पृथ्वी आदि लोकोंसे अतीत परम शान्त ब्रह्मस्वरूप हो; तुम ही तुरीय शान्त परब्रह्म हो; तुम क्रोधवर्ज्जित हुङ्कारप्रिय हो; तुम शान्त वा परम शान्त हो, पहाड़ और सब वृक्ष तुम्हारे स्थान हैं, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम हृदय जिह्वा वक्षस्थल आदि अवदानगत मांस भक्षणमें शृगाल सदृश लुब्ध हो; तुम यज्ञभोक्तृ स्वरूपसे पाप मोचक हो तुम्हें ही अवलम्बन करके सब लोग पापसे छूटते हैं, तुम ही यज्ञ और यजमान स्वरूप हो, तुम ब्राह्मण तथा अग्निके मुखमें आहुति प्राप्त होनेसे परितृप्त हुआ करते हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम ऋत्विकादिरूपसे यज्ञ निर्व्वाहकर्त्ता जितेन्द्रिय, सतोमय और रजोमय हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम तट, तटिनी और तटिनीपति समुद्र स्वरूप हो, इससे तुम्हें प्रणाम है! तुम अन्नदाता, अन्नपति और अन्नभोक्ता हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम सहस्र शिर और सहस्र चरण हो इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम सहस्र शूल उद्यत करके निवास करते हो और तुम सहस्र नेत्र हो; तुम बालार्क सदृश वर्ण धारण करते और बालकका रूप धारण किया करते हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम बालक और अनुचर गणोंके रक्षा कर्त्ता, बाल क्रीड़नके स्वरूप हो; तुम वृद्ध लुब्ध, क्षुब्ध और क्षोभण स्वरूप हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम तरङ्गाङ्कित केश वा मुंजसदृश केश धारण करते हो, इससे तुम्हें प्रणाम है, तुम षट्कर्म्म परितुष्ट और यजन अध्ययन वा दान, इन तीनों कर्म्मोंमें तत्पर हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम वर्ण और आश्रमोंके पृथक् पृथक् कर्म्म समुदायोंके विधिपूर्व्वक निवर्त्तक हो; तुम घुष्य, घोष और कलकल ध्वनिस्वरूप हो, इससे तुम्हें

प्रणाम है। तुम श्वेत और पिङ्गल नेत्र, कृष्ण-वर्ण और लाल देहवाले हो, तुम जितश्वास आयुधस्वरूप विदारणरूप और कृश हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष विषयमें तुम्हारी ही कथा कही जाती है; तुम निरीश्वरवादी सांख्य और ईश्वरवादी पातञ्जल हो; तुम वेदान्त विचार तथा निदिध्यासन योगके प्रवर्त्तक हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम कभी विरथ होकर पर्य्यटन करते हो; जल, अग्नि, वायु और आकाश, इन चारोंमें ही तुम्हारे रथकी अव्याहत गति हुआ करती है। तुम काले मृगचालका वस्त्र धारण करते हो और सांपका यज्ञोपवीत पहना करते हो इससे तुम्हें प्रणाम है।

हे ईशान! हे वज्रसदृश कठोर शरीरवाले! हे पिङ्गलकेश! तुम्हें नमस्कार है। तुम त्रिलोचन अम्बिकानाथ हो, तुम ही कार्य्य और कारण स्वरूप हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम काम स्वरूप कामदाता, कामहन्ता और तृप्तातृप्त विचारी हो; तुम सर्व्वस्वरूप हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। हे महाबाहु महासत्व, महाबल, महाद्युति महामेघरूपी महाकाल! तुम्हें प्रणाम है। तुम स्थूल, जीर्णाङ्ग, जटिल और वल्कल वस्त्रधारी हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम प्रकाशमान सूर्य्य और अग्निकी भांति जटाविशिष्ट हो, वल्कल और मृगचालका वस्त्र धारण करते हो। हे सहस्र सूर्य्य समान तपमें रत रहनेवाले! तुम्हें प्रणाम है। लोक व्यामोहक सैकड़ों तरङ्गसे युक्त गंगाजलसे तुम्हारा शिर आर्द्र हुआ है, तुम चन्द्रमाको बार बार आवर्त्तित करते हो, सब युगल और बादलोंको बार बार आवर्त्तन किया करते हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम अन्न स्वरूप, अन्नपालक, अन्नदाता, अन्नभोक्ता, अन्नस्रष्टा, अन्नपक्ता, पक्वभुक्, पवन और अग्नि हो; तुम ही जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज हो। हे देव देवेश! तुमही चार प्रकारके भूतग्राम हो। तुम स्थावर जङ्गमात्मक जगत्के स्रष्टा और प्रतिहर्त्ता हो। हे ब्रह्मविदर! ब्रह्मज्ञ लोग तुम्हें ही ब्रह्म कहा करते हैं; तुम मनकी परम योनि हो, आकाश वायु और अग्निके अवलम्बन हो, ब्रह्मवादी पुरुष तुम्हें ही ऋक् साम और ओंकार स्वरूपसे वर्णन करते हैं।

हे सुरश्रेष्ठ! साम गान करनेवाले ब्रह्मवादी लोग तुम्हें ही हायि हायि, हुवा हायि हुवा-हायि, आदि सामगान पूरक स्तोभ वा त्य कहा करते हैं। यजुर्मय ऋग्वेदमय और आहुतिमय वेद हो और उपनिषदोंमें कही हुई सब स्तुति तुम्हारा ही वर्णन किया करती हैं, तुम ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण हो; तुम्हीं बादलसमूह बिजली और सजल वा निर्जल घन गर्जन स्वरूप हो; तुम ही सम्वत्सर, ऋतु, मास, मासार्द्ध, युग, निमेष और काष्ठास्वरूप हो; तुम ही ग्रह और नक्षत्र स्वरूप हो, तुम वृक्षोंके गुद्दा, और पहाड़ोंके शिखर, मृगासमूहके बीच बाघ, पक्षियोंमें ताक्ष्य और भोगिओंके बीच अनन्त हो। तुम सब समुद्रके बीच क्षीरोद यन्त्रोंके बीच सत्य हो। तुम ही सब शास्त्रोंके बीच वज्र और व्रतोंमें सत्य हो। तुम ही द्वेष, इच्छा, राग, मोह, क्षमा, अक्षमा, व्यवसाय, धृति, लोभ, काम, क्रोध, जय और पराजय स्वरूप हो। तुम गदा, बाण, शरासन तथा खट्वाङ्गधारी और झर्झर वाद्यधारण किया करते हो; तुमही छेत्ता, भेत्ता प्रहर्त्ता, नेता और सन्तापिता रूपसे शास्त्रकारोंके जरिये वर्णित हुए हो। तुम ही अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य अपरिग्रह यम, सन्तोष तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान, इन दश प्रकारके लक्षणोंसे युक्त धर्म्म तथा काम स्वरूप हो। तुम ही गंगा आदि सब नदी समुद्र, पल्वल और तालाब हो! तुम ही लता, वल्ली, तृण, ओषधि, पशु, पक्षी और मृगस्वरूप

हो। तुम द्रव्य तथा सब कर्म्मोंके समारम्भ और पुष्प फलप्रद कालस्वरूप हो ; तुम ही वेदोंके आदि और अन्त हो ; तुम ही गायत्री और ओंकार हो ; तुम ही हरित, लोहित, नील, कृष्ण, रक्त, अरुण, कपिल, पिंगल, कपोत, और मेचक, इस दस प्रकारके वर्ण स्वरूप हो। तुम वर्णहीन और सुवर्ण वर्णकार तथा उपमारहित हो ; तुम सुवर्ण नामा और सुवर्णप्रिय हो। तुम ही इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, अग्नि, उपराग, चित्रभानु, स्वर्भानु और भानु स्वरूप हो। तुम हो होम साधक अग्नि, होता, होम्यहुत और प्रभु हो ; तुम त्रिसुपर्ण, मन्त्र विहित ब्रह्म और यजुर्वेदमें स्थित शतरुद्रिय हो। तुम सब पवित्र वस्तुओंके बीच अत्यन्त पवित्र और निखिल मंगलके भी मंगल हो। तुम पर्व्वतके तुल्य अचेतन शरीरको सचेतन करते हो, इस ही लिये गिरिक और हिण्डूक अर्थात् चिदाभास नामसे वर्णित हुए हो। तुम उपाधियुक्त होकर नाशमान हुआ करते हो, इस ही लिये बद्ध स्वरूप और शुद्ध स्वरूपसे जोवित रहते हो, कभी विनष्ट नहीं होते, इसहीसे जोव स्वरूप हो ; तुम पूर्ण और गलित स्वरूप हो ; तुम पूर्ण और जलित हो। इसहीसे देहस्वरूप हो। तुम प्राणस्वरूप, और सत, रज, तम तथा अप्रमद अर्थात् प्रमादहीन उर्द्ध रेता हो। तुम प्राण, उदान, अपान, समान और व्यान वायुस्वरूप हो। तुम उन्मेष निमेष, क्षुत और जिम्भत हो तुम लोहित वा अन्तगत दृष्टि धारण करते हो, तुम महावक्र और महादेव हो। तुम सूई समान रोए और पिंगलवर्ण श्मश्रु धारण करते हो ; तुम ऊर्द्ध-केश और अत्यन्त चञ्चल हो। तुम गीतवाद्यके तत्वज्ञ और गीतवादप्रिय हो। तुम मत्स्यरूपी जलचर हो, संसारनदी जलमें विचरते हो, इस ही निमित्त नासनाजालसे बद्ध हो। तुम दुर्द्दर, केलिकल, कलि, अकाल, अतिकाल, दुष्काल, और कालस्वरूप हो। तुम मृत्यु और छेदन साधन क्षुरस्वरूप और छेदन योग्य हो, तुम सबके मित्र और शत्रु व्यूहके नाशक हो, तुम मेघकाल, महादंष्ट्र, सम्वर्त्तक और बलाहक हो। प्रकाशवान हो इस ही लिये घण्ड और मायाविच्छल रूपसे प्रच्छन्न प्रकाश हो, इसहीसे तुम्हारा नाम अव्वघट है। तुम आप मनुष्योंके कर्म्मफलको घटना करते हो, इसहीसे घटो और घण्टा धारण किया करते हो, इस हो निमित्त घण्टो कहाते हो। आप स्थावर जंगम जीवोंके सहित क्रीड़ा करते हो, इसही कारण चरुचेलो और सबके सहित संश्लिष्ट हो, इस हो निमित्त मिलि मिलो नाम ऐसा धारण किया है। तुम ब्रह्म और वह्नि जाया स्वाहा हो ; तुम ही दण्डो मुण्ड और त्रिदण्डधारो परमहंस हो। तुम चारो युग, चारो वेद और चतुर्होत्र प्रवर्त्तक हो। तुम भगनेत्राङ्कुश, चण्ड तथा सूर्य्यदन्त विनाशन हो। तुम स्वाहा, स्वधा, वषट्कार, प्रणाम और प्रणामके प्रतिरूप नमो-नमः स्वरूप हो। तुम गूढ़व्रती, गुह्यतपो, प्रणव और तारका मय हो। तुम आदि कर्त्ता हो, इस होसे धाता, भौतिक, स्रष्टा होनेसे विधाता सब वस्तुओंको एकत्रित करके स्थापित करते हो, इस ही कारण सन्धाता, अदृष्ट कर्म्मोंके विधान करनेसे विधाता, सबके अधिष्ठानभूत होनेसे कारणात्मा और तुम्हारा कोई आधार नहीं है, इस हो लिये अधर हो। तुम ही ब्रह्मा, तपस्या, सत्य ब्रह्मचर्य्य, आर्ज्जव, भूतात्मा भूत-कृत, भूत और भूत भविष्यत् वर्त्तमानके उद्भव-कर्त्ता हो। तुम भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक और ध्रुवलोक हो। तुम जितेन्द्रिय होनेसे महेश्वर कहाते हो ; तुम ही दीक्षित, अदि-क्षित, शान्त, दुर्द्दान्त और अदान्त नाशन हो। तुम चन्द्रमाके आवर्त्तनकारी मास, युगके आव-र्त्तनकारी और सृष्टिके कारण प्रलय स्वरूप हो। तुम कामिनीके अभिलाष, काम, पुत्र,

बीजभूत तकेरे अंश बिन्दु स्वरूप हो। आप सूक्ष्म, अचल और स्थूल हो; तुम कर्णिकाकी पुष्पमाला प्रिय हो। तुम आनन्द जनक, आनन्दमय और भयङ्कर सुख धारण करते हो। आप हो सुमुख दुर्मुख और सुखविहीन हुआ करते हो। तुम चतुर्मुख बहुमुख और युद्धके समयमें अग्निमुखी होते हो। आप हिरण्यगर्भ और पक्षीकी भांति असङ्ग हो; तुम महोरगपति और विश्वव्यापी विराट हो। आप अधर्महन्ता, महापार्श्व, चण्डधार और गणाधिप हो। आप कृष्णावतारमें गोपबालकोंके सङ्ग क्रीड़ाके समय गौवोंके समान शब्द करते थे, इसलिये गोनर्द हो; गौवोंको विपजलसे पूर्ण रीतिसे उबारनेसे तुम्हारा नाम गोप्रतार है; गोवृषेश्वर नन्दी हो तुम्हारा वाहन हैं। तुम त्रैलोक्यगोप्ता गोविन्द हो; तुम इन्द्रियोंके द्वारस्वरूप और इन्द्रियोंके अगोचर हो। तुम ही श्रेष्ठ, स्थिर, स्थाणु, निष्कम्प और कम्प स्वरूप हो। तुम मृत्युरूपसे दुर्व्वारण तथा दुष्ट विषयोंके नाशक हो, इसीसे दुर्व्विषह हो। तुम युद्धमें दुःसह तथा तुम्हें कोई अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं है, इस ही निमित्त दुरतिक्रम हो; तुम्हें कोई भीषित करनेमें समर्थ नहीं होता, इस ही लिये तुम दुर्द्धर्ष हो; तुम्हें कोई कंपानेमें समर्थ नहीं है, इस ही कारण तुम दुष्प्रकम्प हो; अत्यन्त दुःखसे भी लोग तुम्हारी महिमाकी सीमामें प्रवेश नहीं कर सकते इससे तुम दुर्व्विय हो, कोई तुम्हें जय करनेमें समर्थ नहीं है, इसहीसे दुर्ज्जय तथा तुम स्वयं जयरूपी धर्म्मराज हो। तुम शीघ्र गमन करनेमें समर्थ हो, इसहीसे तुम शश कहाते हो, तुम ही शशाङ्क और शमन हो; तुम ही शीत, उष्ण, क्षुधा हो, स्वरम आदि व्याधि और आधि धारण किया करते हो। तुम ही आधि व्याधिके नाशक हो, तुम मेरे यज्ञमें मृगके लिये व्याध स्वरूप हो। तुम ही सब व्याधियोंके आगम और अपगम स्वरूप हो। तुम शिखण्ड पुण्डरीकाक्ष और पुण्डरीक वनालय हो। तुम दण्डधार, त्रिनेत्र, उग्रदण्ड और दण्डनाशन हो। तुम ही विषग्रपायी, सुरश्रेष्ठ, सोमपा और मरुत्पति हो। हे देव जगन्नाथ! तुम अमृत पीनेवाले देव गणेश्वर-विषग्निपायी मृत्युञ्जय, क्षीरपा और सोमपायी हो। तुम विपदग्रस्थ लोगोंके त्राता, देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माके भी रक्षाकर्त्ता हो। तुम हिरण्यरेता पुरुष हो, तुम ही स्त्री, पुरुष और नपुंसक हो; तुम ही बालक, युवा, वृद्ध और जीर्णदंष्ट्र हो; तुम ही नागेन्द्र और शक्र हो; तुम जगत्की सृष्टि करनेवाले, विश्व कर्त्ता और विश्व संहर्त्ता हो; तुम ही विश्वस्रष्टा प्रजापतियोंके वरणीय हो। तुम पालन और पोषणके जरिये जगत्को धारण करते हो, इस ही लिये तुम्हारा नाम विश्वबाहु है। तुम विश्वरूप, तेजस्वी और विश्वमुख हो; चन्द्रमा और सूर्य्य तुम्हारे दोनोंनेत्र हैं; तुम सबके हृदय स्वरूप और पितामह हो; तुम ही महासागर हो; तुम ही वर्णरूपी सरस्वती और वैराग्यबल स्वरूप हो; तुम ही अग्नि और वायु रूपी हो, समस्त अहोरात्र स्वरूप हो; तुम्हारे बिना ब्रह्मा आदि इन्द्र पर्य्यन्त कोई भी निमेष और उन्मेष कर्म्म साधन करनेमें समर्थ नहीं हैं।

हे शिव! ब्रह्मा, विष्णु और पुराण जाननेवाले ऋषि लोग यथार्थ रूपसे तुम्हारे माहात्म्यको जाननेमें समर्थ नहीं हैं। तुम्हारी जो सब सूक्ष्म मूर्त्ति हैं, वे हमारे दृष्टिगोचर नहीं होती; जैसे पिता निज पुत्रकी रक्षा करता है, वैसे ही तुम सदा मेरी रक्षा तथा परित्राण करो। हे अनघ! मैं तुम्हारा रक्षणीय हूं, इसलिये तुम मेरी रक्षा करो, मैं तुमको प्रणाम करता हूं। तुम सब ऐश्वर्य्योंसे युक्त भगवान् हो, भक्तोंके ऊपर कृपा किया करते हो; मैं सदा तुम्हारा अनुरक्त भक्त हूं।

इससे मेरी रक्षा करो। जो सहस्रों पुरुषोंको अज्ञानसे अभिभूत करके ज्ञेय ज्ञान और ज्ञातभावसे रहित होके सब कार्य्योंके समाप्त होनेपर अकेलाही निवास करता है, वह सदा मेरी रक्षाका विधान करे। जितेन्द्रिय, प्रश्वास जीतनेवाले, सत्वस्थ और संयतेन्द्रिय योगी लोग जिस योगो स्वरूपको देखते हैं, उस योगात्मा पुरुषको नमस्कार है। जो जटिल और दण्डधारी हैं, जिसका शरीर लम्बोदरसे अलंकृत है, और कमण्डल ही जिसका तूण स्वरूप है, अर्थात् कमण्डलके जलसे ही जो यक्ष, राक्षस आदिका नाश करता है, उस चतुर्मुख ब्रह्मस्वरूपको नमस्कार है, जिसके केशमण्डलके बीच जो भूतगण अंगकी सन्धियोंमें नदियें, और कुक्षिमें चारों समुद्र वर्त्तमान हैं, मैं उस सलिलशायीका शरणापन्न हुआ हूं। जो रात्रिमें राहुके मुखमें प्रवेश करके चन्द्रमण्डलको और जो स्वयं स्वर्भानु होकर सूर्य्यको ग्रास किया करता है, वह सब भांतिसे मेरी रक्षा करे। जो सब अत्यन्त शिशु सृष्टिमें प्रविष्ट हुए हैं और जो सब देवता तथा पितर लोग विधिपूर्व्वक यज्ञभाग ग्रहण करते हैं, उन्हें प्रणाम है; वे लोग स्वधा और स्वाहा मन्त्रके जरिये दी हुई हव्यकव्य प्राप्त करके हर्षित होवें; जो अङ्गुष्ठ परिमाण पुरुष अर्थात् जीव देहधारियोंके शरीरमें निवास करता है, वह सदा मेरी रक्षा करे तथा मुझे आप्यायित करे। जो देहस्थ होके भी रोदन नहीं करता, और देहधारियोंको रुलाया करता है, स्वयं हर्षित न होके भी देहधारियोंको हर्षित किया करता है, उसे सदा प्रणाम करता हूं। जो नदी, समुद्र, पहाड़, गुफा, वृक्षको जड़, गोष्ठ, कान्तार, गहन, चतुष्पद, रथ्या, चत्वर, तट, हाथी, घोड़े और रथशाला, जीर्ण बगीचे और स्थान, पञ्चभूत, दिशा, विदिशा तथा चन्द्रमा सूर्य्यके अन्तर्गत होके भी चन्द्र सूर्य्यके किरणमण्डलमें निवास करता है और जिन्होंने रसातलके मध्यगत होके भी ईश्वरके निमित्त वैराग्य अवलम्बन किया है उन्हें बारम्बार प्रणाम करता हूं। जिनकी संख्या और प्रमाण नहीं है तथा किसी प्रकारका रूप नहीं है उन अनगिनत रुद्रगणको प्रणाम करता हूं।

हे भूतनाथ! तुम सब भूतोंके सृष्टिकर्त्ता और संहर्त्ता हो; तुम प्राणियोंके अन्तरात्मा और सर्व्वभूतपति हो, इस ही निमित्त तुम्हें निमन्त्रण नहीं किया, तुम अन्तर्य्यामी और अन्तरात्मा होनेसे साधारण देवताओंकी भांति व्यवहित वा पृथक् भूत नहीं हो, इस ही लिये तुम्हारा मेरे यज्ञमें निमन्त्रण विहित नहीं हुआ। लोग विविध दक्षिणायुक्त यज्ञसे तुम्हारा ही यजन किया करते हैं और तुम ही सबके कर्त्ता हो, इसलिये निमन्त्रित नहीं हुए। हे देव! अथवा मैं आपकी सूक्ष्म मायासे मोहित हुआ था, उस ही कारणसे आपको निमन्त्रण नहीं किया। हे भव! मैं आपका भक्त हूं, इसलिये मेरे ऊपर प्रसन्न होइये। हे देव! हमारा मन, बुद्धि और हृदय तुममें ही समर्पित है।

प्रजापति दक्ष इस ही प्रकार महादेवकी स्तुति करके चुप हुए भगवान् भी अत्यन्त प्रसन्न होकर फिर दक्षसे बोले, हे सुव्रत दक्ष! इस स्तुतिसे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ हूं; अधिक कहनेका क्या प्रयोजन है, तुम हमारे निकटवर्त्ती होगे। हे प्रजापति! तुम मेरे प्रसादसे सहस्र अश्वमेध और एक सौ वाजपेय यज्ञके फलभागी होगे। अनन्तर लोकाधिपति वाक्यवेत्ता महादेव दक्षसे युक्तियुक्त धैर्य्यवचन कहने लगे। हे दक्ष! तुम इस यज्ञमें विघ्न होनेसे दीनता अवलम्बन मत करो, क्योंकि भावी कार्य्य अत्यन्त अप्रतिहार्य्य हैं। मैंने पूर्व्वकल्पमें तुम्हारा यज्ञ विध्वंस किया था, इससे सब कल्पोंको ही समान रूपताके कारण इस

बार भी तुम्हारे यज्ञका नायक हुआ। हे सुव्रत! मैं फिर तुम्हें वरदान करता हूं, तुम उसे ग्रहण करो और प्रसन्न बदन होकर एकाग्रचित्तसे उस विषयको सुनो। मैंने षड़ङ्गयुक्त वेद, सांख्य, योग और युक्ति शास्त्र अर्थात् तर्कसे उद्धार करके देवता-दानवोंके दुश्चर अत्यन्त तपस्या की थी; जो षड़ङ्ग वेद, सांख्य और तर्कसे अनधिगत, उपनिषदोंमें प्रकाशित, फल कालमें मङ्गलस्वरूप है, सब वर्ण और आश्रमोंके अधिकृत मोक्षका कारण है, बहुत समयमें सिद्ध होनेवाले अप्रकाश अज्ञानी कर्म्मठ पुरुषोंके निन्दित वर्ण धर्म्म और आश्रम धर्म्मोंसे विपरीत कोई कोई ग्रन्थ विशेषमें जो वर्णकर्म्म और आश्रमधर्म्म कहके वर्णित है तथा जो सिद्धान्तज्ञ पण्डितोंके जरिये निश्चित है, और जो परमहंस परिव्राजकोंके जरिये आचरित हुआ करता है, हे दक्ष! मैंने पहले समयमें उस शुभप्रद पाशुपत व्रतको उत्पन्न किया था, उक्त व्रतको करनेसे पुष्कल फल मिलता है। हे महाभाग! तुम्हें उस ही पाशुपत व्रतका फल मिले; तुम अपना मानसिक शोक परित्याग करो। अत्यन्त पराक्रमी महादेव दक्षसे ऐसाही कहके उनके सम्मुख ही पत्नी और अनुचरोंके सहित अन्तर्द्धान हुए, जो लोग दक्षके कहे हुए इस स्तोत्रको कहते वा सुनते हैं, उन्हें कुछ भी अशुभ नहीं होता, परमायुकी वृद्धि हुआ करती है। जैसे सब देवताओंके बीच भगवान् महादेव वरिष्ट हैं, वैसे ही सब स्तोत्रोंके बीच यह स्तोत्र उत्तम है, इसलिये यह वेदवाक्य सदृश है; इसमें वेदोंका अर्द्धभाग और पुराणोंका अर्द्धभाग विद्यमान है। जो लोग यश, राज्य, सुख, ऐश्वर्य्य, काम्य, विषय और धनकी इच्छा करते हैं, तथा जो लोग ब्रह्म दर्शनकी अभिलाष किया करते हैं, वे यत्न और भक्तिपूर्व्वक इसे सुने; इसके सुननेसे रोगी, दुःखी, दीन, चोरग्रस्त, भयसे पीड़ित अथवा राज कार्य्यके निमित्त अभियुक्त पुरुष महत् भयसे मुक्त होते हैं। इस स्तोत्रके सुननेसे मनुष्योंको इस ही शरीरसे प्रमथगणकी समता प्राप्त हुआ करती है, और तेजस्वी, यशस्वी तथा पापरहित होते हैं। जिसके गृहमें इस स्तोत्रका पाठ होता है, राक्षस पिशाच भूत और विनायकगण कभी वहां विघ्न नहीं करते। जो स्त्री महादेवमें भक्ति करके ब्रह्मचारिणी होकर यह्वायुक्त इस स्तोत्रको सुनती है, वह पितृकुल और मातृकुलमें देवताकी भांति पूजनीय हुआ करती है, जो मनुष्य सावधान होकर सम्पूर्ण स्तोत्र कहता वा सुनता है, वह सब कार्य्योंमें बारम्बार सिद्धिलाभ किया करता है। इस स्तोत्रके कहनेसे मनुष्योंके मनमें जो कुछ कार्य्य चिन्तित अथवा वचनसे वर्णित होते हैं, वे सब सिद्ध होते हैं। जो मनुष्य दम-नियममें तत्पर होकर महादेव, देवी भगवती, कार्त्तिकेय और नन्दीश्वरकी विहित पूजा करते हुए यथाक्रमसे इस स्तोत्रमें कहे हुए नामको ग्रहण करता है, वह अभिलषित अर्थ, काम और भोग्य वस्तुओंको पाता और परलोकमें गमन करके स्वर्ग लाभ करता है, कदाचित तिर्य्यग् योनिमें जन्म नहीं लेता; इसे पराशर पुत्र भगवान व्यासदेवने कहा था।

२८४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! पुरुषकी आत्मामें जो विद्यमान रहता है, उसे अध्यात्म कहते हैं, इसलिये दृश्य वस्तुओंके विवेकमें शास्त्र ही अध्यात्म है, उस अध्यात्मका कैसा रूप है, और जिससे यह अध्यात्म शास्त्र उत्पन्न हुआ है, आप मेरे समीप उसे ही वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे तात! पहले अध्यात्म विषय बारम्बार वर्णित हुआ है, तौभी जब कि तुम मुझसे उक्त विषयको पूछ रहे हो, तब संक्षेपसे

उस सर्व्व ज्ञानप्रद ब्रह्म साक्षात्कारका कारण अध्यात्म विषय तुमसे स्पष्ट रीतिसे कहता हूं, तुम उसको यह वक्ष्यमाण व्याख्या सुनो; पृथिवी, वायु, आकाश, जल और अग्नि ये पञ्चभूत जरायुज आदि सब भूतोंकी उत्पत्ति और प्रलयके कारण हैं। हे भरतप्रवर! स्थूल और सूक्ष्म शरीर उस ही पञ्चभूतके कार्य्य हैं; बुद्धि आदि भौतिकगुण परम कारण आत्मामें सदा लीन रहके फिर उत्पन्न हुआ करते हैं, जीव आत्मासे उत्पन्न होके फिर उसहीमें लीन हुआ करता है, जैसे सुषुप्ति अवस्थामें जीवकी उत्पत्ति होती और उसहीमें लय हुआ करती है, वैसे ही महासागरकी लहरकी भांति महाभूतोंकी उत्पत्ति और लय हुआ करती है। जैसे कछुआ अपने अङ्गको पसारके फिर सहजमें ही समेट लेता है, वैसे ही आकाश आदि भूतोंसे सब क्षुद्र जीव सहजमें ही उत्पन्न होते हैं। शरीरमें जो शब्द प्रसिद्ध होरहा है, वह आकाशका अंश है, शरीरमें जो कठोर अंश है, वह पृथिवीका गुण है; प्राण वायुका अंश है, रुधिर आदि आर्द्रभाग जलके अंश हैं, और गौरवादि तेजके अंश स्वरूपसे वर्णित हुआ करते हैं; इसलिये स्थावर जङ्गम जीवमात्र ही पञ्चभूतमय हैं, ये सब प्रलयकालमें भूतस्रष्टा पितामहके शरीरमें लीन होकर फिर उसहीसे उत्पन्न हुआ करते हैं। भूतकर्त्ता अहङ्कारने देहके बीच जिन इन्द्रियोंकी जिस प्रकार कल्पना की है, और देहके बीच स्थित जिन कार्य्योंको वह अवलोकन करता है, उसे सुनो।

शब्द, श्रोत्र और सब इन्द्रिय आकाशयोनिज हैं; रस, स्नेह और जिह्वा जलके गुण हैं; रूप, नेत्र और विपाक ये तीनों अग्नि रूपसे वर्णित हुआ करते हैं। घ्रेय, घ्राण और शरीर, ये भूमिके गुण हैं; प्राण, स्पर्श और चेष्टा वायुके गुण कहाते हैं। हे राजन्! यही पञ्चभौतिक गुणोंकी व्याख्या हुई। हे भारत! सत, रज और तमोगुण, भूत, वर्त्तमान और भविष्यत्-काल निज निज विषयस्वरूप निश्चयरूपी कर्म्म-बुद्धि अर्थात् श्रवणेन्द्रियसे शब्द बोध, त्वचासे स्पर्शज्ञान, नेत्रसे रूप देखना, जीभसे रस चखना और नासिकासे सूंघना तथा आघ्राण-विषयके सब कार्य्योंके जानने और "यह वस्तु इस ही प्रकार है, वा नहीं" इस भांतिके संशयात्मक मनोवृत्तिमें मायावच्छिन्न ईश्वर प्रकट होता है। हे भारत! दोनों पांवके तलभागसे ऊपर सिरके निम्नस्थान पर्य्यन्त जो कुछ देखते हो इस सब शरीरके बीच बुद्धि निवास करती है। मनुष्यके शरीरमें जो पञ्चइन्द्रिय हैं, मन उनके बीच छठवां कहाता है और धीर लोग बुद्धिको उनके बीच सातवीं गिनते हैं; तथा क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीव उक्त इन्द्रियोंके बीच आठवां कहा जाता है। सब इन्द्रियों और क्षेत्रज्ञकी कार्य्यविभागके जरिये खोज करनी उचित है। तम, सत और रजोगुण इन्द्रियनियन्ताको अवलम्बन करनेपर भावरूपसे अभिहित हुआ करते हैं। नेत्रके दृश्य विषयोंकी आलोचनासे मन संशय करता है; बुद्धि उसे निश्चय किया करती है, क्षेत्रज्ञ सब विषयोंमें साक्षीरूपसे माना जाता है। हे भारत! तम, सत और रजोगुण तथा काल और कर्म्म, इन पांच प्रकारके गुणोंसे बुद्धि बार बार विषयोंमें प्रेरित हुआ करती है; सब इन्द्रियें और तम आदि गुण भी बुद्धिस्वरूप हैं। जब मनके सहित इन्द्रियें बुद्धिरूपसे गिनी गईं तब बुद्धिके अभावमें गुणोंके कार्य्य किसी प्रकार भी सम्भव नहीं होसकते। बुद्धि जिसके सहारे देखती है, उसे नेत्र कहते हैं जिससे सुनती है, उसका नाम कान है, जिसके जरिये सूंघती है, वह नासिका है; जिससे रसका स्वाद लेती है, उसे जीभ और जिससे स्पर्शज्ञान करती है, वह स्पर्शेन्द्रियत्वग रूपसे वर्णित हुई है; इसलिये बुद्धि बार बार विकृतिभावको प्राप्त होती है। जब

बुद्धि किसी विषयकी इच्छा करती है, तब उसका नाम मन हुआ करता है, पांच प्रकारकी इन्द्रियें पृथक् पृथक् रूपसे बुद्धिका अधिष्ठान हुआ करती हैं। जैसे अवयवके दोषसे अवयवी दूषित होता है, वैसे ही इन्द्रियोंके दुष्ट होनेसे बुद्धि भी दूषित हुआ करती है। साक्षिभूत पुरुषमें आध्यात्मिक सम्बन्धसे वर्त्तमान बुद्धि सात्विक आदि सुख दुःख मोहात्मक तीनों भावोंमें निवास करती है, वैसी बुद्धि कभी प्रसन्नता लाभ करती और कभी शोक भोग किया करती है, तथा किसी समयमें सुख दुःख किसीमें भी लिप्त नहीं होती; वह भावमयी बुद्धि और सत्वादि तीनों गुणोंको अतिक्रम करके निवास किया करती है। जैसे तरङ्गमाला युक्त सरित्पति समुद्र तटको अतिक्रम न करके निवास करता है, वैसे ही इस प्रकारकी भावभूमिगत बुद्धि भावस्वरूप मनमें ही वर्त्तमान रहती है। उत्पद्यमान रजोगुण बुद्धिका अनुसरण किया करता है। प्रहर्ष प्रीति, आनन्द, सुख; शान्तचित्तता आदि सात्विक गुण पुरुषके शरीरमें कथञ्चित संयुक्त हुआ करते हैं। दाह, शोक, सन्ताप, मूर्त्ति और क्षमाहीनता आदि रजोगुणके चिन्ह कदाचित कारणवशसे कभी बिना कारणके ही दीखते हैं। अविद्या, राग, मोह, प्रमाद, स्तब्धता, भय, असमृद्धि, दीनता, प्रमाद, स्वप्न, तन्द्रा आदि विविध तामस गुण कभी कभी उत्पन्न हुआ करते हैं, उनमेंसे जो शरीर और मनके प्रीतियुक्त होता है, उसमें ही सात्विकभाव वर्त्तमान रहता है, इसे ही अवलोकन करे; और जो दुःखकी संश्लिष्टताके कारण आत्माका अप्रीतिकर हुआ करता है, वही रजोगुणका कार्य्य है; इसलिये उस विषयके कोई कार्य्यको आरम्भ न करके केवल उसकी चिन्ता करे; जो शरीर और मनमें मोहसे मिला हुआ तर्क तथा ज्ञानके अगोचर है, उसे ही तमोगुण कहके निश्चय करो। यह बुद्धिगत जो सब विषय कहे गये, इन्हें ही जाननेसे लोग बुध हुआ करते हैं; इसके अतिरिक्त और बुधका कौनसा लक्षण है।

अब सूक्ष्म सत्व और क्षेत्रज्ञका कितना प्रभेद है, उसे मालूम करो; इन दोनोंमें एक गुणोंको उत्पन्न करता है, दूसरा उससे विरत रहता है। वे दोनों स्वभावसे ही पृथक् भूत होनेपर भी सर्व्वदा सम्प्रयुक्त हुआ करते हैं। जैसे मछरी जलसे भिन्न होके भी सदा जलसे सम्प्रयुक्त रहती है सत्व और क्षेत्रज्ञ भी वैसे हैं, सत्वादि गुण आत्माको जाननेमें समर्थ नहीं हैं, परन्तु आत्मा सब तरहसे गुणोंको जानता है। गुण संसर्गी मूढ़ मनुष्य समझते हैं, कि आत्माके संग गुणोंका गुण-गुणि भावका सम्बन्ध है, परन्तु यथार्थमें वह नहीं है। आत्मा अपनेमें गुणोंका तदात्म अध्यास न करके केवल उन्हें देखता है, बुद्धि सत्वका अवलम्ब अर्थात् उपादान कारण नहीं है केवल सत्वादि गुणोंके कार्य्यके जरिये उसकी चेतनाशक्ति अध्यस्त हुआ करती है, कारणभूत गुणोंको उत्पन्न करती है, यह महदादि कार्य्यके जरिये अनुमित होता है। कोई पुरुष किसी समयमें ही सब गुणोंको जाननेमें समर्थ नहीं होता, बुद्धिशक्ति ही गुणोंको उत्पन्न करती है, क्षेत्रज्ञ उसका साक्षिमात्र है; इसलिये उस सत्व और क्षेत्रज्ञका इस प्रकारका सम्बन्ध अनादिसिद्ध है बुद्धि इन्द्रियोंके जरिये प्रकाशके कार्य्य अर्थात् अन्धेरेको दूर करती है; अचेतन और अज्ञानयुक्त पुरुष इन्द्रियोंको ही आकाशकी भांति समझते हैं। जो पुरुष इसे ही स्वभाव समझके बुद्धि चालनके जरिये समय बिताता है, उसे शोक वा हर्ष कुछ भी नहीं होता और वह मत्सरताहीन हुआ करता है। जैसे मकड़ी जाला पूरती है, वैसेही बुद्धिशक्ति जिन गुणोंको उत्पन्न करती है, वे स्वभावसिद्ध हैं; इसलिये गुणोंको सूतकी भांति जानना उचित है। गुण

प्रध्वस्त होनेपर फिर निवृत्त नहीं होते घट-कपालकी भांति निवृत्त गुणोंकी प्रवृत्ति सूक्ष्म अवयवोंके जरिये प्राप्त नहीं होती। प्रत्यक्षके सहारे परोक्ष पदार्थोंके अवरोध न होनेसे जैसे अनुमानसे वे पदार्थ सिद्ध होते हैं, वैसे ही कोई कोई प्रवृत्तिका समर्थन करते हैं, दूसरे लोग उसे ही निवृत्त कहा करते हैं। इस ही प्रकार यह वृद्धि और चिन्तामय दृढ़हृदय ग्रन्थि छुड़ाकर शोकहीन तथा संशय रहित होके परम सुखसे निवास करना उचित है।

मनुष्य इस मोह पूरित संसार नदीमें पड़के क्लेशोंको भोग करते हैं। मूर्खोंके अगाध जलमें डूबनेसे जैसा दीखता है, जीव भी बुद्धियोग लाभ करके वैसा ही हुआ करता है। अध्यात्मवित् विद्वान् और पुरुष संसार जलके किनारे पर उतरके कदाचित् क्लेश नहीं पाते, अकेला ज्ञान ही उन लोगोंके लिये परम नौका स्वरूप है। मूर्ख पुरुषोंको जिस प्रकार महत् भय हुआ करता है, विद्वानोंको वैसा भय नहीं होता। विद्वान् और मूर्खोंमें जैसा प्रभेद दीखता है, विद्वान् पुरुषोंमें परस्पर वैसा प्रभेद नहीं है। सङ्गतविभात ब्रह्मलोक विद्वानोंके पक्षमें समान है, मोक्ष विषयमें प्रत्ययावृत्तिका तारतम्य नहीं है। ज्ञानी लोग अज्ञान दशामें बहुतसा पाप करने पर भी ज्ञान उदय होने पर उनके पहले किये हुए सब पाप नष्ट होते हैं, वे जो कुछ करते तथा जिसे दूषित करते हैं, वे दोनों ही उन्हें अप्रिय नहीं है।

२८५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! प्राणियोंको अत्यन्त दुःख और मृत्युसे सदा भय हुआ करता है, इससे हम लोगोंको जिस प्रकार उक्त दोनों भय न हों, आप उसहीका उपाय वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे भारत! प्राचीन लोग इस विषयमें नारद और समंगके सम्वादयुक्त इस पुराने इतिहासको कहा करते हैं। नारद बोले, हे समंग! दूसरे लोग सिर झुकाके प्रणाम करते हैं, तुम वक्षस्थल पर्य्यन्त पृथ्वीसे मिलाकर प्रणाम करते हो और मानो दो भुजाओंसे संसारनदीको तर रहे हो तुम सदा प्रसन्नचित्त और शोकरहित दीखते हो; तुममें थोड़ी भी घबराहट नहीं दीख पड़ती; तुम नित्य तृप्त और स्वस्थ रहके बालककी भांति क्रीड़ा करते हो।

समङ्ग बोले, हे नारद! मैं भूत भविष्यत् और वर्त्तमानकालको अविद्यमानता विशेष रूपसे जानता हूं; इस ही लिये दुःखित नहीं होता। मैंने लोकके बीच सब कार्य्योंकी गति कार्य्योंके फल और फलोंकी विचित्रताको विशेषरूपसे जाना है, इसहीसे शोक नहीं करता। हे नारद! मूर्ख और अप्रतिष्ठित अर्थात् धन, स्त्री आदिसे हीन पुरुष भी विपदग्रस्त और धनवान हुआ करते हैं, अन्धे और उन्मत्त मनुष्य भी जीवित रहते हैं, देखो, हम निरारम्भ होने पर भी जीवित हैं। आरोग्य शरीरवाले देवता, बलवान और निर्व्वल लोगभी पूर्व्वजन्मके किये हुए कर्म्मोंसे ही जीवित हैं, तब हम लोगोंका तुम सभाजन करो। सहस्रों परिवारयुक्त पुरुष भी जीवित रहते हैं और सैकड़ों परिवार विशिष्ट लोग जीवन धारण करते हैं; दूसरे लोग बहुतसा शोकभार ग्रहण करके भी प्राण धारण किया करते हैं और देखो हम भी जीवित हैं।

हे नारद! शोकके मूल अज्ञानके अभाव-निबन्धनसे जब हम शोकाकुल नहीं हैं, तब हमारे आत्मासे ब्राह्मणादिके अध्यास प्रभृति धर्म्म और लौकिक कार्य्योंका क्या प्रयोजन है। जब कि सुख दुःखकी समाप्ति होती है, तब वे अब हमें धर्षण न कर सकेंगे। जिस कारणसे मनुष्य ज्ञानी हुआ करते हैं, वह ज्ञान ही इन्द्रियोंके मोहादि हीनता रूपी प्रसन्नताका

मूल कारण है; ज्ञानके अभावमें ही इन्द्रियें सुग्ध और शोकाकुल हुआ करती हैं; इसलिये मूढ़-इन्द्रिय मनुष्योंका ज्ञानलाभ नहीं होता। मूढ़ लोग जो अहंकार किया करते हैं, वही उनका मोहस्वरूप है; मूढ़ मनुष्यके लिये यह लोक और परलोक भी नहीं है, सब दुःख सदा उपस्थित नहीं होते और सदा सुख-लाभकी भी घटना नहीं होती। परन्तु मेरे समान देहाभिमान रहित मनुष्य कदाचित सब भांतिसे विद्यमान संसाररूपी संन्वर स्वीकार नहीं करते, अभिलषित भोग्य वस्तु और सुखके अतुरोधमें बाधित नहीं होते तथा अभ्यागत दुःखकी चिन्ता नहीं करते; इसलिये भोग्यबि-षय आदिकोंकी चिन्ता न करनी ही शोकहो-नताका कारण है। योगयुक्त सावधान मनुष्य सुखकी स्पृहा वा अनागत लाभका अभिनन्दन नहीं करते वे बहुतसा धन पाके हर्षित नहीं होते और धन नाश होनेपर भी शोक नहीं करते। बन्धुजन, वित्त, कुलीनता, शास्त्रदर्शन, मन्त्र अथवा पराक्रम, ये कोई भी मनुष्योंको दुःखसे उबारनेमें समर्थ नहीं हैं; मनुष्य शम-दम आदि सदाचारके सहारे ही परलोकमें शान्ति लाभ किया करते हैं। अयुक्त पुरुषोंमें विज्ञान नहीं होता और योगके बिना सुख भी नहीं मिलता। प्राण, मन और इन्द्रियोंके संयम करनेकी सामर्थ और दुःखका परित्याग ये दोनों ही सुख उत्पन्न होनेके कारण हैं। प्रिय वस्तुओंसे हर्ष उत्पन्न हुआ करता है, हर्षसे दर्पकी वृद्धि होती है, अभिमान ही नर-कका हेतु हुआ करता है, इसलिये मैंने उसे परित्याग किया है। इस लोकमें जबतक शरीर नष्ट नहीं होता है, तबतक इन सब मोहकार शोक भय और गर्व्व आदिको सुख दुःखके साक्षि स्वरूपसे देखा करता हूं। मैं अर्थ और काम परित्याग करके तथा तृष्णा और मोहको छोड़के शोकरहित वा आनन्दित होकर इस पृथ्वीमण्डलपर विचरता हूं। मुझे मृत्यु, अधर्म अथवा लोभ आदि किसी विषयसे भी अमृत पीनेवाले पुरुषकी भांति इस लोक वा परलोकमें कुछ भय नहीं है। हे ब्रह्मन् नारद! मैंने उत्तम महत् तपस्या करके इसे ही जाना है, इस ही निमित्त देह स्वभाव, वा सर्दी गर्म्मीसे उत्पन्न हुए शोक मुझे दुःखित करनेमें समर्थ नहीं हैं।

२८६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, जो पुरुष तार्किक, पाशुपत सांख्य, पातञ्जल आदि युक्ति प्रधान शास्त्रोंके यथार्थताको नहीं जानते हैं, जो सदा सन्देह-युक्त चित्त होकर आत्मदर्शनके निमित्त शम दम आदिका अनुष्ठान नहीं करते, उनके पक्षमें कल्याण क्या है; आप इसे ही वर्णन करिये।

भीष्म बोले, ईश्वर परम गुरु है, इसलिये उसमें चित्त प्रणिधान, वृद्ध आचार्य्योंकी सदा उपासना और सब शास्त्रोंमें ही मोक्षका प्रति-पादन है, इस ही निमित्त गुरुमुखसे उन सबको सुनना, ये तीनों ही सदा कल्याणरूपसे वर्णित हुए हैं। प्राचीन लोग इस विषयमें देवर्षि नारद और गालव मुनिके सम्वादयुक्त इस प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। कल्याणकी इच्छा करनेवाले गालव मुनि मोहक्लम रहित ज्ञान तृप्त, जितेन्द्रिय संयतचित्त विप्रवर नारदसे बोले, हे देवर्षि! इस लोकमें पुरुष जिन सब गुणोंसे सर्व्वसम्मत हुआ करते हैं, आपमें वे सब गुण स्थिररूपसे दीख पड़ते हैं, इसलिये आप परम ज्ञानी हैं, हम लोग सदा विमूढ़ रहके आत्मपदार्थ कुछ भी नहीं जानते, इससे हमारे संशयोंको दूर करनेके उपयुक्त आप ही हैं। जिस प्रकार अग्नि होत्रादि कार्य्योंके सहित शीघ्र ही ज्ञानसाधनमें प्रवृत्ति हो और हमारा जो कुछ कर्त्तव्य है, उसे हम निश्चय करनेमें

समर्थ नहीं हैं ; इसलिये उसे ही वर्णन करना आपको उचित है।

हे भगवन्! जिसके अनुष्ठानमें श्रम नहीं है, वे ज्ञानसाधन सब शास्त्र ही पृथक् पृथक् आचारका वर्णन किया करते हैं। वे सब शास्त्र "यही श्रेय है, यही कल्याणकारी है" ऐसे ही उपदेशसे मनुष्योंको प्रबोधित करते हैं। वे प्रबोधित मनुष्य विविध मार्गसे चलते और जैसे हम लोग निज शास्त्रसे परितुष्ट हैं, वैसे ही वे लोग भी निज निज शास्त्रोंके जरिये परितुष्ट हैं। देखनेसे सन्देह युक्त होकर अधिक कल्याणकारी क्या है, उसे हम लोग निश्चय करनेमें समर्थ नहीं हैं। यदि सब शास्त्रोंका मत एक हो, तो श्रेय मालूम होसके, परन्तु अनेक प्रकारके शास्त्रोंके अनेक मत होनेसे श्रेय अत्यन्त निगूढ़ भावसे प्रविशित हुआ है। इस ही निमित्त मुझे बोध होता है श्रेय बहुत सी शङ्कासे परिपूरित है, इसलिये आप उस विषयको वर्णन करिये मैं आपका निकटवर्त्ती शिष्य हूं, आप मुझे शिक्षा दोजिये।

नारदमुनि बोले, हे पुत्र गालव! शास्त्र चार प्रकारके हैं, तिसमेंसे "धर्म्म नहीं है," यह एक वेदसे वहिर्भूत शास्त्र है। दूसरा शाक्यसिंहका बनाया हुआ चैत्यवन्दनादि रूप धर्म्मशास्त्र है। तीसरा वेदोक्त धर्म्म ही धर्म्म है, दूसरा धर्म्म धर्म्म नहीं है। चौथा "धर्म्माधर्म्मसे अतीत वस्तु मात्र है, और कुछ भी नहीं है" ये सब शास्त्र संकल्पके अनुसार पृथक् पृथक् रूपसे कल्पित हुए हैं। उनमेंसे जो जिसे कल्याणकारी समझता है; उसके पक्षमें वही उत्तम है। और तुम गुरुजनोंके निकटमें उनको जानके आलोचना करो। उन सब शास्त्रोंमें अनेक भांतिके आत्मज्ञानके उपायभूत सब धर्म्मोंका वर्णन स्वतन्त्र स्वतन्त्ररूपसे देखोगे। शास्त्रोंको स्थूल दृष्टिसे देखनेसे अभिप्रेत धर्म्म आत्मतत्व पूर्ण रीतिसे प्राप्त नहीं हो सकता, सूक्ष्मदर्शी धीर पुरुष सरलभावसे देखते हुए शास्त्रोंकी परम गति अवलोकन किया करते हैं। जो परम निश्रेयस्वरूप और निःसंशयात्मक है, जो सब प्राणियोंके अभयदाताओंको अनुग्रह और हिंसक मनुष्योंको निग्रहस्वरूप है तथा जो धर्म्म, अर्थ, काम, इन त्रिवर्गोंका संग्रह करनेवाला है, मनीषी लोग उसे ही कल्याणकारी कहा करते हैं। पाप कर्म्मोंसे निवृत्ति सदा पुण्यशीलता और साधुओंके सङ्ग समुदाचार, यही निःसन्देह कल्याणकारी है। सब जीवोंके विषयमें मृदु व्यवहार, व्यवहार विषयमें सरलता और मधुर वचन यही निःसन्देह कल्याण है। देवता, पितर और अतिथियोंको तृप्तिसाधन, अन्नदान और सेवकोंको परित्याग न करना ही कल्याणकारी है। सत्य वचन ही उत्तम है, सत्य ज्ञान अत्यन्त दुष्कर है तो प्राणियोंको अत्यन्त हितकर है, मैं उसे ही सत्यका विषय कहता हूं।

अहंकारका त्याग, प्रमादका निग्रह, सन्तोष और अकेले धर्म्माचरण करना सबसे उत्तम श्रेय कहके वर्णित हुआ करता है। धर्म्मके अनुसार वेद और वेदान्त शास्त्रको पढ़ना और ज्ञानके निमित्त प्रश्न करना, येही निःसन्देह कल्याणस्वरूप हैं। कल्याणकी इच्छावाले मनुष्य केवल शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धको कभी अधिक सेवन न करे तथा रात्रिको भ्रमण करना, दिनमें सोना, आलस, चुगलखोरी, मद, अधिक भोजन और बहुत थोड़ा भोजन छोड़ दे। दूसरेको निन्दाकर अपने बड़ाईकी चेष्टा न करे, निज गुणोंके सहारे अपनेसे श्रेष्ठ पुरुषोंसे बड़ाई पानेके लिये यत्नवान होवे, नीचोंसे बड़ाईकी इच्छा कभी न करनी चाहिये। निर्गुण मनुष्य ही अपनेको अधिक सम्मान भाजन समझके अपने गुण और अपने ऐश्वर्य्यकी बड़ाई करके दूसरे गुणवान मनुष्योंके दोषोंको कहके उनकी निन्दा किया

करते हैं। जिन्होंने कभी शिक्षा नहीं पाई, वे अपने अभिमानसे मतवारे होकर महाजनोंसे अपनेको अधिक गुणवान समझते हैं और गुण-युक्त विपश्चित पुरुष किसीको भी निन्दा न करके और अपने उत्कर्षको वर्णन करनेमें विरत होके महत् यश लाभ किया करते हैं। पुष्पोंसे उत्तम सुगन्ध लानेवाला पवित्र वायु किसी प्रकारका वचन न कहके बहा करती है और निर्म्मल सूर्य्य कुछ भी न कहके आकाशमें प्रकाशित हुआ करता है। जिन्होंने ऊपर कहे हुए आत्म उत्कर्ष स्थापन आदि दोषोंको बुद्धिसे आलोचना करके परित्याग किया है और उक्त दोषोंका उल्लेख नहीं करते वे लोकसमाजमें यशस्वी हुआ करते हैं। मूर्ख लोग केवल अपनी प्रशंसासे लोकमें प्रकाशित नहीं होते और कृतविद्य पुरुष गढ़ेमें पड़े रहनेपर भी प्रकाशित हुआ करते हैं। ऊंचे स्वरसे असार-भावसे उच्चारण किया हुआ शब्द भी शान्त होजाता है, परन्तु सुभाषित शब्द मृदु भावसे उच्चारित होनेपर भी अवश्य ही लोकमें प्रका-शित हुआ करता है, जैसे विभाकर सूर्य्यका-न्तमणिके संयोगसे अपना अग्निरूप प्रदर्शित करता है, वैसे ही गर्व्वित मूढ़ लोग भी असा-रमय बहुभाषणसे अन्तरात्माका क्षुद्र तमल प्रकट किया करते हैं। इन्हीं सब कारणोंसे कल्याणको इच्छा करनेवाले मनुष्य नानाशा-स्त्रोंके ज्ञानजनित बुद्धिको अभिलाष किया करते हैं, प्राणियोंको चाहे कितना ही लाभ क्यों न होवे, मेरे विचारमें बुद्धिलाभ ही सबसे उत्तम है।

बिना पूछे किसीसे कुछ वचन कहना उचित नहीं है और अन्यायपूर्व्वक पूछनेसे भी उत्तर देना अनुचित है; ज्ञानवान् मनुष्य मेधावी होनेपर भी जड़की भांति बैठे रहें; तथा स्वधर्म्ममें रत, वदान्य, धर्म्मनिष्ठ साधु लोगोंके समीप बास करनेकी इच्छा करें। जिस स्थानमें ब्राह्मणादि चारों वर्णोंमें सङ्कर हों; कल्याणको इच्छा करनेवाला मनुष्य वहां किसी प्रकार भी निवास न करे। किसी मनुष्यको इस लोकमें कुछ कार्य्य न करके भी यथा प्राप्त वस्तुओंके जरिये सहजमें ही जीविका निभती है, कोई पुण्यवानके संसर्गमें रहके विमल पुण्य उपभोग करता है, कोई पापीके सङ्गमें रहनेसे पाप भोग किया करता है। जैसे जल, अग्नि और चन्द्रकिरणके स्पर्श होते ही सर्दी गर्म्मी आदि सुखदुःखका अनुभव होता है, वैसे ही सत् और असत् संसर्गसे भी पाप पुण्य देखा जाता है। जो भोजनको वस्तुओंके रसका स्वाद न लेकर अर्थात् मीठे तीतेका केवल स्वाद न लेके पेट भरनेके निमित्त ही भोजन किया करते हैं, वही विघसाशी है, और जो भक्ष्यवस्तुओंको परीक्षा करके रसका स्वाद लेते हैं, उन्हें ही कर्म्मपाशके वशीभूत जानो; इसलिये इन्द्रियपोषक मनु-ष्योंको कभी संसारसे पार होनेको सम्भावना नहीं है। जिस स्थानमें प्रमाणजनित ज्ञान पूछ-नेवाले पुरुषोंके असत्कार पूर्व्वक पूछनेपर भी ब्राह्मण उनके निकट धर्म्म वर्णन करते हैं, बुद्धिमान मनुष्य उस स्थानको परित्याग करें; और जिस स्थानमें शिष्य और उपाध्यायके व्यव-हार उत्तम सावधानी तथा यथावत शास्त्रयुक्त हुआ करते हैं, कौन पुरुष उस स्थानको परि-त्याग कर सकता है। जिस देशमें अपने सम्मा-नकी इच्छा करनेवाले मनुष्य विपश्चितोंके आकाशकी वस्तुओंको भांति निरवलम्बन अर्थात् अविद्यमानतामें दोष वर्णन करते हैं, वहां कौन पण्डित बास करनेकी इच्छा करेगा; जिस देशमें लोभी पुरुषोंके जरिये प्रायः सब धर्म्मबन्धन शिथिल होते हैं। जलते हुए चेला-ञ्चलकी भांति उस देशको बिना त्यागे कौन निश्चिन्त रह सकता है। जिस देशमें मनुष्य मत्सरहीन और निःशङ्क होके धर्म्माचरण करते हैं, उस ही पुण्यशील साधुसेवित देशमें निवास

करना उचित है। जिस देशमें मनुष्य अर्थके निमित्त धर्म्माचरण करते हैं, बुद्धिमान मनुष्य कदापि वहांपर निवास न करे, क्योंकि उस देशमें बसनेवाले सब मनुष्य ही पापकारी होते हैं। जिस देशमें पापकर्म्मोंसे जीवित रहनेकी इच्छा करके लोग निवास किया करते हैं, सर्प-युक्त गृहके समान उस देशसे शीघ्र ही प्रस्थान करना उचित है।

जिस कर्म्मके जरिये पूर्व्व वासनाका सम्बन्ध होके तीव्र दुःखग्रस्त न होना पड़े, जो अपने पुनर्ज्जन्मकी इच्छा न करे, पहलेसे ही उसे पूर्ण रीतिसे ऐसे कर्म्मोका अनुष्ठान करना योग्य है। जिस राज्यमें राजा और राजपुरुष लोग कुटुम्बी जनोंके पहले भोजन करते हैं, बुद्धिमान मनुष्य उस राज्यको त्याग दे। जिस राज्यमें यजन और अध्यापन कार्य्यमें नियुक्त सनातन धर्म्ममें रत श्रोत्रिय पुरुष प्रथम भोजन करते हैं, उस राज्यमें वास करना उचित है जिस राज्यमें स्वाहा, स्वधा और वषट्कार मन्त्र पूर्ण रीतिसे अनुष्ठित होकर सदा वर्त्तमान रहते हैं, वहां किसी प्रकार विचार भी न करके निवास करे। जीविकाके वशमें आकर्षित ब्राह्मणोंको जहां अपवित्र देखे, उस राज्यमें पहुंचने पर भी उसे विष मिले हुए अन्नकी भांति परित्याग करे। जिस राज्यमें प्रियमान मनुष्य बिना मांगे दान करें, चित्त जीतनेवाला पुरुष कृतकृत्य और स्वस्थचित्त होकर वहां वास करे। जिस देशमें अविनीत पुरुषोंके विषयमें दण्डविधान और कृतबुद्धि लोगोंका सत्कार हुआ करता है, उस पुण्यशील साधुसेवित स्थानमें विचरना और निवास करना उचित है। जो लोग जितेन्द्रिय पुरुषोंके ऊपर क्रोध किया करते हैं, और जो साधुओंके विषयमें दुष्ट व्यवहार करते हैं, उन अविनीत लोभी पुरुषोंके निमित्त महत् दण्ड धारण करना चाहिये। जिस देशमें राजा धर्म्ममें तत्पर होकर धर्म्मके अनुसार प्रजापालन करता है, और विषयाभिलाषको त्यागके सर्व्व सम्पत्तिशाली होता है, वहांपर कुछ विचार न करके निवास करना उचित है। जिन राजाओंका ऐसा चरित्र है, वे निज देशवासी प्रजाको कल्याण-युक्त करके शीघ्र ही उन्नतिशाली करते हैं। तुम्हारे पूछनेके अनुसार मैंने तुम्हारे समीप यह कल्याणका विषय वर्णन किया। आत्माके श्रेयको प्रधानताको वर्णन करनेमें किसीकी भी सामर्थ नहीं है। इस ही प्रकार जीविकाके उद्देश्यसे जो लोग सावधान-चित्त होंगे, उनका स्वधर्म्मके सहारे ही इस लोकमें अत्यन्त कल्याण होगा।

२८७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, मेरे समान राजा पृथ्वी पालनमें नियुक्त होकर किस प्रकार मोक्ष धर्म्मका अनुष्ठान करनेमें समर्थ होगा। और सदा कैसे गुणोंसे युक्त होनेसे आसक्ति-पाशसे छूटेगा।

भीष्म बोले, इस विषयमें प्रश्न करनेवाले सगरके सङ्ग अरिष्टनेमिके कहे हुए प्राचीन इतिहासको तुम्हारे समीप कहता हूं सुनो।

सगर बोले, हे ब्रह्मन्! किस प्रकारके परम कल्याणयुक्त मनुष्य इस लोकमें सुख भोग करते हैं, और किस भांति शोकाकुल और क्षुब्ध नहीं होते। मैं इसे ही जाननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, सब शास्त्रोंके जाननेवाले पण्डि-तोंमें अग्रगण्य अरिष्टनेमिने सगरकी बात सुनके उपदेशको योग्यता विचार कर यह उत्तर दिया। इस लोकमें मोक्ष सुख ही यथार्थ सुख है, धन धान्य और पुत्र वा पशुओंके पालनमें आसक्त मनुष्य उसे नहीं जान सकते। विषया-सक्त चित्त और अशान्त मन उन मूर्खोंके अज्ञान रोगकी चिकित्सा करनेमें समर्थ नहीं हैं। जो मूढ़ मनुष्य स्नेहपाशसे बद्ध हुए हैं, वे

कदाचित मोक्ष पथके पथिक नहीं होसकते। अब स्नेहसे जो सब पाश उत्पन्न होते हैं, उन्हें कहता हूं, तुम सावधान होकर मेरे समीप सुनो; विज्ञानवान मनुष्य ही उसे सुननेमें समर्थ हैं। कालक्रमसे पुत्रोंके यौवन सीमामें पहुंचनेपर उनका विवाह करके जब उन्हें जीविका निर्व्वाहमें समर्थ जाने तभी संसार बन्धनसे मुक्त होकर यथासुखसे धर्म्माचरण करे। प्रतिपालित पुत्रवत्सला भार्य्याको बूढ़ी जानके यथासमयमें उसे परित्याग करो और परम पुरुषार्थ मोक्ष पदार्थके अन्वेषण करनेमें यत्नवान होजाओ। इन्द्रियोंसे इन्द्रिय विषयोंको यथारीतिसे अनुभव करके सापत्य अथवा निर-पत्य ही होके संसार बन्धनसे छूटकर यथा सुखसे विचरो। यदृच्छा प्राप्त विषयलाभमें रागद्वेषसे रहित होके विषयलाभ जनित उत्सु-कता परित्याग करते हुए संसारसे मुक्त होकर यथा सुखसे भ्रमण करो। यह तुम्हारे समीप मैंने मोक्षका विषय संक्षेपमें वर्णन किया है, अब उसे ही विस्तारपूर्व्वक कहता हूं, सुनो। इस लोकमें जिन सब मनुष्योंने स्नेह बन्धनको तोड़ा है, वेही सुखी होकर विचरते हैं, और जो सब मनुष्य चित्तके विषयोंमें आसक्त हैं, वेही निःसन्देह विनष्ट होते हैं। चींटी आदि कीड़े भी आहार संग्रह करते हैं, परन्तु वे भी नष्ट होते हैं; इसलिये लोकमें जो पुरुष विषयोंमें अनासक्त हैं, वेही सुखी और जो लोग विषया-सक्त हैं, वेही नाशमान हैं। तुम्हें यदि मोक्षकी इच्छा हुई हो, तो "यह मेरे बिना किस प्रकार जीविका निर्व्वाह करेगा" स्वजनोंके विषयमें ऐसी चिन्ता करनी उचित नहीं है। जीव स्वयं ही उत्पन्न होता, स्वयं ही बर्द्धित हुआ करता और स्वयं ही सुख दुःख भोग करता तथा मृत्युके मुखमें प्रविष्ट होता है। मनुष्य पिता माताके संगृहीत अथवा निज उपार्जित अन्न वस्त्र पाया करता है; इस लोकमें ऐसा विषय नहीं है, जो पूर्व्व जन्ममें न किया गया हो। जीवमात्र ही निज कर्म्मोंके जरिये रचित होकर पूर्व्व जन्मकृत कर्म्म फलोंके विभाग करनेवाले विधाताके जरिये विहित भक्ष्य लाभ करते हुए पृथ्वीपर लोगोंकी ओर दौड़ते हैं जब कि मनुष्य मट्टीके पुतलेकी भांति तथा सदा परतन्त्र है, तब वह स्वयं अदृढ़ स्वरूप होकर किस प्रकार स्वज-नोंके भरणपोषणका कारण होगा, जब तुम्हारे बहुत यत्न करनेपर भी तुम्हारे सम्मुखमेंही मृत्यु तुम्हारे स्वजनोंका नाश करती है, तब तुम्हें आत्माको जानना उचित है, स्वजनोंको जीवद्-शामें तुम उनके भरण पोषणमें नियुक्त रहते हो; परन्तु उस भरण-पोषणके समाप्त न होते ही तुम स्वयं उन्हें परित्याग करके यमलोकके अतिथि बनोगे; जब तुम मरके स्वजनोंको सुखी वा दुःखी कुछ भी न जान सकोगे; तब तुम्हें इस प्रकार विवेचना करनी उचित है कि मुझे भी लोकान्तरमें जानेपर मेरे पुत्र मुझे न जान सकेंगे, इससे वे मेरा कुछ भी उपकार न करेंगे। तुम्हारे पुत्रोंके बीच कोई आत्मीय निज जरा आदि रोगोंको भोगेंगे और तुम उसे छुड़ानेमें समर्थ न होगे; इस ही प्रकार दूसरे लोग भी तुम्हारे रोगादिकोंको दूर करनेमें समर्थ नहीं हैं; इसे जानके तुम्हें आत्महितका अनुष्ठान करना उचित है। इस लोकमें कौन किसके निमित्त निश्चित है, इसे विशेषरूपसे जानके मोक्ष विषयमें मन लगाना चाहिये और फिर धारणा करो।

जिस मनुष्यने भूख, प्यास, क्रोध, लोभ और मोह आदिको जय किया है, वही सतोगुणकी अधिकतायुक्त मुक्त पुरुष है। जो मनुष्य जूआ खेलने, मद्य पीने, स्त्री सेवन करने और मृगया विषयमें सदा प्रमत्त नहीं होते अर्थात् आत्म विस्मृति पूर्व्वक उसमें आसक्त नहीं होते, वेही मुक्त पुरुष हैं। प्रतिदिन कितना भोजन करना होगा और प्रति रात्रिमें ही कितना भोजन

करूंगा; इस प्रकार जो पुरुष भोग विषयमें शोक प्रकाश करते हैं, उन्हें ही दोषदर्शी कहा जाता है। जो सावधान होकर बार बार खीसङ्गसे अपना जन्म होता है, ऐसी ही आलोचना करते हैं, उन्हें ही यथावत् मुक्त पुरुष कहना चाहिये। जो जीवोंके जन्म मरन और जीवनके क्लेशको यथार्थ रूपसे जानते हैं, इस लोकमें वेही मुक्त पुरुष हैं। सहस्रकोटि छकड़े पर जो अन्न ढोया जाता है, उसे और पुरुषके आहार परिमित अन्नको जो समभावसे देखते हैं, और प्रशाद वा मन्त्रमें जिन्हें समज्ञान है, वेही मुक्त होते हैं। जो सब लोगोंको मृत्युसे आक्रान्त देख कर पीड़ित नहीं होते, बल्कि सुखी हुआ करते हैं, और जो थोड़े लाभसे भी सन्तुष्ट हुआ करते हैं, इस लोकमें वे ही मुक्त पुरुष हैं। जठराग्नि, भोक्ता और भोज्य अन्न ही सोम स्वरूप है, यह सब जगत् उन दोनोंसे युक्त है, परन्तु मैं उन दोनोंसे पृथक् हूं, जो लोग इसे अवलोकन करते हैं, और जो सुख दुःख आदि अद्भुत मायिक भावोंसे संस्पृष्ट नहीं होते, वेही मुक्त पुरुष हैं। पलङ्ग और भूमितल जिसके पक्षमें समान तथा चावल और कदन्नमें जिसे तुल्य ज्ञान है, वेही मुक्त पुरुष हैं। चौम वस्त्र और कुशचीर, कौशेय वस्त्र और वल्कल तथा कम्बल और चर्म्ममें जिसे समान ज्ञान है, वेही मुक्त पुरुष हैं। जो पञ्चभूतोंसे उत्पन्न हुए सबको आत्म सदृश देखते हैं, और देखके उनके विषयमें वैसाही व्यवहार किया करते हैं, इस लोकमें वेही मुक्त पुरुष हैं।

जिन्हें सुख, दुःख, लाभ, हानि, जय, पराजय, इच्छा, द्वेष, भय और उद्वेगमें समान ज्ञान रहता है, वेही सब प्रकारसे मुक्त पुरुष हैं। जो रक्त, मूत्र और मलके आधार इस शरीरमें बहुतसे दोषोंको देखते हैं, वेही मुक्त होते हैं। जो बलके सहारे बलीपलित-संयोग कृशता, विवर्णता और कुजल अवलोकन करते हैं, वेही मुक्त होते हैं। जो कालक्रमसे निज शरीरमें पुरुषत्वकी हानि, दर्शनशक्तिकी उपरति, बधिरता और दुर्ब्बलता देखते हैं, वेही मुक्त होते हैं। प्रसिद्ध और प्रभावयुक्त सहस्रों राजेन्द्र इस पृथ्वीको छोड़के परलोकमें गये हैं, इसे जो विचारते हैं वेही मुक्त होते हैं। जो इस लोकमें सब अर्थ दुर्लभ, क्लेश कदम्ब ही सुलभ और कुटुम्बके निमित्त दुःख दर्शन करते हैं, वे मुक्त होते हैं। इस लोकमें अपत्योंमें विगुणल और लोकके बीच अधिकांश ही गुणहीन हैं, इसे देखके कौन पुरुष मोक्षका अभिनन्दन न करेगा। जो मनुष्य शास्त्रीय और लौकिक ज्ञानप्राप्त करके मनुष्य जन्मको असार समझता है, वही सब प्रकारसे मुक्त होता है। गार्हस्थ अथवा मोक्ष विषयमें यदि तुम्हारी बुद्धि विह्वल न हुई हो, तो मेरा यह बचन सुनके विमुक्तके समान व्यवहार करो। पृथ्वीपति सगरने अरिष्टनेमिके कहे हुए बचनको पूर्णरीतिसे सुनकर अद्वेष्ट्रत्व आदि ज्ञानज गुणोंसे युक्त होकर प्रजापालन किया था।

२८८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे तात कुरु पितामह! हमारे हृदयमें बहुत समयसे यह वक्ष्यमाण कौतूहल विद्यमान होरहा है, इसलिये आपके समीप मैं उस विषयको सुननेकी इच्छा करता हूं। महाबुद्धिमान् देवर्षि उशना देवताओंके अप्रिय कार्य्यमें रत होकर किस कारण असुरोंके सदा प्रियकर थे और किस कारण अत्यन्त तेजस्वी देवताओंके तेजको क्षय किया था; दानव लोग ही किस लिये देवताओंके संग सदा वैरयुक्त थे। अमरद्युति उशना किस लिये शुक्रत्वको प्राप्त हुए और वह किस प्रकार समृद्धियुक्त हुए थे, आप मेरे समीप यह सब

वर्णन करिये। हे पितामह ! वह तेजस्वी शुक्र किस कारणसे आकाशमण्डलके मध्यभागसे गमन नहीं करते इन सब विषयोंको मैं विस्तार पूर्व्वक सुननेकी इच्छा करता हूं .

भीष्म बोले, हे पापरहित ! मैंने जिस प्रकार निजबुद्धिके अनुसार इसे सुना है, वह तुम्हारे निकट कहता हूं। हे राजन् ! तुम सावधान होकर यह सब विषय ज्योंका त्यों सुनो। यह दृढ़व्रती, भृगुवंशमें उत्पन्न हुए माननीय मुनि किसी कारणसे देवताओंके अप्रियकारी हुए थे। इस विषयमें यह इतिहास है, कि दानव लोग देवताओंको पीड़ित करके भृगुपत्नीके आश्रममें प्रवेश कर आपदरहित होकर निवास करने लगे। देवता लोग वहां प्रवेश करनेमें समर्थ न होकर सर्व्वव्यापी भगवान हृषीकेशके शरणमें गये। अनन्तर भगवान विष्णुने सुदर्शन चक्रकी धारासे भृगुपत्नीका शिर काट डाला। तब अन्तमें मरनेसे बचे हुए असुरोंने उसके एव भार्गवका आसरा ग्रहण किया। शुक्र मातृवधसे दुःखित होकर असुरोंको अभयदान करके देवताओंके विषयमें अत्याचार करनेमें प्रवृत्त हुए। अनन्तर जगन्नियन्ता पाकशासन इन्द्र और उनके धनाध्यक्ष यक्ष और राक्षसोंके स्वामी धनद कुबेर विरोध मिटानेके लिये शुक्रके निकट आये। योगसिद्ध महामुनि शुक्रने धनाधिपति कुबेरके हृदयमें योगबलसे प्रवेश कर योगबलसे ही उन्हें रुद्ध करके उनका सब धन हर लिया, सब धन हरे जानेपर धनपति किसी प्रकार सुस्थ न रह सके; उन्होंने दीनदशासेयुक्त और व्याकुल होके सुरसत्तम शिवके निकट जाके प्रियदर्शन अनेक रूपवाले अत्यन्त तेजस्वी देवश्रेष्ठ रुद्रदेवके निकटवर्त्ती होकर निवेदन किया, कि योगात्मा भार्गवने योगबलसे मेरे शरीरमें प्रविष्ट होके मुझे रुद्ध करके मेरा समस्त धन हर लिया है। वह महातपस्वी उशना योगबलसे सब धन अपने अधिकारमें करके मेरे शरीरसे निकल गये हैं। हे राजन् ! महायोगी महेश्वर धनाधिपतिका ऐसा वचन सुनके क्रोधसे नेत्र लालकर शूल लेकर खड़े रहे। वह उस परमास्त्रको ग्रहण करके "वह कहां है ? वह कहां है ?" बारम्बार ऐसा ही कहने लगे, उशना उनका अभिप्राय जानके दूरसे उनके दृष्टिगोचर हुए।

योगसिद्ध शुक्र महायोगी महात्मा रुद्रदेवके रोषके विषयको जानके विचारने लगे, कि उनके निकट जाऊं अथवा इस स्थानसे प्रस्थान करूं। वा इस ही स्थानमें स्थित रहूं; अनन्तर योगसिद्ध उशनाने उग्र तपस्याके सहारे महानुभाव महेश्वरके विषयमें विचार करके यह निश्चय किया, कि "मैं शूलके ऊपर निवास करूं, तो महादेव मेरे ऊपर शूल न चला सकेंगे" ऐसा समझके वह शैव शूलके अग्रभागमें स्थित हुए। विज्ञानरूप तपसिद्ध शुक्रको शूलस्थ जानके देवेश महादेवने हाथसे उस शूलको नमित किया। उग्रायुध महादेवने अपरिमित प्रभावयुक्त हाथसे शूलको शरासर रूपसे नमित किया था, इससे ही उनका नाम पिनाकी हुआ। अनन्तर उमापति रुद्रदेवने भार्गवको हाथके बीच देख कर उसी हाथसे ही उठाके मुख बाके उसहीमें डाल दिया। महात्मा भृगुनन्दन उशना महादेवके उदरमें पैठकर वहां विचरने लगे, अन्न आदिकी भांति जीर्ण न हुए।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! महातेजस्वी भृगुनन्दनने महादेवके जठरके बीच किस निमित्त विचरण किया था और वहां किस प्रकार तपस्या की थी ?

भीष्म बोले, पहले समयमें महाव्रती महादेवने स्थाणुकी भांति जलके बीच निवास करके तपस्याकी थी; उस तपस्यामें उनका दस हजार अर्व्बुद वर्ष बीत गया। अनन्तर वह दुस्तर

तपस्या करके महाहृदसे निकले, तब देवश्रेष्ठ पितामह ब्रह्मा उनके समीप उपस्थित हुए। अविनाशी ब्रह्माने शिवके निकट जाके उनसे तप वृद्धि और कुशलका विषय पूछा, वृषभध्वजने तपस्या उत्तमरीतिसे हुई है, ऐसा ही उत्तर दिया। अनन्तर सत्य धर्म्ममें रत अचिन्त्य स्वभाव महाबुद्धिमान शङ्करने देखा, कि तपस्याके संयोगसे शुक्रने भी उत्कर्ष लाभ किया है। हे महाराज! महायोगी वीर्य्यवान शङ्कर उस तप रूप धनसे युक्त होकर त्रिभुवनमें विराजने लगे। अनन्तर योगात्मा पिनाकपाणिने ध्यानयोगमें समाधि लगाई, उशना भी व्याकुल होके उनके उदरके बीच लीन होरहे। महायोगी भार्गव महादेवके उदरसे निकलनेकी इच्छा करके उदरमें रहके ही उस देवदेवकी स्तुति करने लगे; परन्तु उससे कुछ भी फल न दीख पड़ा। अनन्तर जठरके मध्यवर्त्ती महामुनि उशना विनय वचनसे बोले, हे अरिन्दम! आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये! जब शुक्र बार बार इस ही प्रकार कहने लगे, तब महादेव उनसे बोले, "तुम हमारे लिङ्गके मार्गसे निकलो" त्रिदशेश्वर महादेवने ऐसा वचन कहके सब इन्द्रिय द्वारोंको रुद्ध करते हुए लिङ्गद्वार सब भांतिसे शुक्रसे पिहित रहनेसे उसे नहीं देखा, अनन्तर उशना तेजसे प्रज्वलित होकर बाहर निकले, लिङ्गद्वारसे बाहर हुए थे इसहीसे उनका शुक्र नाम हुआ। और लिङ्गसे निकलनेसे ही वह हम लोगोंकी भांति आकाशमण्डलके मध्यभागसे गमन करनेमें समर्थ नहीं है। महादेव उस तेजपुञ्जसे प्रकाशमान शुक्रको निकला हुआ देखकर क्रोधयुक्त होकर हाथमें शूल लेकर खड़े हुए। निजपति महादेवको क्रुद्ध हुआ देखकर देवीने उन्हें निवारण किया महादेवके भवानीसे निवारित होनेपर शुक्रने देवीका पुत्रत्व लाभ किया।

देवी बोली, हे देव! जब शुक्र हमारा पुत्र हुआ, तब इसको हिंसा करनी तुम्हें उचित नहीं है; तुम्हारे उदरसे निकलनेसे कोई कदापि विनष्ट न होगा। हे राजन्! अनन्तर भगवान् महादेव भगवतीके ऊपर प्रसन्न होकर हंसते हुए बार बार यह वचन बोले, इस समय इसकी जहां इच्छा हो, उस स्थानमें गमन करे, अन्तमें महामुनि बुद्धिमान् भार्गवने वरदाता महादेव और जगन्माता उमादेवीको प्रणाम करके निज अभिलषित स्थानमें गमन किया। हे तात भरतश्रेष्ठ! तुमने मुझसे जो पूछा, मैंने तुम्हारे निकट उस ही महानुभाव भार्गवका चरित्र वर्णन किया।

२८९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे महाबाहु पितामह! इसके अनन्तर जो कल्याणकारी है, आप उसे ही मेरे समीप वर्णन करिये आपके अमृत समान वचनको सुनके मुझे किसीसे भी तृप्ति नहीं होती है। हे पुरुषसत्तम! मनुष्य कैसा शुभ कर्म्म करके इस लोक और परलोकमें कल्याण लाभ करता है, आप उसे ही कहिये।

भीष्म बोले, इस विषयमें पहले समयमें महा यशस्वी राजा जनकने महात्मा पराशरसे जो प्रश्न किया था, उसे ही मैं तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं सुनो। "इस लोक और परलोकमें जो सब भूतोंके लिये कल्याणकारी है और जो सबका ही ज्ञेय विषय है आप मेरे निकट उसे ही वर्णन करिये।" राजर्षि जनकका ऐसा वचन सुनकर सब धर्म्मोंके विधाताको जाननेवाले तपोबलसेयुक्त, मननशील पराशर मुनि राजाके ऊपर कृपा करनेकी इच्छा करते हुए वक्ष्यमाण वचन कहने लगे। पराशर मुनि बोले, उपार्ज्जित धर्म्महो इस लोक और परलोकमें कल्याणकारी है; मनीषी लोग जैसा कहते हैं, उससे बोध होता है, कि धर्म्मसे श्रेष्ठ वस्तु और कुछ

भी नहीं है। हे नृपसत्तम! मनुष्य धर्म्माचरण करके स्वर्गलोकमें वास करता है, देहधारियोंके योगयज्ञादि कर्म्म ही धर्म्ममय हैं, गार्हस्थ्य आदि आश्रमोंमें निवास करनेवाले सज्जन लोग धर्म्म-निष्ठ होकर इस लोकमें निज निज कार्य्योंको किया करते हैं। हे तात! इस लोकमें जीवन-यात्रा निभनेके उपाय चार प्रकारसे कहे गये हैं ब्राह्मणोंको प्रतिग्रह, क्षत्रियोंको कर ग्रहण करना, वैश्योंके लिये कृषि वाणिज्य और शूद्रोंके निमित्त सेवा करनेकी वेतन; मनुष्य जिस स्थानमें निवास करते हैं, जीविका भी यदृच्छा-क्रमसे वहां उपस्थित होती है। प्राणि समूह अनेक प्रकारके पुण्य पापका कार्य्य करके पञ्च-भूतोंमें विभक्त अर्थात् पञ्चत्व प्राप्त होनेपर उनकी नाना भांतिकी गति हुआ करती है। पापियोंको तिर्य्यग् योनि पुण्यात्माओंको स्वर्ग-वास पाप-पुण्य समान रहनेपर मनुष्य जन्म और तत्वज्ञानके सहारे पाप पुण्यका नाश होनेपर मुक्ति हुआ करती है। जैसे ताम्रमय पात्रद्रवी भूत सुवर्ण वा रौप्यमें डाले जानेसे सोना तथा चांदीकी भांति दिखाई देता है, वैसे ही जीव पूर्व्वकर्म्मोंके वशमें होकर जन्म ग्रहण करता है बिना बीजके कोई वस्तु उत्पन्न नहीं होती; जो बीज ग्रीष्मकालमें पांशुसे ढके रहनेसे नहीं दीख पड़ता, वर्षाकालमें वही अंकुर निकलनेसे जाना जाता है। इस ही भांति दृष्टादृष्ट कारणके जरिये सुख आदि उत्पन्न होते हैं; इसलिये पूर्व्व जन्ममें कुछ सुकृत न करनेसे जीव इस जन्ममें सुखलाभ करनेमें समर्थ नहीं होता, इससे सुकृतसे ही देहाधिपत्य अथवा देहक्षय प्राप्त होने-पर मनुष्य सुखोंको भोग करता है। हे तात! देवताओंमें कुछ पुण्य वा पापका लक्षण नहीं दीखता, उस विषयमें अनुमान वा साधन नहीं है। देव, गन्धर्व्व और दानव लोग स्वभावसे ही जन्म ग्रहण किया करते हैं; उनमें कोई कार-णान्तर नहीं है। मनुष्य परलोकमें जानेपर इस लोकके किये हुए सब कर्म्मोंको सदा स्मरण करनेमें समर्थ नहीं होते; परन्तु उन कर्म्मोंके फलप्राप्त होनेपर पुण्य-पाप नीति वा अनीतिके जरिये प्रतिपादित चार प्रकारके कर्म्म स्मरण किया करते हैं। "पुण्यकर्म्मसे पवित्रता होती है" इत्यादि वेदाश्रय वचन लोकयात्रा निर्व्वाहके उपाय हुए हैं। हे तात! मनकी शान्तिके लिये लोकायत शास्त्र-प्रणेता प्राचीन पुरुष वृहस्पति आदिकी ऐसी आज्ञा नहीं है। नेत्र, मन, वचन और कर्म्मसे मनुष्य चार प्रकारके कर्म्मोंको जिस भावसे किया करता है उस ही भावसे उसकी फलप्राप्ति होती है। हे राजन्! कदा-चित मनुष्य निरन्तर दुःख पाता है, कभी सुख दुःख दोनों ही मिश्रित भावसे भोग किया करता है; कल्याणकारी कर्म्म हो, अथवा पाप कर्म्म ही होवे, उसके निमित्त पुण्य-पापात्मक अपूर्व्वके भोगे बिना कदापि विनाश नहीं होता, हे तात! संसारमें प्रायः डूबे मनुष्य दुःखोंसे छूटनेपर उनका सुकृत पक्षपात रहित होकर दुष्कृतके अविरोधमें निवास करता है।

हे मनुष्यराज! पुरुष दुःखका नाश करके सुकृत कर्म्मकी सेवा करता है, और सुकृत नाश होनेके अनन्तर दुष्कृत कर्म्मोंका फल भोग किया करता है, ऐसा ही प्रणिधान करे। दम, क्षमा, धृति, तेज, सन्तोष, सत्यवादिता, लज्जा, अहिंसा, व्यसन हीनता और दक्षता, ये दशों सु-खावह अर्थात् पुण्य-पापके समुच्छेद जनित सुख ढोया करते हैं। मनुष्य जीवन पर्य्यन्त सुख वा दुःखमें आसक्त न होवे; बुद्धिमान मनुष्य सदा ब्रह्मदर्शनके निमित्त समाधि करनेमें यत्नवान होवें। मनुष्य दूसरोंके सुकृत वा दुष्कृतको भोग नहीं करता, स्वयं जैसा कर्म्म करता है, वैसा ही फल भोग किया करता है। सुख और दुःखके हेतु पुण्य और पापको तत्वज्ञानके जरिये आत्मामें लीन करके पुरुष ज्ञान पथसे गमन करनेसे अभिलषित वस्तुओंको पाता है,

और जो पुरुष पृथ्वीपर स्थित होकर स्त्री, पुत्र, पशु, गृह, धन और आराम आदिमें आसक्त होता है, वह दूसरे मार्गमें गमन करता है,—वह स्वर्ग वा नरक विषयमें कोई उपकार नहीं करता। दूसरेका जो कार्य्य देखके निन्दा करना होती है, स्वयं उस निन्दनीय कर्म्मको न करे; योगी पुरुष यदि दोषदर्शी हों, तो अवश्य ही उन्हें निन्दनीय होना पड़ेगा। हे राजन्! चत्रिय होके कादर, ब्राह्मण होकर सर्व्वभक्षी, वैश्य होके कृषि वाणिज्यके कार्य्योंमें चेष्टा-रहित हीन वर्ण शूद्र होके आलसी, विद्वान होके असद्वृत्त, कुलीन होके वृत्तिहीन, वेदज्ञ होके सत्यसे भ्रष्ट, दुश्चरित्रवाली स्त्री, योगी होके विषयानुरागी, आत्म निमित्त पाचक, मूर्खवक्ता, राजासे रहित राज्य, वेदविहित योगाभ्याससे रहित होके भी प्रजासमूहके विषयमें स्नेहहीन,—ये सभी शोचनीय हुआ करते हैं।

२६० अध्याय समाप्त।

पराशर मुनि बोले, जो मनुष्य मनोमय शरीरको और इन्द्रिय विषय शब्द स्पर्श आदिको घोड़े रूपी जानकर ज्ञानसे उत्पन्न हुई रश्मि अर्थात् चित्त-प्रतिभाके सहारे परिचालित करते हुए विषयोंको चिन्मय रूपसे अवलोकन करते हैं; वेही बुद्धिमान हैं। हे चात्र संस्कारयुक्त महाराज! जिसका मन किसी अवलम्बका सहारा न करके निवास करता है, उस वृत्तिहीन पुरुषका ईश्वर प्रणिधान सबसे श्रेष्ठ है, अर्थात् निर्व्विकल्पक समाधिके सहारे निवास करनाही सबसे उत्तम है। चीण कर्म्मवाले ब्रह्मवित साधु पुरुष गुरुके प्रसादसे उस प्रणिधानको प्राप्त करके निवृत्त होते हैं, वैसा प्रणिधान परस्पर समान पुरुषोंमें नहीं प्राप्त होता। हे मनुजेश्वर! दुर्लभ परमायु पाके विषय सेवनसे उसे नष्ट करना उचित नहीं है। पुण्य, कर्म्मके सहारे उत्तरोत्तर श्रेष्ठ लोक प्राप्त होनेके लिये मनुष्यमात्रको अवश्य प्रयत्न करना चाहिये। सत, रज और तमोगुणको ह्रास वृद्धिके तारतम्यके अनुसार कल्पित कृष्ण, धूम्र नील, लाल, पीला और सफेद, इन छःप्रकारके वर्णोंसे जो पुरुष परिभ्रष्ट अर्थात् उच्च वर्णसे नीच वर्ण लाभ करता है, वह कदापि सम्मान पानेमें समर्थ नहीं होता और जो लोग उच्च वर्ण लाभ करते राजस कर्म्मोंको सेवन नहीं करते, वेही सम्मान भाजन होते हैं इसलिये मनुष्य पुण्यकर्म्मसे ही श्रेष्ठ वर्ण लाभ किया करते हैं और पाप कर्म्मसे दुर्लभ वर्णको उत्कर्षता न प्राप्त कर सकनेसे बहुतेरे लोग आत्माको अनेक नरकोंमें डुबाते हैं। मनुष्य अज्ञानसे प्राप्त हुए दुःखको तपस्यासे दूर करे, जानके किया हुआ पाप कर्म्म केवल पापफलको ही उत्पन्न किया करता है; इसलिये परिणाममें दुःख ही जिसके फलरूपसे उत्पन्न होता है, वैसे पापकर्म्मका अनुष्ठान करना कदापि उचित नहीं है; पापयुक्त कर्म्मसे यदि महाफल उत्पन्न हो, तोभी जैसे पवित्र पुरुष चाण्डालका स्पर्श नहीं करता वैसे ही बुद्धिमान मनुष्य उस पाप कर्म्मके अनुष्ठान करनेमें विरत रहे। पापकर्म्मका फल कुत्सित कष्ट मात्र ही दीख पड़ता है; पापके वशमें होकर विपरीत दृष्टिवाला मनुष्य देहादिको ही आत्मा जानता है। इस लोकमें जिस मूढ़ मनुष्योंके अन्तःकरणमें वैराग्यका सञ्चार नहीं होता, मरनेपर भी उसे अत्यन्त ही नरक यन्त्रणासे दुःख उत्पन्न हुआ करता है। जो वस्त्र स्वयं श्वेत है, वह यदि विपरीत रङ्गसे रङ्गा जावे, तो समय विशेषमें सफेद होसकता है; परन्तु काले रंग भलातकादिसे रंगा हुआ वस्त्र कभी परिशुद्ध नहीं होता। हे मनुजेन्द्र! इसलिये मेरा यही मत है, कि प्रयत्नके जरिये किस पापसे पवित्रता लाभ की जा सकती है, और किस पापसे पवित्रता

नहीं प्राप्त होसकती, तुम इसहीको बिचारो। जो पुरुष जानके पापाचरण करके शेषमें शुभ-कर्म्मोंका अनुष्ठान करता है, वह प्रायश्चित्त करनेके निमित्त पापपुण्य दोनोंके ही फलको पृथक् रूपसे भोग किया करता है, जानके किया हुआ पाप किसी भांति भी नष्ट नहीं होता।

यदि मनुष्य बिना जाने हिंसा करे, तो वेद-शास्त्रकी अनुसारिणी अहिंसाके जरिये उसके पापकी शान्ति होती है; ब्रह्मवादी लोग ऐसा कहा करते हैं, इसही प्रकार जानके किया हुआ पापकर्म्म अहिंसाके जरिये शान्त नहीं होता; वेद शास्त्र और स्मृतियोंके जाननेवाले ब्राह्मणोंका ऐसा ही मत है कामना वा अका-मनासे किया हुआ कर्म्म चाहे थोड़ा हो चाहे अधिक वह बिना भोगे नष्ट नहीं होता; परन्तु मैं देखता हूं कि जो किया हुआ कर्म्म विद्यमान रहता है, वह पुण्य कर्म्म रूपसे प्रकाशित होने पर पापके जरिये कभी नहीं छिपता। इस लोकमें सब सूक्ष्मकर्म्म "इसे इस प्रकारसे करे" इस भांति परामर्श करके अथवा "इसे इस भांति करना चाहिये" ऐसा निश्चय करके स्थूल सूक्ष्मके तारतम्यके अनुसार सुख दुःख आदि फल उत्पन्न हुआ करते हैं; अव्यभिचारी नर-कावह कर्म्मका फल थोड़ा भी होनेसे वह सेवन किया जाता है। हे धर्म्मज्ञ! उग्रकर्म्मसे अज्ञा-नकृत कर्म्म सम्पादित हुआ करते हैं, जैसे जान-कर किये हुए कर्म्मोंका अवश्य फल उत्पन्न होता है, अज्ञानकृत कर्म्म भी वैसे ही हैं। देवता और मुनियोंके जरिये सब कर्म्म विहित हुए हैं, धर्म्मात्मा मनुष्य उन कर्म्मोंका आचरण अथवा उसे सुनके निन्दा न करें, क्योंकि अलौ-किक कर्म्म कदापि मनुष्योंके अनुष्ठेय नहीं हैं। हे राजन्! आप जिन कर्म्मोंके करनेमें समर्थ हो, मनहीमन उसका अनुशीलन करके जो लोग शुभ कर्म्म करते हैं, वेही कल्याण लाभ किया करते हैं।

हे राजन्! नवीन कपालमें डाला हुआ जल नष्ट होता है और उस जलके सम्बन्धसे कपाल भी गल जाता है और परिपक्क कपालमें डाला हुआ जल अनायास ही स्थित रहता है, जैसे जलयुक्त पात्रमें और जल डालनेसे पात्रके जलकी वृद्धि होती है, वैसे ही इस लोकमें बुद्धि युक्त कर्म्म चाहे सम हों वा विषम ही हों, पात्रके अनुसार पवित्रतायुक्त हुआ करते हैं। पाप पुण्यमें जो उदासीन हैं वैसे तेजस्वी पुरुषको कर्म्म कदापि हिंसा नहीं कर सकते, निस्तेज मनुष्य ही पापसे पराभूत हुआ करते हैं।

शत्रुओंके उन्नत होनेपर भी उन्हें जय करना राजाका कर्त्तव्य कार्य्य है, प्रजासमूहको पूर्व्वरीतिसे अवश्य पालन करना चाहिये, अनेक भांतिके यत्नसे अग्निचर्य्या अत्यन्त अनुष्ठेय है; अवस्थाके परिणाममें अथवा मध्य अवस्थामें संसारसे विरक्त होकर जङ्गलके अवलम्बसे निवास करना उचित है। हे नरेन्द्र! दमयुक्त पुरुष धर्म्मशील होकर जीवोंको अपने समान देखे और वह अपनी शक्तिके अनुसार सत्य वा सदाचारके जरिये सहजमेंही बड़ेपुरुषोंके सम्मान करनेमें यत्नवान होवे।

२९१ अध्याय समाप्त।

पराशर मुनि बोले, इस लोकमें कौन किसका उपकार करता है। कौन किसे दान किया करता है; यह प्राणि अपनी तृप्तिकेलिये आप ही सब कर्म्मोंको करता है, दूसरेका प्रया-जन सिद्धिके लिये कोई भी किसी कर्म्मको नहीं करता। "माताको देवी समान जानो, पिताको देवता समान मान्य करो" इत्यादि वेदवाक्यसे देवता समान आराधित माता पिता अवश्य ही पुत्रका उपकार करते हैं,—ऐसी आशङ्का उप-स्थित होनेपर भी जब कि यह देखा जाता है, कि अनुपकारी माता पिताको भी लोग परि-

त्याग करते हैं, तब यह निश्चय मालूम होता है कि कोई किसीका उपकार नहीं करता। मनुष्य जो गौरवके लिये पिता माताकी आराधना करता है, वह अपनेही ऐहिक और पारलौकिक हितके निमित्त, पिता-माताके हितके लिये नहीं करता। सहोदर भाई भी जब स्नेहहीन होता है, तब उसेभी जब कि मनुष्य त्याग देते हैं, तब दूसरे सामान्य लोगोंकी बातही क्या है। विशिष्टोंका विशिष्टसे दान वा प्रतिग्रह तुल्य है, सम्प्रदाता ब्राह्मणका दान प्रायुक्त दोनोंसे पुण्ययुक्त है। न्यायसे उपार्ज्जित धनको न्यायानुसार बढ़ावे यत्नपूर्व्वक धर्म्म, अर्थकी रक्षा करनी उचित है, यही शास्त्रीय निश्चय है। धर्म्मार्थी मनुष्य नीच कर्म्मसे धन उपार्ज्जन न करे; शक्तिके अनुसार सब कार्य्योंको सिद्ध करे, धन सम्पत्ति स्मरण न करे। निर्द्धन मनुष्य सावधान होकर शक्तिके अनुसार यदि भूखे अतिथिको ठण्ढा वा अग्निसे गर्म्म किया हुआ जल प्रदान करे, तो वह अन्नदानका फल भोग किया करता है।

फल मूल और पत्रसे मुनियोंकी अर्च्चना करके रन्तिदेवने इस लोकमें ही सिद्धिलाभ की थी। पृथ्वीपति शैब्यने भी उस ही प्रकार फल-पत्रके जरिये सूर्य्यदेवको सन्तुष्ट करके उस ही फलसे परम स्थान पाया, मनुष्य देवता, अतिथि पितर, पत्र और आत्माके निकट ऋणी होता है, इसलिये उनसे अऋणी होवे। स्वशाखोक्त वेदाध्ययनसे महर्षियों, यज्ञसे देवताओं, श्राद्ध और दानसे पितरों, सत्कारसे अतिथियों वेदशास्त्रमयी श्रवण मनन आदि वाणी पञ्चयज्ञसे शेष बचे अन्नके भोजन तथा जीवोंपर दया करनेसे आत्मा और जातकर्म्म आदि कार्य्योंकी यथावत् निर्व्वाह करके पुत्रोंसे अऋण होवे। मुनि लोग निर्द्धन होके भी प्रयत्नके सहारे सिद्ध हुए हैं, उन लोगोंने पूर्ण रीतिसे अग्निमें आहुति देकर सिद्धि लाभ की है। हे महाबाहो! ऋचीकपुत्र ऋग्मन्त्रके जरिये यज्ञभागि देवताओंकी स्तुति करके विश्वामित्रका पुत्रत्व लाभ किया। उशनाने देवोंके देव महादेवको प्रसन्न करके शुक्रत्व लाभ किया; वह देवी भगवतीकी स्तुति करके यशस्वी होकर आकाशमण्डलमें विराजते हैं। असित, देवल, नारद, पर्व्वत, काक्षीवान्, जमदग्निपुत्र राम, बुद्धिमान ताण्ड्य, वशिष्ठ, जमदग्नि, विश्वामित्र, अत्रि, भरद्वाज, हरिश्रवा, कुण्डधार और श्रुतश्रवा, ये सब महर्षि लोग तथा सावधानीसे ऋग्मन्त्रके जरिये बुद्धिमान विष्णुकी स्तुति करके तपस्याके सहारे सिद्धि लाभ की थी, भगवान् विष्णुकी स्तुति करके अपूज्य पुरुष भी पूज्य हुए हैं; इसलिये इस लोकमें जुगुप्सित कर्म्म करके कोई अपनी उन्नतिकी कामना न करे। धर्म्मसे जो सब अर्थ प्राप्त होता है, वही सत्य है और अधर्म्मसे जो उपार्ज्जित किया जाता है, वही निन्दित है; इसलिये धनकी अभिलाषसे इस लोकमें कोई नित्य धर्म्मको न त्यागे। जो धर्म्मात्मा आहिताग्नि हैं, वेही पुण्यात्माओंके बीच श्रेष्ठ हैं। हे प्रभु राजेन्द्र! वेदोंमें दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य और आवहनीय, ये तीनों अग्नि निवास करती हैं। जिनकी क्रिया नष्ट नहीं होती, वे ब्राह्मण भी आहिताग्नि होते हैं। अनाहिताग्नित्व और निष्क्रिय अग्निहोत्र कदापि कल्याणकारी नहीं है। हे नरश्रेष्ठ! अग्नि ही आत्मा, अग्नि ही माता और जन्मदाता पिता है, तथा अग्नि ही गुरु है; इसलिये यथारीति अग्निकी परिचर्य्या करनी चाहिये। जो अभिमान त्यागके वृद्धोंकी सेवा करते हैं, वे कामहीन बुद्धिमान मनुष्य दयार्द्र दृष्टिसे सब जीवोंको देखा करते हैं। जो आलस रहित, धर्म्मपरायण और हिंसाहीन होते हैं, वे आर्य्य पुरुष ही इस लोकमें साधुओंके जरिये पूजित हुआ करते हैं।

२९२ अध्याय समाप्त।

पराशर मुनि बोले, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, इन तीनों वर्णोंसे हीनवर्ण शूद्रकी वृत्ति ही उत्तम है, क्योंकि शूद्रकी निर्द्दिष्ट सेवावृत्ति प्रीतिपूर्व्वक उपस्थित होकर सेवकोंको सदा धर्म्मिष्ठ किया करती है। शूद्रकी यदि पितृ-पितामह आदि क्रमसे कोई निर्द्दिष्ट वृत्ति न रहे, तौभी वह त्रैवर्णिक सेवाके अतिरिक्त वृत्त्यान्तरकी खोज न करे, ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंकी सेवा करनेमें ही नियुक्त होवे। सब अवस्थामें ही सदा धर्म्मदर्शी साधुओंका संसर्ग ही शोभा पाता है, असत् संसर्ग कभी न करना चाहिये,—यही मेरी विवेचना होती है। जैसे उदयाचल पर स्थित मणि सुवर्णादि सूर्य्यकी सन्निकर्षतासे प्रकाशित होते हैं वैसे ही सतां-सर्गसे नीच वर्ण शूद्र भी ज्ञानलाभ करके प्रकाशित हुआ करता है। जैसे श्वेत वस्त्र जिस रङ्गसे रङ्गा जाता है उसका रूप भी वैसा ही हुआ करता है, इसे ही तुम मेरे समीप मालूम करो; इसलिये सब गुणोंमें ही अनुरक्त होवे, दोषोंमें कदापि अनुराग न करे, इस लोकमें मनुष्योंका चञ्चल जीवन अत्यन्त अनित्य है। बुद्धिमान् मनुष्य चाहे सुख अथवा दुःखरूपी किसी अवस्थामें निवास क्यों न करें, यदि वे शुभ कार्य्योंका सञ्चय करते हैं, तो अवश्य ही इस लोकमें कल्याण भाजन होते हैं। धर्म्मसे पृथक् कर्म्म यदि महाफल प्रदान करे तौभी बुद्धिमान मनुष्य उसे सेवन न करे; क्योंकि इस लोकमें वैसा कर्म्म हितकर कहके वर्णित नहीं हुआ है। प्रजासमूहके पालन विषयमें उदासी-नता युक्त जो राजा दूसरेको सहस्र गऊ हरके दान किया करता है, वह नाम मात्रका फल-भागी तस्कर होता है। स्वयम्भू पहले सब लोक सत्कृत धाताको उत्पन्न करते हैं। धाता सब लोकोंके धारण करनेमें रत होकर पर्ज्ज-न्यदेव नाम पुत्रको उत्पन्न करते हैं। वैश्य जाति उनको पूजा करके जीविकाके लिये कृषि वाणिज्य और पशुपालन आदि किया करते है। क्षत्रिय प्रजा पालन करें और ब्राह्मण लोग हव्यकव्य प्रयोगमें निपुण होकर जीविका निबाहें। शूद्र लोग निर्म्मार्ज्जन अर्थात् भूमि-शुद्धि आदि कार्य्य करें; इस ही भांति सब कोई स्वकर्म्म साधन करनेसे धर्म्मभ्रष्ट नहीं होते। हे राजेन्द्र! धर्म्म नष्ट न होनेसे सब प्रजा सुखी रहती है, उन लोगोंके सुखके निमित्त सुर लोकमें देवता लोग प्रसन्न होते हैं; इससे जो राजा स्वकर्म्मके अनुसार प्रजापालन करता है, जो ब्राह्मण वेद पढ़ता है, जो वैश्य कृषि वाणिज्य पशुपालन आदिसे धन उपार्ज्जनमें रत रहता है, और जो शूद्र सदा सावधान होकर तीनों वर्णोंकी सेवामें नियुक्त रहते हैं, वे सब कोई लोकसमाजमें सम्मानित होते हैं। हे मनुजेन्द्र! इसमें अन्यथा करनेसे मनुष्य स्वध-र्म्मसे च्युत होता है। प्राण सन्ताप पूर्व्वक बीस वराटिका दान करनेसे भी महाफल हुआ करता है, और अन्यायसे उपार्ज्जित सहस्र धन दान करनेसे भी कुछ फल नहीं होता। हे नरनाथ! जो ब्राह्मणोंका सत्कार करके जिस प्रकार दान करते हैं, वे सदा वैसा ही ऊर्ज्ज-स्वल फलभोग किया करते हैं। जो दाता स्वयं पात्रके निकट जाके उसकी तुष्टिके निमित्त दान करता है, पण्डित लोग उस दानको अभिष्टुत अर्थात् सब प्रकारसे प्रशंसित कहते हैं, और मांगनेपर जो दान किया जाता है, उसे मध्यम दान कहा करते हैं, तथा अवज्ञा वा अश्रद्धासे जो दान किया जाता है, सत्यवादी मुनि लोग उसे ही अधम दान कहते हैं। संसा-रसमुद्रमें प्रायः डूबते हुए मनुष्य विविध उपायके सहारे उससे पार होनेकी चेष्टा करें, और संसारजालसे जिस प्रकार छुटकारा मिल सके, मनुष्य मात्रको ही उस विषयमें चेष्टा करनी उचित है। ब्राह्मण इन्द्रियोंके जीतने और क्षत्रिय युद्धमें विजय पानेसे शोभित होता है।

वैश्य धनउपार्ज्जन करने, और शूद्र सदा कार्य्योंमें निपुणता प्रकाशित करनेसे शोभा पाता है।

२८३ अध्याय समाप्त।

पराशर मुनि बोले, ब्राह्मणोंको दानसे, क्षत्रियोंको युद्ध जीतने, वैश्योंको न्यायसे प्राप्त होने और शूद्रोंको सेवाके जरिये मिला हुआ धन अत्यन्त थोड़ा होनेपर भी प्रशंसित होता है, और धर्म्मार्थमें लगानेसे वह महाफलजनक हुआ करता है। ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंकी सदा सेवा करनेवाले पुरुषको ही शूद्र कहा जाता है। वृत्तिहीन ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्य धर्म्मका आचरण करनेसे पतित नहीं होता; परन्तु शूद्रका धर्म्म अवलम्बन करनेसे उस ही समय पतित होता है। अपने धर्म्ममें रहके जीविका लाभमें असमर्थ शूद्रके लिये वाणिज्य, पशुपालन और चित्र खींचना आदि शिल्प कर्म्मके जरिये जीविका निर्व्वाह विहित है, क्यों कि उक्त कार्य्य सेवामें ही परिगणित हुआ करते हैं। स्त्रीका वेष बनाके रङ्गभूमिमें जाना, रूप पलटना (बहुरूपी) अर्थात् सूक्ष्म वस्त्र पहनके चर्म्ममय आकारके जरिये राजा और सेवकोंके आचरणको प्रदर्शित करना, मद्यमांस बेचके जीविका निभाने, लोहा और चमड़ेको बेंचना; इन सब निन्दित कर्म्मोंको जिनके पूर्व्व पुरुषोंने कभी नहीं किया, उन्हें किसी प्रकार भी उसे न करना चाहिये; और जिनके पूर्व्व-पुरुषोंने उक्त निन्दित कर्म्मको किया है, अध-स्तन (नीचेके) यदि कोई पुरुष उक्त कर्म्मको छोड़ दें, तो उन्हें बहुत ही धर्म्म हुआ करता है, ऐसी ही जनश्रुति है। इस लोकमें बहुतसे अन्न वस्त्र आदि पाके मदोन्मत्त चित्त होकर लोकमें जो पुरुष पापाचरण करता है, वैसा निन्दित कार्य्य इन्होंके जरिये अनुष्ठित होनेपर भी मनुष्योंके सब भांतिसे अनङ्गो कार्य्य रूपसे वर्णित हुआ करता है। पुराणप्रवन्धमें सुना जाता है, कि प्रजासमूहने धिगदण्ड राजाके शासनके अनुसार जितेन्द्रिय, धर्म्मपरायण और न्याय धर्म्मानुयायी वृत्तिको अवलम्बन किया था। हे राजन्! इस लोकमें मनुष्योंके लिये धर्म्म ही सब समयमें श्रेष्ठ है; पृथ्वीमण्डलपर धर्म्मवृद्ध मनुष्य ही केवल गुणोंकी सेवा किया करते हैं। हे तात प्रजानाथ! काम क्रोध आदि असुर-स्वभाव वैरीवृन्द उस धर्म्मको अवमानना करते थे। उस समय उनके क्रमसे वर्द्धित होते रहने पर प्रजा उनमें अनुप्रविष्ट हुई; तब प्रजा समूहमें धर्म्मनाशक दर्प उत्पन्न होने लगा; दर्पसे अभिमान और उसके अनन्तर उन लोगोंमें क्रोध उत्पन्न हुआ। धीरे धीरे क्रोधयुक्त प्रजावृन्दका चरित्र लज्जाकर होगया। हे राजन्! अनन्तर उन लोगोंकी लज्जा नष्ट हुई, अन्तमें मोह उत्पन्न हुआ। उस समय प्रजा मोहमें फंसकर अवमर्द्दनके जरिये यथा सुखसे वृद्धि लाभ करती हुई पहलेकी भांति आपसमें परस्परको तत्वावधान करनेमें विरत हुई। राजा धिगदण्ड उन सब समुद्धत प्रजाको शासन करनेमें असमर्थ हुए। तब वे सब प्रजा ब्राह्मणोंकी अवमानना करके देवस्वभाव शम दम आदिके सम्मुखीन हुईं। उस समय पहले कहे हुए देवता लोग माया वशसे बहुरूपधारी, नित्य ज्ञान ऐश्वर्य्य आदि गुणोंमें श्रेष्ठ वीरवर देवेश्वर शिवके शरणमें गये, शिवका दर्शन कर-नेसे उन लोगोंके तेजकी वृद्धि हुई, तब उन्होंने एक बाणसे ही दानव स्वभाववाले आकाशगत क्रोध आदि प्रजा समूहको स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरके सहित पृथ्वीपर गिरा दिया। उक्त काम क्रोध आदि दानवोंका जो भीमपरा-क्रमी भयङ्कर महामोह नाम अधिपति था, वह देवताओंके पक्षमें भयानक होनेसे शूलपाणि महादेवके जरिये मारा गया। महामोहके मारे जानेपर मनुष्योंने निज निज भाव लाभ

किया और पहलेकी भांति वेदशास्त्र प्राप्त हुए आदि सृष्टिमें जैसे मरीचि आदि महर्षि लोग एकमात्र वेदनिष्ठ होकर तत्वज्ञानके अनन्तर जीवन मुक्त हुए थे, उस समयमें मनुष्योंका अन्तःकरण उस ही प्रकार अनादि सहासनासे एकमात्र वेदनिष्ठ हुआ था। अनन्तर सप्तर्षि वेद स्वरूप इन्द्रियोंके राज्यरूप वशिष्ठ विषयमें हृदयाकाश मय स्वर्ग लोक स्वरूप चैतन्यके जरिये शरीर वा इन्द्रियोंके निवास प्रवर्त्तक चिदात्माको अभिषिक्त करके मनुष्योंके शासन कार्य्यमें नियुक्त हुए। अनन्तर सप्तर्षियोंसे उर्द्ध लोकमें स्थित अवयव उपचयसे रहित विष्णु नाम पार्थिव अर्थात् शिर स्थानमें सहस्रदल कमलपर अधिष्ठित परमात्मा और योगविघ्न षट् चक्राधिपति गणेशादि रूप बिनाशि क्षत्रिय लोग पृथक् पृथक् मण्डलस्वरूपसे शरीरमें निवास करने लगे। जो सब पहलेके उहलोग महावंशमें उत्पन्न हुए थे, उनके हृदयसे भी आसुर भाव दूर न हुआ; इससे भयङ्कर पराक्रमी पार्थिव लोग उस आसुर भावसे ही आसुर कार्य्योंको निबाहने लगे, जो सब मनुष्य अत्यन्त मूढ़ थे, वे आसुर भावोंमें प्रतिष्ठित रहे, सबने आसुर कार्य्योंको स्थापित किया है, और अबतक भी आसुर भावोंमें रत हैं, प्रकृत भावको प्राप्त न कर सके। हे राजन्! इसलिये मैं शास्त्र अनुशीलन करके तुमसे कहता हूं, कि आसुर भावकी निवृत्तिके लिये आत्मज्ञानके सिद्ध करनेमें यत्नवान् होकर मनुष्यमात्रको ही हिंसात्मक कर्म्म अवश्य परित्याग करना चाहिये। बुद्धिमान् मनुष्य सत्कार कार्य्यसे धन पैदा न करे, न्याय पथमें जलाञ्जलि देकर जो धर्म्मार्थ धन उपार्ज्जन करते हैं वह धन उनके लिये कल्याणकारी नहीं होता। तुम इस ही प्रकार सद्गुणोंसे युक्त, दान्त, और बन्धु प्रिय क्षत्रिय हो, इसलिये प्रजा, सेवक और पुत्रोंको स्वधर्म्मके अनुसार प्रतिपालन करो। इष्ट और अनिष्टके संयोगसे जो बैर और सुहृदता होती है, कई सहस्र जातियोंमें वह प्रवर्त्तित हुआ करती है; इसलिये सब गुणोंमें ही अनुरक्त होवे, किसी मतसे दोषोंमें अनुराग प्रकाशित न करे; क्योंकि निर्गुण नीच बुद्धि पुरुष भी जब कभी अपने किसी गुणकी कथा सुनता है, तब वह अत्यन्त ही सन्तुष्ट होता है। हे महाराज! जैसे मनुष्य धर्म्माधर्म्ममें विद्यमान रहते हैं, मनुष्यहीन देशमें भी धर्म्म अधर्म्म दोनों ही हैं। धर्म्मशील विद्वान् मनुष्य अन्नार्थी ही हो, अथवा अनीह ही होवे, सदा सब भूतोंमें आत्मवित् ज्ञान करके जीवोंकी अहिंसाके जरिये जन समाजमें विचरे। जब उसका मन वासनाहीन, निरहंकार वा निर्गताज्ञान होगा, तब वह ब्रह्मानन्द लाभ करनेमें समर्थ होवेगा।

२६४ अध्याय समाप्त।

पराशरमुनि बोले, यह गृहस्थोंकी धर्म्मविधि कही गई, अब तपस्याकी विधि कहता हूं, सुनो। हे राजन्! राजस और तापस भावके प्रसङ्गसे प्रायः गृहस्थोंमें ममत्व उत्पन्न होती है, मनुष्य गार्हस्थ्य आश्रमको अवलम्बन करनेसे उनके गौ आदि पशु खेत, बन, स्त्री, पुत्र तथा सेवक प्रभृति हुआ करते हैं। इस ही भांति संसार आश्रममें प्रवृत्त मनुष्य प्रतिदिन निज सम्पत्तिकी उन्नति और नित्यताको देखते रहने पर भी क्रमसे उनके राग द्वेषकी विशेष रूपसे वृद्धि हुआ करती है। हे नरनाथ! मनुष्यके विषयासक्त होकर राग द्वेषसे अभिभूत होने पर मोह जनित रति उसे अवलम्बन करती है। रतिपरायण मनुष्यमात्र ही आत्माको भोगशील और कृतार्थ समझ कर अनुराग वशसे ग्राम्य सुखके अतिरिक्त दूसरे लाभको लाभ ही नहीं समझता। अनन्तर मनुष्य विषयोंमें आसक्त होनेसे लोभमें फंसके कुटुम्ब और दासदासी

आदिके परिमाणको वृद्धि करता है, अन्तमें उन्हींके प्रतिपालनके लिये कुसीद व्यापारसे धन बढ़ानेमें यत्नवान होता है। मनुष्य सन्तान सन्ततिमें स्नेहयुक्त होकर जिस कार्य्यको अकार्य्य समझा जाता है, धनके लिये वैसे कार्य्योंको भी करनेमें कुण्ठित नहीं होता; परन्तु उस अर्थके नष्ट होने पर परिताप किया करता है। अनन्तर अभिमानयुक्त होके जिस भांति अपनी पराजय न हो, उस विषयमें सदा सावधान मनुष्य किस प्रकारसे "मैं सुख भोग करूंगा"—ऐसी हो चिन्तामें निमग्न होता है, अन्तमें भोगाभिलाषमें आसक्त होकर मृत्युके मुखमें पड़ता है। जो मनुष्य ऐसा समझता है, कि मैं स्त्री आदि परिवारोंसे भोगवान हूंगा, वह उन परिजनोंसे ही विनष्ट होता है। जो सब प्रत्याशा रहित शाश्वत ब्रह्मवादी मनुष्य लोक निषिद्ध काम्य कर्म्म परित्याग करके शुभ कर्म्मोंका अनुष्ठान करते हैं, उन्हें ही सुख लाभ हुआ करता है। हे राजन्! मनुष्य प्रीतियुक्त स्त्री पुत्रोंके नाश, धन नाश और आधिव्याधिके प्रभावसे दुःख पाता है। हे महाराज! उस ही निर्व्वेद निबन्धनसे आत्मबोध होता है, आत्म-बोधसे शास्त्र दर्शन हुआ करता है, शास्त्रार्थ दर्शनसे मनुष्य तपस्याको ही कल्याणकारी समझता है। हे मनुजेन्द्र! सार असारमय विवेकयुक्त मनुष्य अत्यन्त दुर्लभ हैं; पत्नीसे जो सुख उत्पन्न होता है, उससे जो मनुष्य क्लेश पाके उसमें दोष देखता है, वही तपस्या करनेमें समर्थ होता है। हे तात! जितेन्द्रिय और दान्त पुरुषोंके स्वर्गमार्ग प्रवर्त्तक तपके नियम साधारण हैं, दम दया और दान आदिमें हीन वर्णों-काभी अधिकार है। हे राजन्! पहिले समय यजमान अवस्थामें प्रजापतिने किसी किसी स्थानमें व्रत अवलम्बन करके तपस्याके सहारे प्रजासमूहको उत्पन्न किया था। हे तात! आदित्यगण, वसु, रुद्र, अश्विनी कुमार, मरुत, विश्वदेव साध्य, पितर, मरुद्गण, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व्व, सुरपुरवासी सिद्ध लोग तथा इनके अतिरिक्त दूसरे स्वर्गवासियोंने भी तपस्याके जरिये सिद्धि लाभकी है। आदित्य प्रभृति सबने ही यजमान होकर निज निज पदप्रापक कर्म्मोंको करके उसहीने उस ही पदको पाया है। पहिले समयमें सृष्टिके आरम्भमें प्रजापतिने तपस्याके जरिये जिन सब ब्राह्मणोंको उत्पन्न किया था, वे भूलोक और सुरलोक दोनों ही स्थानोंमें विचरते रहते हैं। मर्त्त्य लोकमें जिन राजाओं और गृहमेधी पुरुषोंने महावंशमें जन्म ग्रहण किया है, उनका वैसे वंशमें जन्म होना तपस्याके फलके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। कौसिकवस्त्र मनोहर आभूषण, विचित्र आसन, वाहन और यान, ये सभी तपस्याके फल हैं। मनके अनुकूल सहस्रों रूपवती प्रमदा और कोठेके ऊपर निवास, ये सब तपस्याके ही फल हैं। उत्तम शय्या, अनेक प्रकारके उपादेय भोज्य और अभिप्रेत विषयोंकी सिद्धि शुभ कर्म्म करनेवाले मनुष्योंको ही प्राप्त हुआ करती हैं। हे शत्रुतापन! तीनों लोकके बीच ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जो तपस्याके जरिये प्राप्त न होसके; कृतकृत्यता-हीन मनुष्योंके लिये उपभोगका परित्याग अर्थात् वैराग्य ही तपस्याके फल रूपसे निर्द्दिष्ट हुआ करता है। हे नृपसत्तम! चाहे मनुष्य सुखी हो, वा दुःखी हो, मन तथा बुद्धिके सहारे शास्त्रको देखके लोभ *त्याग करे।* असन्तोष केवल दुःखका ही हेतु है, लोभसे इन्द्रियोंमें पूर्णरीतिसे भ्रम उत्पन्न हुआ करता है; इसलिये इन्द्रियभ्रमसे लोभी पुरुषोंकी प्रज्ञा अभ्यास रहित विद्याकी भांति होजाती है। जब मनुष्य नष्टबुद्धि होता है, तब उसकी न्याय दृष्टि नहीं रहती अर्थात् उस समयमें वह कर्त्तव्य अकर्त्तव्यके निर्णय करनेमें समर्थ नहीं होता। इसलिये सुखकी समाप्ति होनेपर पुरुष उग्र तपस्या करे। प्राचीन लोग

कहा करते हैं, जो इष्ट है, वही सुख है ; और जो देषयुक्त है, उसहीका नाम दुःख कहा जाता है। तपस्या करनेसे सुख, न करनेसे दुःख होता है, इसलिये कृतकृत्य तपस्याका जिस प्रकार फल हुआ करता है, उसे देखो। मनुष्य शुद्धतासे तपस्या करके सदा शुभ दर्शन वा सब विषयोंको उपभोग करता तथा जनसमाजमें विख्यात होता है ; और फलकी इच्छावाला मनुष्य अप्रिय अवमानना तथा अनेक प्रकार दुःख लाभ करते हुए तपस्याका फल परित्याग करके विषमय फल पाता है। धर्म, तपस्या और दान विषयमें यथा समय कर्त्तव्यता होनेपर भी स्थिर कार्य्योंमें चिकीर्षा उत्पन्न होती है, नित्यकर्त्तव्य कार्य्यके समय जो पुरुष स्वेच्छापूर्व्वक प्रवृत्त होकर अन्य कर्म्म करता है, वह वैसा पापाचरण करके नरकमें डूबता है। हे नरेन्द्र! जो मनुष्य सुख अथवा दुःखके समय भी निज धर्म्मसे विचलित नहीं होता, उसे ही शास्त्रदर्शी कहा जाता है। हे नरनाथ! जितने समयके बीच धनुषसे छुटा हुआ बाण पृथ्वीपर गिरता है, उतनेही समयमें देखना, चखना, सूंघना, सुनना और स्पर्शेन्द्रियके विषयसम्बन्ध निबन्धनसे अनुराग हुआ करता है, अनन्तर इन्द्रियजनित सुखकी समाप्ति होनेपर तीव्र दुःख उत्पन्न होता है ; इसलिये मूढ़ लोग अनुत्तम मोक्ष सुखकी प्रशंसा नहीं करते, तब उस विषयमें यत्न क्यों करेंगे। विषयके आकर तीव्र पीड़ाके हेतु बिबेक मात्रमें ही मोक्ष फलके लिये शम दम आदि साधनोंमें प्रवृत्ति हुआ करती है। बिबेकी मनुष्यके धर्म्मानुसार निवास करनेपर काम और अर्थ उसे अभिभव करनेमें समर्थ नहीं होते। गृहस्थ लोग प्रारब्ध कर्म्मके अनुसार सम्प्राप्त अयत्न सिद्ध विषयोंके सेवनसे विरत न होवें ; क्यों कि उससे फल विसम्वाद दर्शनके जरिये पुरुषके प्रयत्नकी दुर्ब्बलता देखी जाती है। धर्म्मविषयमें पुरुषार्थकी प्रबलता दीखती है ; इसलिये यत्नके अनुसार प्राप्त विषयोंका सम्भोग ही निज धर्म्म है, मेरी ऐसी ही बिबेचना होती है। माननीय सत्कुलमें उत्पन्न सदा शास्त्र देखनेवाले मनुष्य जिन कार्य्योंको करते हैं, धर्म्मरहित मूढ़चित्तवाले मनुष्य उसे कदापि सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं होते। जब कि मनुष्योंके क्रियमाण कर्म्म बिनष्ट हुआ करते हैं, तब उन्हें तपस्याके अतिरिक्त दूसरा कर्त्तव्य कर्म्म और कुछ भी नहीं है। हे महाराज! इसलिये मनुष्य यज्ञादि कर्म्म करनेके लिये निपुणताके सहित निजधर्म्ममें स्थित होके स्थिर बुद्धिवाला होवे। जैसे सब नद नदी समुद्रमें जाके निवास करती हैं, वैसे ही सब आश्रमोंके मनुष्य गृहस्थके अवलम्बसे निवास किया करते हैं।

२९५ अध्याय समाप्त।

जनक बोले, हे महर्षि! कृष्ण, धूम्र, नीला, लाल, पीला और सफेद इन छः प्रकारके वर्णोंके बीच किस प्रकार स्वभाविक वर्णोंसे किन किन वर्णोंमें अधिकता उत्पन्न होती है, इसे ही मैं जाननेकी इच्छा करता हूं। हे वक्तृवर! इसलिये आप उस विषयको वर्णन करिये ; सतोगुण प्रधान ब्राह्मणोंका अपत्य सतोगुणनिष्ठ ही हुआ करता है। ऐसी जनश्रुति है, कि मनुष्य पुत्ररूपसे स्वयं उत्पन्न होता है, परन्तु क्या कारण है, कि ब्राह्मणोंसे उत्पन्न हुए सन्तान क्षत्रिय आदि जाति विशेषके धर्म्मको ग्रहण करते हैं।

पराशर मुनि बोले, आपने जो कहा वह यथार्थ है, जो जिससे उत्पन्न होता है, वह उसहीके रूप समान हुआ करता है, परन्तु तपस्याके अपकर्षसे जातिविशेषके धर्म्मको ग्रहण करते हैं। पवित्र बीर्य्य और पवित्र क्षेत्रसे जिसकी उत्पत्ति होती है, वह अवश्य ही पवित्र होता है। क्षेत्र

और बीजमेंसे एकको हीनता होनेसे सम्भव है, उससे उत्पन्न हुए मनुष्य अपकृष्ट रूपसे उत्पन्न होते हैं। हे राजन्! धर्म्म जाननेवाले पुरुष ऐसाही जानते हैं, कि लोकस्रष्टा प्रजापतिके मुख, बाहु, उरु और दोनों चरणसे मनुष्य उत्पन्न हुए हैं। हे तात! उसमेंसे ब्राह्मण लोग प्रजापतिके मुखसे, क्षत्रिय बाहु, वैश्य उरु और परिचारक शूद्र लोग पांवसे उत्पन्न हुए कहे जाते हैं। हे पुरुषप्रवर! ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंको ही उत्पत्तिका विषय निर्णीत है, इनसे अतिरिक्त जो सब दूसरी जाति हैं, वे सङ्करज हैं। हे नर-नाथ! उक्त चारों वर्णोंके परस्पर अनुलोम और विलोम परिग्रहसे क्षत्रिय; अतिरथ अम्बष्ट उग्र, वैदेहक, स्वपाक, पक्कस, तेन, निषाद, सूत, मागध, अयोग, करण व्रात्य और चाण्डाल जाति उत्पन्न होती हैं।

जनक बोले, हे मुनिसत्तम! एकमात्र प्रजापतिसे उत्पन्न हुए मनुष्योंमें किस प्रकार गोत्रके अनुसार अनेकत्व हुआ करता है। इस लोकमें अनेक भांतिके गोत्र दीखते हैं, इसका क्या कारण है मुनिलोग स्वयोनिसे जिन सन्तानोंको उत्पन्न करते हैं, वेही ब्राह्मण हैं, परन्तु जिस किसी योनिमें जिन सब सन्तानोंको उत्पन्न किया है, उन लोगोंको ब्राह्मणत्व किस प्रकारसे हुआ; जो लोग शुद्ध योनिसे उत्पन्न होते हैं, वेही पवित्र हैं, और जो लोग विरुद्ध योनिसे जन्मे हैं, वेही निकृष्ट हैं। काचीवानके जरिये शूद्रागर्भसे उत्पन्न हुए पुत्रोंने किस प्रकार ब्राह्मणत्व लाभ किया था।

पराशरमुनि बोले, हे राजन्! तपस्याके सहारे जो आत्माका ध्यान किया करते हैं, उन महात्माओंकी निकृष्ट जन्मके जरिये जो उत्पत्ति होती है वह कदापि ग्राह्य नहीं हैं। हे राजन्! मुनियोंने जिस किसी योनिसेही पुत्रोंको उत्पन्न करके निज तपोबलसे उसका ऋषित्व विधान किया है। हे विदेहराज! पहले मेरे पितामह कश्यप गोत्रमें उत्पन्न ऋष्यशृङ्ग, वेद, ताण्ड्य, कृप, काचीवान, कमठ आदि मुनि लोग यवक्रीत वक्रवर द्रोण, आयु, मतंग, दत्त, द्रुपद और मात्स्यआदि मनुष्य तपस्याके अवलम्बसे निज प्रकृतिको प्राप्त हुए थे। ये सब वेदवित् पुरुष इन्द्रिय विजय और तपस्याके जरिये धर्म्म मर्य्यादा रक्षक कहके प्रसिद्ध हैं। हे राजन्! पहले चार ही मूल गोत्र उत्पन्न हुए थे, अंगिरा, कश्यप, बसिष्ठ और भृगु, येही उक्त चारों मूल गोत्रोंके प्रवर्तक हैं। इसके अतिरिक्त दूसरे सब गोत्र कर्म्मसे उत्पन्न अर्थात् परमात्मासे कर्म्मके निमित्त ही वर्णाश्रम गोत्रको कल्पना हुई है। तपस्याके जरिये उन सब गोत्रोंके जो सब नाम धेय कल्पित होते हैं ऋषि लोग उसे हीं ग्रहण किया करते हैं, अर्थात् ऋषियोंसे समुद्दिष्ट वरण विवाह आदि श्रौत स्मार्त्त व्यवहार अवलम्बन करके पृथक् गोत्रोंके नामसे वर्णित हुए हैं।

जनक बोले, हे भगवन्! आप पहले मेरे समीप वर्णोंके विशेष धर्म्म वर्णन करिये, शेषमें सामान्य धर्म्मोंका विवरण कहियेगा; आप सब विषयोंको ही वर्णन करनेमें विशेष पारदर्शी हैं।

पराशरमुनि बोले, हे नरपाल! प्रतिग्रह, याजन और अध्यापन, ये ब्राह्मणोंके विशेष धर्म्म हैं, क्षत्रियोंके लिये प्रजापालन ही उत्तम धर्म्म है, कृषि, पशु पालन तथा वाणिज्य वैश्योंके मुख्य धर्म्म हैं और द्विजोंकी सेवा ही शूद्रोंका धर्म्म है। हे तात नरनाथ! ये सब वर्णोंके विशेष धर्म्म कहे गये, अब मेरे मुखसे विस्तार पूर्व्वक साधारण धर्म्मोंकी सुनिये। हे राजन्! अनृशंसता, अहिंसा, अप्रमाद, सम्बिभाग, श्राद्ध-धर्म्म, अतिथि, सत्कार, सत्य, क्रोधहीनता, सन्तोष, पवित्रता, सदा, अनुसूयता, आत्मज्ञान और तितिक्षा, ये तेरह धर्म्म सब वर्णों और आश्रमोंमें साधारण हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों वर्णही द्विजाति कहे जाते हैं। हे

राजन्! इसलिये ऊपर कहे हुए तेरह धर्म्मोंमें उन लोगोंका समान अधिकार है। जैसे ब्राह्मण आदि तीनों वर्ण स्वकर्म्ममें रत होकर साधु पुरुषोंका आसरा ग्रहण करनेसे उन्नत होते हैं, वैसे ही निषिद्ध कर्म्मोंके अनुष्ठानसे पतित हुआ करते हैं। शूद्र जातिका कोई संस्कार नहीं है, इसीसे निषिद्ध कर्म्मोंके अनुष्ठानसे उसके पतित होनेकी सम्भावना नहीं है। वेद विहित कर्म्मोंमें उसका अधिकार न रहनेसे पहले कहे हुए तेरह प्रकारके धर्म्म पालनके लिये शूद्रके विषयमें निषेध विधि कुछभी विहित नहीं है। हे महाराज विदेह! वेदज्ञानसे युक्त ब्राह्मण लोग शूद्रको ब्रह्माके समान अर्थात् ब्राह्मण तुल्य कहा करते हैं, परन्तु मैं शूद्रको जगत्‌में प्रधान क्षत्रिय स्वरूप विष्णुरूपसे देखा करता हूं। पहिले कहा गया है, प्रजापति ब्राह्मण और विष्णु क्षत्रिय वर्ण हैं; इसलिये शूद्र वैश्य और क्षत्रिय जन्मके अनन्तर ब्राह्मणत्व लाभ करके विदेह कैवल्य लाभ करता है, यह वैदिक मत है; और मेरे मतमें शूद्र क्षत्रियजन्मके अनन्तर ही ब्राह्मणत्व लाभ करके मोक्षपद पाता है। शूद्र लोग यदि साधुओंके आचरित दम, दान, दया आदिका अनुष्ठान करते हुए काम क्रोध आदि दोषोंको नष्ट करनेके अभिलाषी होकर मन्त्रपाठ छोड़के पौष्टिकी क्रियाका निर्व्वाह करे, तो उसके लिये दूषित नहीं होते। साधारण लोगोंमें जो जिस प्रकार सदाचार अवलम्बन करते हैं, वे उस ही भांति सुख लाभ करके इस लोक और परलोकमें आनन्दित होते हैं।

जनक बोले, हे महामुनि! कोई कर्म्म और कोई जाति शूद्रको दूषित करती है, अर्थात् अत्यन्त हीन करनेमें समर्थ होती हैं; उस विषयमें मुझे सन्देह उत्पन्न हुआ है; इसलिये मेरे समीप आपको उस विषयकी व्याख्या करनी उचित है।

पराशरमुनि बोले, हे महाराज! कर्म्म और जाति दोनों ही दोषकारक हैं, इसमें सन्देह नहीं है; इसलिये उस विषयका विशेष वृत्तान्त सुनो। जाति और कार्य्यके जरिये जो कर्म्म दूषित होता है, पुरुष कदाचित उसका आचरण नहीं करता; और जो पुरुष जातिके जरिये दूषित होता है, वह पापयुक्त कर्म्म करनेसे विरत हुआ करता है। जातिके अनुसार प्रधान पुरुष यदि निन्दित कर्म्म करे, तो वह कर्म्म ही उसे दूषित करता है, इसलिये वैसा कर्म्म कदापि उत्तम नहीं है।

जनक बोले, हे द्विजसत्तम! इस लोकमें कौन कर्म्म धर्म्मयुक्त हैं, जिसे सदा अनुष्ठान करनेसे भी सब भूतोंकी हिंसा नहीं होती।

पराशरमुनि बोले, हे महाराज! जो सब अहिंस्र कर्म्म मनुष्योंकी सर्व्वदा रक्षा करते हैं, उस विषयमें तुम मुझसे जो कुछ प्रश्न करते हो, अब उसका उत्तर सुनो। परिव्राजक धर्म्म अवलम्बन कर अग्नि स्पर्श करके जो लोग उदासीन हुए हैं, वे शोकरहित होकर यथाक्रमसे वितर्क विचार, आनन्द और अस्मिता नामक योगभूमिमें आरोहण करके निःश्रेयस कर्म्मपथ अवलोकन करते हैं। वे सब श्रद्धावान् विषयान्वित, दम परायण, अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धिसे युक्त मनुष्य लोग सब कर्म्मोंसे रहित होकर उस स्थानमें गमन किया करते हैं; जहांपर जरा नहीं है। हे राजन्! ब्राह्मण आदि सब वर्ण इस जीव लोकमें पूर्णरीतिसे कर्म्म कार्य्योंको सिद्ध करने सत्य वचन कहने और दारुण अधर्म्मके त्यागनेसे स्वर्गमें जाते हैं, इस विषयमें कुछ भी विचार करना उचित नहीं है।

२९६ अध्याय समाप्त।

पराशरमुनि बोले, हे राजन्! भक्ति हीन पुरुषोंको पिता, सखा, पत्नी और गुरुजन आदि

सेवाका फल दान करनेमें समर्थ नहीं होते, जो अनन्य भक्त होके प्रिय वचन कहा करता है, सब कोई उसके हितकारी और वशीभूत हुआ करते हैं। मनुष्योंके लिये पिता ही परम देवता है, पण्डित लोग पिताको मातासे भी अधिक गौरवशाली कहा करते हैं; और पितासे ज्ञान लाभके कारण उसी परम श्रेष्ठ कहा जाता है; क्यों कि मनुष्य ज्ञान लाभसे इन्द्रिय विषयोंको जीतकर परमपद पाते हैं। जो राजपुत्र रणभूमिमें घायल होके शराग्नि शय्यापर शयन करके जलते हैं, वे देवताओंके भी अत्यन्त दुर्लभ लोकोंको पाके अनायास ही स्वर्गसुख भोग किया करते हैं। हे राजन्! संग्राममें श्रान्त, भीत, शस्त्रहीन, रोदन परायण जो भागे जाते हों, रथ घोड़े कवच आदिसे रहित, अनुयोगी, रोगी, याचमान, बालक और वृद्धको किसी प्रकार भी हिंसा करनी उचित नहीं है। और जो क्षत्रिय युद्धमें रथ, घोड़े कवच आदिसे संयुक्त, उद्योगी तथा अपने समान हो, राजा उसे ही आक्रमण करे। ऐसा निश्चय है, कि अपने समान वा विशिष्टके जरिये मरना ही कल्याणकारी है; अत्यन्त हीन, कादर और कृपणसे मारा जाना बहुत ही निन्दित है। हे नरनाथ! पापात्मा पापाचारी और अत्यन्त हीन पुरुषसे जो वध होता है, वही पापयुक्त और नरकका निमित्त कहके निश्चित हुआ है। हे राजन्! मृत्युके सुखसे परित्राण वा जिसकी परमायु शेष हुई है उसे मृत्यु मुखसे आकर्षण करनेमें कोई भी समर्थ नहीं होता। आत्मगणोंके जरिये क्रियमाण अभ्यङ्ग कर्म्म और हिंसामय समस्त कर्म्मोंसे निवृत्त होना उचित है, दूसरेकी परमायुसे अपनी आयु दूषित करनेकी कोई इच्छा न करे। हे तात! मृत्युकी इच्छा करनेवाले गृहस्थ लोग यदि किसी तीर्थमें जीवन परित्याग करें, तो उनकी वह मृत्यु परम उत्तम है। परमायु क्षय होनेसे ही मनुष्य पञ्चत्वको प्राप्त होता है, यदृच्छा मरणसे किसीकी अकारण मृत्यु होती है। किसीकी अज्ञानमात्रके दूर होनेसे स्वतः सिद्ध मोक्ष फल तीर्थ-मरण आदि कारणसे सिद्ध हुआ करती है। जो पुरुष देह लाभ करके जल प्रवेशादिके जरिये उस शरीरका पञ्चत्व साधन करता है, वह देहत्यागी मनुष्य फिर दुःख भोगनेके निमित्त वैसा ही शरीर पाता है; पवित्र क्षेत्र तीर्थादिमें भी यदि किसीकी अवैध भावसे मृत्यु हो तो वह मोक्षका पथिक होके भी कुत्सित कार्य्य वशसे देहको त्यागके देहान्तर लाभ किया करता है, उस विषयमें दूसरा कारण और कुछ भी नहीं है। देहधारियोंको वह यातना देह मोक्ष योग्य रुद्रपिशाचमें आत्महत्या जनित पापको ढोने और दुःख भोग करनेके निमित्त निवास करती है। अध्यात्म विचार करनेवाले विद्वान पुरुष इस चर्म्मसे ढके हुए शरीरको शिरा, स्नायु और हड्डी आदिसे युक्त बिभत्स तथा मलमूत्रसे परिपूरित, पञ्चभूत, दशों इन्द्रिय और बासना-मय विषयोंका स्थान कहा करते हैं। यह शरीर सुन्दरता आदि गुणोंसे हीन होनेपर भी पूर्व्व बासनासे मनुष्यत्वको प्राप्त होता है। यातना शरीर सबके आरम्भकभूतोंके प्रकृतिको प्राप्त होनेपर जीवसे परित्याग किये जानेसे चेत रहित होजाता है, तथा निश्चेष्ट होके पृथ्वीपर गिर पड़ता है। हे विदेहराज! यह शरीर जिस जिस स्थानमें मृत होता है, कर्म्म संयोगसे फिर उस ही स्थानमें जन्म ग्रहण करता है, परन्तु जो शरीर पहले परित्यक्त होता है, कर्म्म फल भोगनेके निमित्त पुनर्व्वार उत्पन्न हुआ शरीर तत्सजातीयरूपसे नहीं दीखता। हे राजन्! जबतक पाप नष्ट नहीं होता, भूतात्मा रुद्रपिशाच तबतक निज स्वरूपसे प्रकट नहीं होता। महान् अम्बुधरकी भांति आकाशमण्डलमें भ्रमण करता है।

अन्तमें उपाधि जनित कलुषता छूटनेपर स्थान पाके फिर जन्मता है। मनसे आत्मा श्रेष्ठ और इन्द्रियोंसे मन उत्तम है। हे राजन्! जो सब अनेक प्रकारके जीव हैं, उनमेंसे जङ्गम जीव श्रेष्ठ हैं, और जङ्गम जीवोंके बीच दो पांववाले मनुष्य ही परम श्रेष्ठ हैं, दो पांववालोंमें द्विज लोग ही उत्तम हैं। हे राजेन्द्र! द्विजोंके बीच बुद्धिमान पुरुष ही श्रेष्ठ हैं, ज्ञानियोंमें योगी पुरुष और योगियोंके बीच योग ऐश्वर्य्यके दर्पसे रहित मनुष्य गरिष्ठ होते हैं। यह निश्चय है, कि मनुष्योंका मरना जन्मका ही अनुसरण किया करता है, सब लोग गुणके अनुसार क्षयशील कर्म्मोंका अनुष्ठान किया करते हैं। हे राजन्! सूर्य्यके उत्तरायण गमन करनेपर पवित्र नक्षत्र और पवित्र मुहूर्त्तमें जिसकी मृत्यु होती है, वह किसी पुरुषको क्लेश न देकर पापोंको धोके आत्मशक्तिके अनुसार कर्म्म करते हुए कालकृत मृत्युके जरिये इस लोककी परित्याग करते हैं। विष भक्षण, उद्बन्धन, दाह, दस्युओंके हाथसे मारा जाना और दंष्ट्र पशुओंके जरिये जो मृत्यु होती है। वह प्राकृत मृत्यु कही जाती है। पुण्यशील मनुष्य आधिव्याधियोंसे पीड़ित होके भी ऐसे ही अनेक प्रकारके तथा अन्यान्य दुर्म्मरणकी कामना नहीं करते। हे नृपति! जो लोग उत्तरायणमें प्राणत्याग करते हैं, उन पुण्यवान मनुष्योंका प्राण सूर्य्यमण्डलका भेदकर ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। मध्यम पुण्यशालि मनुष्योंका प्राण मनुष्य लोकमें प्रतिष्ठा लाभ करता है, और पापी लोगोंका प्राण अधोलोकमें गमन करता है। हे राजन्! जो मनुष्य अज्ञानसे आहत वा प्रेरित होकर अत्यन्त दारुण घोर कर्म्मोंको किया करता है, उस पुरुषको अज्ञानके समान कोई भी शत्रु नहीं है। हे राजपुत्र! जिसके प्रबोधके लिये वेद वा धर्म्मके अनुसार लोग वृद्धोंकी उपासना करनेमें प्रवृत्त होते हैं वह अज्ञानरूप शत्रु-

यत्न साध्य प्रज्ञाशरके जरिये उन्मथित होनेसे ही नष्ट हो जाता है। धर्म्मकी इच्छा करनेवाला मनुष्य ब्रह्मचर्य्य अवलम्बन करके वेदाध्ययन तपस्याके जरिये यज्ञ निर्व्वाह तथा यथाशक्ति पञ्चइन्द्रियोंको निग्रह करके निज वंश स्थापित करते हुए मोक्षार्थी होकर वनमें गमन करे। हे तात! मनुष्य उपभोगहीन आत्माको कदापि अवसन्न न करे, चाण्डालके घरमें जन्म होनेपर भी मनुष्य जीवनको सब प्रकारसे उत्तम समझे। हे पृथ्वीनाथ! आत्मा जिसे पाके शुभ लक्षण-युक्त कर्म्मोंके जरिये अपना परित्राण करनेमें समर्थ होता है, वह मनुष्य जीवन ही प्रथम योनि है। मनुष्य लोग श्रुतिप्रमाण्य दर्शन निबन्धनसे "किस प्रकार इस योनिसे च्युत न होऊं" इसे ही सोचके सदा धर्म्मका अनुष्ठान करते हैं। जो मनुष्य अत्यन्त दुर्ल्लभ जीवन पाके इससे द्वेष करता है, वह धर्म्मावमन्ता कामात्मा पुरुष कामसे वञ्चित हुआ करता है। हे तात! जो पुरुष विरक्त होकर विषयोंकी ओर न देखकर प्रीतियुक्त नेत्रसे स्नेह सम्वर्द्धनीय दीपककी भांति जीवोंको देखते हैं, और धैर्य्य वचन, अन्नदान तथा प्रिय वाक्यसे सबके दुःख सुखमें मिलित होते हैं, वे परलोकमें पूजित हुआ करते हैं। हे भूपति! सरस्वती, नैमिषक्षेत्र, पुष्कर अथवा पृथ्वीके बीच कुरुक्षेत्र आदि जो सब पवित्र क्षेत्र हैं, वहांपर दान, विषयासक्तिका परित्याग शान्तमूर्त्ति धारण तथा जल वा तपस्याके जरिये शरीरको शोधन करना उचित है। घरमें जिसका प्राण निकल जाता है, उसके मृत शरीरको जलाना ही उत्तम है, इसलिये मृत्यु शरीरको यानके जरिये श्मशानमें लिजाकर शौचविधिके अनुसार दाह करना ही योग्य है इष्टि, पुष्टि, यजन, याजन, दान और पुण्य कर्म्मोंके अनुष्ठान तथा शक्तिके अनुसार पितृ लोकके उद्देश्यसे जो कुछ विहित है, मनुष्य अपने ही लिये वह सब किया

करता है। हे नरनाथ! आकृष्टकर्म्मा मनुष्योंके कल्याणके निमित्त ही धर्म्म शास्त्र, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष, ये षड़ङ्ग और सब वेद विहित हुए हैं।

भीष्म बोले, हे महाराज! महानुभाव पराशर मुनिने पहिले समयमें कल्याणके निमित्त विदेहराजके निकट इन सब विषयोंको कहा था।

२९७ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, मिथिलाधिपतिने धर्म्म विषयसे कृत निश्चय होकर महात्मा पराशर मुनिसे फिर प्रश्न किया। जनक बोले, हे ब्रह्मन्! कल्याण साधन क्या है, गति किसे कहते हैं। कौन कर्म्म करनेसे वह नष्ट नहीं होता और कहां जानेसे मनुष्यको संसारमें फिर नहीं आना पड़ता। हे महाबुद्धिमान आप मुझसे वही कहिये।

पराशर मुनि बोले, जो कुछ कल्याणके साधन हैं, आसक्तिहीनता ही उसका मूल है, ज्ञान ही परम तपस्या है, और सत्पात्रमें दानका फल कदापि विनष्ट नहीं होता। जब मनुष्य अधर्म्ममय पाशको काटके धर्म्म कार्य्यमें अनुरक्त होता है, उस समय वह सब भूतोंको अभय दान करके सिद्ध लाभ करता है। जो लोग सहस्रों गऊ और सैकड़ों घोड़े दान करते तथा सब भूतोंको अभय दान करते हैं, अभय सदा उनके सब ओर निवास करती है, अर्थात् उसे कभी किसी पुरुषसे भय नहीं होता। बुद्धिमान मनुष्य विषयके बीच निवास करके भी उसमें लिप्त नहीं होते और दुर्बुद्धि पुरुष असत् विषयोंमें ही आसक्त हुआ करते हैं। जैसे पय पुष्करपत्रमें संश्लिष्ट नहीं होता, वैसे ही अधर्म्म कभी बुद्धिमान् पुरुषको स्पर्श नहीं कर सकता। समस्त पाप अप्राप्त पुरुषको ही जतुकाष्टकी भांति आलिङ्गन किया करता है। कभी अधर्म्म फल दानात्मिका क्रियापेची होकर कर्त्ताको परित्याग नहीं करता, कर्त्तृ-त्वाभिमानी मनुष्य यथा समयमें अधर्म्मका फल पाता है। आत्माप्रत्ययदर्शी कृतात्मा मनुष्य कदापि कर्म्म फलके जरिये क्लेशित नहीं होते; बुद्धि कर्म्म और इन्द्रिय सम्बन्धसे प्रमत्त होकर जो पुरुष अपनी बुरी चेष्टाको नहीं समझ सकता, वह शुभाशुभ विषयोंमें आसक्तचित्त होकर महत् भय पाता है। जो लोग सदा पूर्ण रूपसे राग रहित होके क्रोधको जीतते हैं, वह विषयोंमें लिप्त रहके भी पापयुक्त नहीं होते। जो विषयोंमें आसक्त रहके मर्य्यादा-रूपी नदीमें धर्म्मसेतु बांधते हैं, वे किसी प्रकारभी अवसन्न नहीं होते, वल्कि प्रति दिन उनके तपबृद्धिकी परिपुष्टि होती है। हे राजश्रेष्ठ! जैसे विशुद्धमणि नियमके अनुसार सूर्य्यके तेजको ग्रहण करती है, वैसे ही जीव योगके सहारे ब्रह्मभाव लाभ किया करता है। जैसे तिलोंका स्नेह पृथक् पृथक् पुष्प संश्रयसे अत्यन्त रमणीय होता है, वैसे ही आत्मध्यान परायण मनुष्योंमें बार बार वासनाभ्यास निबन्धनसे सतोगुण उत्पन्न हुआ करता है।

जब मनुष्य सुरपुरमें वास करनेकी अभिलाष करता है, तब पत्नी पुत्र आदि परिवार और अतुल सम्पत्ति अनेक प्रकारको सत्क्रिया तथा निज पद परित्याग किया करता है; उस समय उसकी बुद्धि शब्द स्पर्श आदि विषयोंसे पृथक् होती है। हे राजन्! जिस मनुष्यकी बुद्धि विषयोंमें लिप्त होती है, वह कदापि आत्महित समझनेमें समर्थ नहीं होता। जैसे मछली वंशीमें मांस देखकर उसमें फंस जाती हैं, वैसे ही मनुष्य भी सर्व्वभाव अनुगत मानसके जरिये आकृष्ट हुआ करते हैं, देह इन्द्रिय आदि संघातकी भांति स्त्री-पुत्र पशु आदि परस्पर उपकारक होके भी कदली गर्भवत् निःसार हैं; जैसे नौका जलमें डूबती है, वैसे

ही ये भी विनष्ट हुआ करते हैं। पुरुषके पक्षमें धर्म्मके समयका कुछ भी निश्चय नहीं है और "मनुष्यने धर्म्म नहीं किया है" इसके लिये मृत्यु प्रतीक्षा नहीं करती। जब कि मनुष्य मृत्युमुखमें ही पड़ा हुआ है, तब उसे सदा धर्म्माचरण करना ही शोभा देता है। जैसे अन्धा अभ्यासके सहारे निज गृहमें गमन करता है, वैसे ही प्राज्ञ पुरुष अभ्यास और गुरुत्व युक्तिके जरिये अगोचर पथमें गमन किया करते हैं। जन्मका निमित्त मरण है और मरणका अवलम्ब जन्म वर्णित हुआ है; अविद्वान् मनुष्य मोक्ष धर्म्ममें बद्ध होकर चक्रके समान भ्रमण किया करता है और जो लोग ज्ञान पथसे गमन करते हैं, वेही इस लोकमें सुखी होते हैं। अग्निहोत्र आदि कर्म्मके फैलाव दुःखदायक मात्र हैं। यज्ञादि कर्म्मोंसे आत्माको कुछ फल नहीं मिलता, पण्डित लोग विषयत्यागको ही आत्माका हितकर समझते हैं। जैसे मृणाल निज शरीरमें लगी हुए कीचडको शीघ्र परित्याग करता है, पुरुषका शरीर भी उस ही प्रकार मनके जरिये शीघ्र ही परित्यक्त होता है। मन आत्माको योगविषयमें उत्सुक करता है, अनन्तर वह आत्मा योगी होकर मनको परम पदमें लीन करता है। जब मन योगसिद्ध होता है, तब वह उस सर्व्व उपाधिरहित आत्माका दर्शन करनेमें समर्थ होता है। जो पुरुष दूसरेके निमित्त प्रवर्त्तमान होकर उसके कार्य्यको अपना कार्य्य समझकर अभिमान करता है, वह इन्द्रियविषयोंमें आसक्त मनुष्य योगरूपी स्वकार्य्यसे सब भांतिसे भ्रष्ट हुआ करता है। योगभ्रष्ट मनुष्य अधोलोकमें तिर्य्यग् योनिको प्राप्त होते हैं और बुद्धिमान तथा उनसे इतर लोगोंको आत्मा सुकृत कर्म्मोंके जरिये स्वर्गमें जाके इन्द्रलोक लाभ किया करती हैं। जैसे पके हुए मट्टीके पात्रमें द्रव-वस्तु जल आदि नहीं गिरते, वैसे ही जिस शरीरके जरिये सदा तपस्याकी आलोचना की जाती है, वह लिङ्ग शरीर ब्रह्मलोक पर्य्यन्त सब लोकोंमें व्याप्त हुआ करता है, किसी स्थानसे च्युत नहीं होता। जो शरीर प्रकाशकी भांति सब विषयोंमें व्याप्त हुआ करता है, उससे निःसन्देह कभी विषयभोग नहीं होता; और जो शरीर भोग त्याग करता है, वह भोग करनेमें समर्थ होता है। शिश्नोदरपरायण जन्मान्ध मनुष्य जैसे अन्धकारसे परिपूरित होकर मार्ग नहीं देख सकता, वैसे ही आवृतात्मा जीव छिपे हुए निज रूपको नहीं जान सकता। जैसे वणिक् समुद्रयात्राके सहारे मूल धनके अनुसार धनलाभ करता है, वैसेही इस संसार-सागरमें कर्म्मविज्ञानके अनुसार जीवकी गति हुआ करती है। जैसे सांप वायुको ग्रास करता है वैसे ही इस दिन रात्रिमय जीवलोकमें मृत्यु जरा रूपसे तरती हुई जीवोंको ग्रास किया करती है।

जीव जन्म लेके अपने किये हुए कर्म्मोंको भोग किया करता है, जो कुछ प्रिय और अप्रिय कोई बिना कर्म्मके उन्हें नहीं पासकता। मनुष्य सोया हो, अथवा चलता हो, बैठा हो, वा विषयोंमें प्रवृत्त ही रहे, शुभाशुभ कर्म्म सदा ही उसके निकटवर्त्ती होते हैं। किसी प्रकार समुद्रके दूसरे किनारे पहुंचके फिर वहांसे लौट नहीं सकता; परन्तु उसके पक्षमें समुद्रमें विनिपात ही दुर्लभ बोध होता है। महासागरमें खेवनेवालेके अभिप्रायके अनुसार जैसे तन्तुके सहारे नौका चलती है, वैसे ही मनके भावताभिनिवेशके जरिये शरीर चालित हुआ करता है। जैसे सब ओरसे नदियें आकर समुद्रमें मिलती हैं; वैसे ही योगके सहारे मन आद्याप्रकृतिका अवलम्बन करता है। जैसे बालूके गृह जलसे नष्ट होजाते हैं, वैसे ही अनेक प्रकार स्नेहपाशके जरिये अज्ञान वशसे संसक्त चित्तवाले मनुष्य विषय हुआ करते हैं। देहनिष्ट नाम और रूपको आत्म धर्म्मरूपसे

माननेवाले देहधारी यदि ज्ञानपथसे गमन करें, तो उन्हें इस लोक और परलोकमें परम सुख प्राप्त होता है । अग्निहोत्र आदि सब कर्म्म केवल क्लेश देनेवाले हैं; संक्षिप्त सन्न्यास धर्म्म ही अत्यन्त सुखदायक है ; यज्ञ आदि कर्म्मोंसे आत्माका कुछ उपकार नहीं होता, इसलिये वे सब केवल परार्थ हैं ; पण्डित लोग वैराग्यको ही आत्म-हितकर जानते हैं। सङ्कल्पजनित मित्रवर्ग कारणात्मक स्वजनसमूह भार्य्या, पुत्र और दास दासी सब कोई केवल निज अर्थ उपभोग करते हैं । माता वा पिता किसीका भी पारलौकिक हित नहीं कर सकते । जो मनुष्य दानको ही स्वर्ग मार्गमें जानेकी सीढ़ी करता है, वह निज कर्म्म फलोंको भोग किया करता है । माता, पुत्र पिता, भाई, भार्य्या और मित्रलोग देहक्षय निनादभूत श्वास-मुद्रारेखा विशेष हैं ; इससे स्वर्गकी भांति निज अदृष्ट ही अभ्युदयका हेतु है । जीव पूर्व्वजन्मकृत अपने शुभाशुभ कर्म्मोंको प्राप्त करनेपर अन्तरात्मा कर्म्मफल दान करनेके निमित्त बुद्धिको प्रेरणा करता है । जो उद्योग अवलम्बन करके सब सहाय संग्रह करते हैं, उनका कोई कार्य्य कदाचित् अवसन्न नहीं होता, जैसे किरण सूर्य्यको कभी परित्याग नहीं करती, वैसे ही एकाग्रचित्त योगयुक्त, शूर, धीर और विपश्चित पुरुषको श्री कदापि नहीं त्यागती । अनिन्द्-नीय स्वभावसे युक्त मनुष्य आस्तिक्य और व्यवसाय अथसे उपाय वा गर्व्वहीनताके कारण बुद्धिके सहारे जिस कार्य्यको आरम्भ करते हैं, वह कदापि अवसन्न नहीं होता । जीवपूर्व्वज-न्ममें यत्नपूर्व्वक जिन शुभाशुभ कर्म्मोंको करता है, जननीजठरमें प्रविष्ट होनेके समयसे ही अपने किये हुए वेही सब शुभाशुभ कर्म्म प्राप्त हुआ करते हैं, और जैसे वायु करपत्र विदारित समस्त चारुणोंको स्थानान्तरित करता है, वैसे ही अपरिहार्य्य मृत्यु भी कालक्रमसे जीवोंको विनाश मुखमें डालती है, इसलिये यदृच्छा प्राप्त अन्न आदिके जरिये जीवन धारण करते हुए सबका ही मोक्षके निमित्त यत्न करना चाहिये। मनुष्य अपने किये हुए शुभाशुभ कर्म्मोंके जरिये पूर्व्वजन्मके कर्म्मोंसे प्राप्त हुए निज कुलके अनुसार सुन्दरताई और परिग्रह सन्तान आदि सद्दंशसभूति तथा द्रव्यसमृद्धि सञ्चय लाभ किया करता है ।

भीष्म बोले, हे राजन् ! पण्डित प्रवर परा-शर मुनिने धर्म्म जाननेवालोंमें अग्रगण्य राजा जनकसे जब ऐसी कथा कही, तब उसे सुनके वह परम आनन्दित हुए ।

२९८ अध्याय समाप्त ।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! लोकके बीच विद्वान् मनुष्य सत्य, दम, क्षमा और बुद्धिकी प्रशंसा किया करते हैं, इस विष-यमें आपका क्या मत है ?

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर ! इस विषयमें मैं तुम्हारे समीप हंस और साध्य लोगोंके सम्वाद-युक्त प्राचीन इतिहास कहता हूं, जन्म रहित शाश्वत प्रजापति सुवर्णमय हंस होकर तीनों लोकमें भ्रमण करने लगे, अनन्तर उन्होंने सिद्धोंके निकट गमन किया ।

साध्योंने पक्षिश्रेष्ठ हंसको निकटमें आया हुआ देखके कहा, हे द्विजवर ! हम लोग देवताओंके अन्तर्गत साध्यगण तुमसे प्रश्न करते हैं, तुम मोक्षवत् हो , इसलिये मोक्ष धर्म्म क्या है ? उसे ही तुम हमसे कहो। हे महात्मन् पतत्रिन् ! हमने सुना है, कि तुम धीरवादी पण्डित हो, तुम्हारी साधुताकी बड़ाई सर्व्वत्र सुनाई देती है; इससे तुम किसे श्रेष्ठ समझते हो और तुम्हारा मन किस विषयमें रत है । हे विह-ङ्गवर ! कार्य्योंके बीच जिस किसी एक कार्य्यको तुम श्रेष्ठ जानो, वही हम लोगोंके समीप

उपदेश करो। हे विहङ्गेन्द्र! इस लोकमें जिसका अनुष्ठान करनेसे सब बन्धनोंसे शीघ्रही छुटकारा होता है। हमको वही करना उचित है।

हंस बोला, हे अमृत पीनेवाले देवगण! मैंने यही सुना है, कि स्वधर्म्माचरण, वाह्य इन्द्रियोंका निग्रह, यथार्थ वचन और चित्तकी जीतना योग्य है; हृदयकी ग्रन्थिराग आदिको मोचन करके हर्ष और विषादको वशीभूत करना उचित है। किसीके मर्म्म छेदक वा निठुरभाषी होना उचित नहीं। नीच पुरुषोंसे शास्त्र ग्रहण करना अयोग्य है, लोकमें जिस वचनसे दूसरे लोग व्याकुल हों, उस अकल्याण कर नरकविधायक वचनको न कहना चाहिये। जो वाक्यरूपी सब बाण शरीरसे बाहर होते हैं, उससे लोग घायल होके रात दिन शोकार्त्त हुआ करते हैं; वे सब वाक्यबाण दूसरेके मर्म्म-स्थलके अतिरिक्त अन्य स्थानमें नहीं लगते; इसलिये पण्डित पुरुषोंको उचित है, कि वैसे वाक्यबाणोंको दूसरेके ऊपर प्रयोग न करें दूसरे लोग यदि उन धीर पुरुषोंको अतिवाद बाणके जरिये अत्यन्त विद्ध करें, तो उन्हें शान्ति रस अवलम्बन करना उचित है। जो लोग दूसरेसे क्रुद्ध होनेपर भी उसपर रोष प्रकाश नहीं करते, बल्कि हर्षित होते हैं, वे दूस-रोंके सुकृतको ग्रहण किया करते हैं, जो अधि-क्षेपकारी पुरुष अभिनिवेशके कारण अप्रिय प्रज्वलित क्रोधको निग्रह करते हैं, वे दुष्टता-रहित, असूयाहीन प्रसन्न चित्तवाले मनुष्य दूसरोंसे सुकृत ग्रहण किया करते हैं। कोई मेरे विषयमें आक्रोश प्रकाश करे, तो मैं कुछ भी नहीं कहता और मेरे ऊपर प्रहार करे, तो भी मैं सदा उसे क्षमा किया करता हूं; ऐसा आचरण ही श्रेष्ठ है, क्योंकि आर्य्य-लोग सत्य, सरलता, अनृशंसता और क्षमाकी प्रशंसा किया करते हैं। वेदाधिगमका फल सत्य है, सत्यका फल दम अर्थात् वाह्य इन्द्रि-योंका निग्रह है, दमका फल मोक्ष है, यह सब शास्त्रोंमें वर्णित हुआ है। जो लोग वाक्य, मन, क्रोध, विधित्सा उदर और उपस्थ इन सब इन्द्रियोंके प्रबल वेगको सहनेमें समर्थ होते हैं, मैं उन्हें ही ब्रह्मिष्ठमुनि समझता हूं। क्रोधी पुरुषोंसे बिना क्रोधवाले, क्षमाहीनोंसे क्षमावान् पुरुष, कुकर्म्मियोंसे सदाचारयुक्त मनुष्य और मूर्खोंसे ज्ञानी लोग ही प्रशंसनीय हुआ करते हैं। पुरुष यदि दूसरेसे क्रोधित होने पर भी रोष प्रकाश न करके उसे क्षमा करे, तो उस तितिक्षु पुरुषकी क्षमा आक्रोशकारी पुरुषको जला देती है और तितिक्षु पुरुष भी आक्रोश करनेवालेके सुकृतको ग्रहण करता है। यदि कोई दूसरेके जरिये अत्यन्त निन्दित होने पर भी धैर्य्य अवलम्बन करके उसके विषयमें वा अप्रिय वचन प्रयोग न करे, अथवा घायल होके भी मारनेवालेके ऊपर प्रहार न करे, और "उस मारनेवालेको पाप हो" ऐसी इच्छा भी न करे, तो वह इस लोकमें सदा देवताओंके स्पृहणीय हुआ करता है। कोई पुरुष अपने समान वा अपनेसे उत्कृष्ट वा निकृष्ट लोगोंके निकट अवमानित होनेपर उनपर क्रोध न करके क्षमा करे तो उसे सिद्धि लाभ हुआ करती है, मैं अध्ययनकी समाप्ति होने पर भी सदा आचा-र्य्यकी उपासना किया करता हूं, किसी विषयमें मेरी तृष्णा वा रोष वर्द्धित नहीं होता। मैं लिप्समान होकर अधर्म्म पथमें गमन नहीं करता और विषय वासनासे देवताओंके निकट कुछ प्रार्थना भी नहीं करता। कोई मुझे शाप दे, तो मैं उसे प्रतिशाप न देकर शान्ति अवल-म्बन किया करता हूं; क्योंकि इस लोकमें दम ही मुक्तिका द्वार है, मैंने ऐसा ही निश्चय किया है। हे साध्यगण! मैंने तुम्हारे समीप इस गुप्त विषयको वर्णन किया, अब तुम लोग विचार करके देखो, मनुष्य जन्मसे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है। बुद्धिमान् लोग धीरज धरकी

समयकी प्रतीक्षा करते हुए पापहीन होकर बादलसे मुक्त हुए चन्द्रमाकी भांति सिद्धि लाभ करते हैं। जो सबके पूजनीय हैं, वेही ब्रह्माण्ड-मण्डपके स्तम्भ स्वरूप हुआ करते हैं और सब लोग जिससे प्रसन्न बचन कहते हैं, उस संयतात्माको देवल प्राप्ति होती है। स्पर्द्धावान् पुरुष जिस प्रकार मनुष्योंके दोषोंको प्रकाश करनेके अभिलाषी होते हैं, उस प्रकार उनके कल्याणकर गुणोंको प्रकाशित करनेकी अभिलाष नहीं करते। जिनका बचन, मन सब प्रकार ही असत् मार्गसे निवृत्त और सदा सावहित है, वे बेद, तपस्या और त्याग, यह सब प्राप्त करते हैं। विद्वान् पुरुष मूर्खोंसे आकृष्ट वा अवमानित होने पर उन्हें मूर्ख जानके उनकी निन्दा न करें, अनुरोधसे अप्रशंसित पुरुषकी प्रशंसा न करें और समान लोगोंकी हिंसा भी न करनी चाहिये। पण्डित लोग दूसरेके जरिये अपनी अवमाननासे अमृतकी भांति सन्तुष्ट होकर सुखकी नींद सोते हैं; परन्तु अवमानना करनेवाला असन्तुष्ट होकर शीघ्र विनष्ट होता है। क्रोधी पुरुष यज्ञ, दान तपस्या और होम आदि जो कुछ कर्म्म करता है, सूर्य्यपुत्र शमन उसके सब कर्म्मोंको हरण किया करता है, इससे क्रोधी लोगोंके सब परिश्रम निष्फल होजाते हैं।

हे सुरसत्तमगण! जिसके उपस्थ, उदर हाथ और वाक्य, ये चारों द्वार उत्तम रीतिसे रक्षित होते हैं, वेही धार्म्मिक हैं। जो लोग यत्न पूर्व्वक सत्य, सरलता, दम, अनृशंसता, धृति और तितिक्षा, इन सबकी सेवा करते हैं, तथा जो पराये वित्तकी बासना न करके निर्ज्जनमें वेदाध्ययनमें प्रवृत्त होते हैं, वेही ऊर्द्ध गति लाभ किया करते हैं। जैसे गऊका बछड़ा चारों मातृस्तनोंका अनुगामी होता है, वैसे ही मैं सत्य आदिका अनुसरण किया करता हूं; क्यों कि कहीं पर सत्यसे अत्यन्त पवित्र और कुछ भी नहीं है, यह मुझे विशिष्ट रूपसे मालूम है। मैं सर्व्वत्र भ्रमण करके मनुष्य और देवताओंसे यही कहा करता हूं, कि समुद्रसतु नौकाकी भांति सत्य स्वर्गका सोपान है। पुरुष जैसे लोगोंके सहवासमें रहता है, जैसे लोगोंकी उपासना करता और जैसा होनेकी अभिलाष करता है, वैसा ही हुआ करता है। जो जिस प्रकारके पुरुषकी सेवा करता है, वह उसहीके वशीभूत होता है। जैसे वस्त्र वर्णके वशमें होता है, वैसेही कोई साधु तपस्वीकी सेवा करनेसे उस तपस्वीके वशवर्त्ती होता है और असत् तस्करकी सेवा करनेसे उस तस्करके अधीन होता है। देवता लोग साधुओंके सङ्ग ही सर्व्वदा सम्भाषण किया करते हैं, मनुष्य भोगको विनाशी जानके देखनेकी भी इच्छा नहीं करते; क्यों कि चन्द्रमा वा वायुका समभाव सदा सम्भव नहीं रहता, भोगवशसे उनकी भी उपचय और अपचय हुआ करती है इसलिये जो सब विषयोंके उच्चावच मालूम करते हैं, वेही सब जान सकते हैं। अन्तर्य्यामी पुरुषके राग द्वेषसे रहित होकर निवास करने पर सन्मार्गमें स्थित उस अन्तर्य्यामी पुरुषके जरिये ही देवता लोग तृप्त होते हैं। जो लोग सदा शिश्न और उदरके कार्य्यमें रत रहते हैं, जो सदा चोरीवृत्ति करते हैं, तथा जो सर्व्वदा कठोर बचन कहते हैं, उनके प्रायश्चित्त आदिसे निष्पाप होने पर देवता लोग उन्हें पापरहित समझके भी दूरसे ही परित्याग करते हैं। नीचबुद्धि, सर्व्वभक्षी और पाप कर्म्म करनेवाले नरकगामीसे देवता लोग कदापि परितुष्ट नहीं होते। परन्तु जो लोग सत्यव्रती कृतज्ञ और धार्म्मिक हैं, देवता लोग उनके सहित समभावसे सुखसेवन किया करते हैं। पण्डित लोग कहा करते हैं, कि मिथ्या न कहके चुप रहना ही कल्याणकारी है यह प्रथम कल्प है, द्वितीय कल्प यदि कहना पड़े, तो सत्य ही कहे। तीसरे कल्पमें धर्म्मवाक्य

कहना उचित है। चौथे कल्पमें प्रिय बचन कहना सर्व्वांशमें कल्याणकारी है।

साध्य लोग बोले, यह लोक किसके जरिये आवृत हुआ करता है, किस कारण प्रकाश प्राप्त नहीं होता। किस निमित्त मित्रता छूटती है और स्वर्ग किस लिये नहीं मिलता?

हंस बोला, यह लोक अज्ञानसे परिपूरित होरहा है, मत्सरतासे प्रकाश प्राप्त नहीं होता, लोभसे मित्रता छूटती है, संसर्ग निबन्धनसे लोग स्वर्गमें गमन नहीं करते।

साध्य लोग बोले, ब्राह्मणोंके बीच अकेला रहके भी कौन पुरुष रमण करता है; कौन पुरुष अकेला होके भी बहुतोंके सङ्ग आनन्द अनुभव किया करता है। इन लोगोंके बीच कौन पुरुष निर्व्वल होके भी बलवान और कौन पुरुष कलहानभिज्ञ है।

हंस बोला, ब्राह्मणोंके बीच जो बुद्धिमान हैं, वह अकेले ही रमण किया करते हैं बुद्धिमान पुरुष अकेला ही अनेक लोगोंके सङ्ग आनन्द अनुभव करता है। इन लोगोंके बीच जो बुद्धिमान हैं, वे दुर्व्वल होनेपर भी बलवान तथा जो प्राज्ञ हैं, वेही कलहानभिज्ञ हैं।

साध्य लोग बोले, ब्राह्मणोंमें देवतापन क्या है; साधुता किसे कहते हैं। इनमें असाधुता और मनुष्यता किस प्रकार कही गई है।

हंस बोला, ब्राह्मणोंमें स्वाध्याय ही देवतापन है, व्रतको साधुता कहते हैं, इसके परिवादको असाधुता और मरना मनुष्यत्व कहता है।

भीष्म बोले, साध्योंका यह सम्वाद श्रेष्ठ कहके वर्णित हुआ है, स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरसे शुभाशुभ कर्म्मोंकी उत्पत्ति हुआ करती है और सत्तामात्रको सत्य कहते हैं।

२९९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आप धर्म्मज्ञ हैं, सब विषय ही आपको विदित है। हे कुरुसत्तम! सांख्य और योगमें क्या विशेषता है, आपको मेरे समीप उसे वर्णन करना उचित है।

भीष्म बोले, शत्रुकर्षण सांख्य मतावलम्बी मनुष्य सांख्य शास्त्रकी प्रशंसा किया करते हैं, योगशास्त्रावलम्बी द्विजाति मनीषि लोग योगशास्त्रकी प्रशंसा करके निज पक्षको उद्भावन करते हुए योगशास्त्रको मुख्य कहा करते हैं और अनीश्वरवादी लोग "किस प्रकारसे मुक्ति होगी" इस विषयमें महती युक्ति पूर्ण रीतिसे वर्णन करते हैं। सांख्य मतवाले द्विजाति भी ऐसा कारण दिखाते हैं, कि जो लोग इस लोकमें सब गति जानके विषयभोगसे विरत होते हैं, वे निज शरीर त्यागनेके अनन्तर निश्चय ही स्पष्ट रूपसे मुक्ति लाभ किया करते हैं। इस ही निमित्त महाप्राज्ञ सांख्य मतवाले पण्डित लोग सांख्यको मोक्ष दर्शन कहते हैं। हे युधिष्ठिर! दोनों पथमें बलवान युक्ति विद्यमान रहनेपर भी जो पक्ष अपनेको सम्मत हो, उस विषयकी ही युक्ति ग्राह्य होती है और अपने अपने पक्षमें निज निज मतके अनुयाई बचन हितकर होता है; क्यों कि अपने अपने सम्प्रदायके शिष्टोंके मत तुम्हारे समान लोग ग्रहण किया करते हैं। हे तात! योग मतके अनुयायी पुरुष प्रत्यक्ष प्रमाणको कारण कहते हैं और सांख्य मतवाले शास्त्रसिद्ध अर्थात् श्रुति प्रमाणको कारण कहते हैं, ये दोनों ही मत मेरी सम्मतिमें यथार्थ हैं। हे राजन्! साधुसम्मत ये दोनों मतोंके शास्त्ररीतिसे अनुष्ठित होनेपर परम गति प्राप्त होती है। हे पापरहित! पवित्र आचार, सब प्राणियोंके विषयमें दया और अहिंसा आदि व्रतोंके अनुष्ठान, इन सबमें दोनों मतोंकी ऐक्यता है; परन्तु दोनोंके दर्शन समान नहीं हैं।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! व्रत पवित्रता दया और इन सबके फल यदि दोनों मतमें ही समान हैं, तब दोनोंके दर्शन किस निमित्त

पृथक् हुए। उसे मेरे समीप विस्तारपूर्व्वक कहिये।

भीष्म बोले, मनुष्य योगबलसे राग, मोह, स्नेह, काम, क्रोध आदि इन पांचो दोषोंको छेदन करके मुक्ति लाभ करता है। जैसे बड़ी मछली जालको छेदन करके फिर जलमें चली जाती है, वैसे ही योगी लोग योगबलसे पापरहित होके ब्रह्मपद लाभ किया करते हैं, जैसे बलवान मृग बागुरा छेदन करके निज स्थानपर चले जाते हैं, वैसे ही योगी लोग सब बन्धनोंसे छूटकर विमलपद पाते हैं। हे राजन्! बलवान योगी पुरुष ही लोभज बन्धनोंको काटके मङ्गलमय पवित्र मार्गमें गमन करते हैं। हे कुन्तीपुत्र राजेन्द्र! जैसे निर्ब्बल हरिन जालमें बन्धकर बिनष्ट होता है और बलहीन मछलियें जालबद्ध होकर मृत्यु मुखमें पड़ती हैं, वैसे ही अत्यन्त निर्ब्बल योगी पुरुष भी बिना योगबलके काम आदिके वशमें होकर बिनष्ट हुआ करते हैं। हे शत्रुनाशन! जैसे निर्ब्बल पक्षियें सूक्ष्म जालमें फंसके बिपदग्रस्त होती हैं, परन्तु बलवान पक्षियोंको छुटकारा मिलता है, वैसेही निर्ब्बल योगी कर्म्मज बन्धनोंसे बद्ध होकर बिनष्ट होते हैं और बलवान योगी लोग सहजमें ही उससे मुक्ति लाभ किया करते हैं। हे राजन्! जैसे अत्यन्त निबल थोड़ी अग्नि स्थूल काष्ठोंसे दबके बुझ जाती है, वैसे ही निर्ब्बल योगी भारी योगसे आक्रान्त होकर मृत्युको प्राप्त हुआ करते हैं। और जब वह थोड़ीसी निबल अग्नि वायुके संयोगसे फिर बलिष्ठ होती है; तब वही अग्नि सारी पृथ्वीको भस्म करती है। इस ही भांति अभ्याससे उत्पन्न हुए बलके सहारे तेजस्वी योगी भी प्रलयकालके सूर्य्यकी भांति सब जगत्को सुखा सकते हैं। हे राजन्! जैसे बलहीन पुरुष स्रोतके जरिये बह जाता है, वैसेही निर्ब्बल योगी भी अवश होकर विषयोंके जरिये हृत हुआ करते हैं और जैसे बलवान हाथी महास्रोतको भी तुच्छ समझकर अनायास ही रुद्ध करनेमें समर्थ होता है, वैसेही योगी भी योगबल लाभ करके प्रबल विषयोंको सामान्य समझा करते हैं। हे पार्थ! योगबलशाली योगी लोग योगसे स्वतन्त्रता लाभ करके प्रजापति, ऋषि, देवता और महाभूतोंमें प्रवेश करनेमें समर्थ होते हैं। हे राजन्! यम, अन्तक और भयङ्कर पराक्रमी मृत्यु ये सब क्रुद्ध होकर भी तेजस्वी योगीके निकट प्रभु नहीं हो सकते; योगी पुरुष योगबल लाभकर अपने शरीरको कई हजार बिभागमें बिभक्त करके उसके सहित पृथ्वीपर पर्य्यटन किया करते हैं, उनमेंसे कोई योगी विषयभोगमें लिप्त होकर निज तेज संक्षेपकारी सूर्य्यकी भांति शरीर संक्षेप करते हुए पुनर्व्वार उग्र तपस्याचरणमें प्रवृत्त होते हैं। हे राजन्! बन्धनको काटनेमें समर्थ बलवान योगी पुरुष अपनी मुक्तिके विषयमें आप ही प्रभु हुआ करते हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। हे भारत! मैंने तुम्हारे निकट योगसे प्राप्त हुए ये सब बल कहे, प्रमाणके निमित्त फिर सूक्ष्म रूपसे उन सबका वर्णन करूंगा। हे बिभु! आत्माकी समाधि और धारणाके विषयमें मैं सूक्ष्म दृष्टान्त कहता हूं, तुम सुनो। जैसे अप्रमत्त सावधान धनुषधारी लक्ष्यको वेधता है, वैसे ही युक्त योगी अर्थात् योगयुक्त पुरुष निश्चय ही सब प्रकारसे मुक्ति लाभ करते हैं। जैसे प्रशान्त चित्तवाले कर्म्ममें आसक्त पुरुष सिरपर स्थित जल भरे पात्रमें मन लगाकर सीढ़ीपर चढ़ते हैं, वैसे ही पहले कहे हुए युक्त योगी आत्माको निश्चल वा सूर्य्यकी भांति निर्म्मल किया करते हैं। हे कुन्तीपुत्र! जैसे मल्लाह सावधान होकर समुद्रमें गई हुई नौकाको शीघ्र ही निज बन्दरपर लौटा लाता है, वैसे ही तत्त्ववित् पुरुष योगयुक्त होकर आत्म समाधान करते हुए इस शरीरको छोड़कर दुर्गम स्थान पाते हैं। जैसे सारथी अत्यन्त

सावधान होकर उत्तम घोड़ोंके जरिये धनुर्धारी पुरुषको शीघ्र ही अभिलषित स्थानमें पहुंचाता है, और जैसे बाण धनुषसे छूटकर शीघ्र ही निशानेपर लगता है वैसे ही योगी पुरुष धारणा विषयमें अत्यन्त सावधान होकर शीघ्र ही परम पद पाते हैं। जो योगी जीवात्माको परमात्मामें प्रवृष्ट करके अचलभावसे निवास करता है, वह सब पापोंका नाश करके पुण्यवान् पुरुषोंके अजर पदको पाता है। हे मनुजेन्द्र! अत्यन्त पराक्रमसे युक्त जो योगी पुरुष महाव्रतमें स्थित होके नाभि, कण्ठ, मस्तक, हृदय, वचस्थल, कोख, नेत्र और कान आदि इन सब स्थानोंमें बुद्धिके सहारे जीवात्माका दृढ़ संयोग कर सकते हैं, वे अविनाशी रूपसे भासमान शुभाशुभ कर्म्मोंको शीघ्र ही जलाकर उत्तम योग अवलम्बन करते हुए इच्छानुसार मुक्त होते हैं।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! योगी किस प्रकारके अहार और कौन कौनसे विषयोंको जय करके ऐसा बल प्राप्त करते हैं आपको उसे ही मेरे समीप वर्णन करना उचित है।

भीष्म बोले, हे अरिदमन! जो योगी स्नेह वस्तुको त्यागके तिलकल्ककी कणा वा रूखा यावक भक्षण करते हुए बहुत समयतक एकही आहारसे स्थिति करते हैं वे शुद्धचित्तवाले योगीवर बल लाभ करते हैं। और जो दिन, पक्ष, महीना, ऋतु वा सम्वत भर दूध मिले हुए जलको पीके रहते हैं, वे बल लाभ करते हैं। हे मनुजेश्वर! योगी लोग नित्य अखण्ड मांस भी परित्याग करनेसे सब प्रकारसे शुद्धचित्त होकर बललाभ किया करते हैं। हे नृप सत्तम! स्पृहाहीन ज्ञानवान महात्मा योगी लोग काम, क्रोध, सर्दी, गर्म्मी, वर्षा, भय, शोक, श्वास, पौरुष, विषय, दुर्जेय, अरति, घोर तृष्णा, स्पर्श, निद्रा और दुर्जेय तन्द्रा परित्याग करके ध्यान अर्थात् धेयाकार प्रत्यय प्रवाह तथा अध्ययन अर्थात् प्रणव जपरूपी सम्पत्तिसे युक्त होकर ज्ञानके सहारे जीवात्माको प्रकाशित करते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! विपश्चित ब्राह्मणोंका यह महान् पथ अत्यन्त दुर्गम है। जैसे सांप वा सरिसृप समूहसे परिपूरित, जल रहित बिल सम, अनेक कांटोंसे युक्त भक्ष्यवस्तुओंसे रहित दावाग्निसे जले हुए वृक्षों और तस्करोंसे पूरित, भयङ्कर बनके बीच कोई युवा पुरुष कुशलसे रहके विचरनेमें समर्थ नहीं होता, वैसे ही विद्वान ब्राह्मणोंके महापथमें कोई भी गमन नहीं कर सकता। यदि कोई द्विज योगमार्ग अवलम्बन करके गमन करते हुए उससे उपरत हो, तो वह पुरुष अत्यन्त दोषभागी हुआ करता है। हे राजन्! कृतात्मा पुरुष ही चोखे छूरधारकी भांति योगधारणामें सुखसे निवास करनेमें समर्थ होते हैं; परन्तु अकृतात्मा पुरुष कभी उसमें वैसे सुखसे निवास नहीं कर सकता। हे राजन्! जैसे समुद्रमें स्थित पुरुष मल्लाहसे रहित नौकाके जरिये पार नहीं होसकता, वैसे ही धारणा नष्ट होनेसे उसके जरिये पुरुषको कभी शुभ गति नहीं होती। हे कुन्तीनन्दन! जो लोग धारणामें पूर्ण रीतिसे निवास कर सकते हैं, वेही जन्म, मरण, सुख और दुःख त्यागनेमें समर्थ होते हैं, यह योगशास्त्रमें अनेक भांतिसे निर्णयके सहित कहा गया है। परन्तु जो योगका फल है, वह द्विजातियोंमें निश्चित रूपसे विद्यमान है।

हे महात्मन्! वह योगका फल परब्रह्मस्वरूप है। महात्मा योगी लोग उस ही योगबलसे लोकेश ब्रह्मा, बरदाता विष्णु, महेश्वर, धर्म्म, कार्त्तिकेय, महानुभाव कपिल आदि ब्रह्मपुत्रगण, योगमें विघ्न करनेवाले तम, रज और आत्मतत्वकी प्रकाशक शुद्ध सतोगुण, परम प्रकृति, वरुण पत्नी सिद्धदेवी, तेज और धीरज, इन सबमें इच्छानुसार प्रवेश कर सकते हैं।

अर्थात् इन्हें जय करनेमें समर्थ होते हैं, और तारोंसे घिरे हुए ताराधिप चन्द्रमा, विश्वदेव, सर्प, पितर, वनके सहित समुद्र, नदी, बादल, नाग, पर्व्वत, यक्ष, गन्धर्व्व, स्त्री, पुरुष और दिश, इन सबमेंसे जब जिसके रूपको धारण करनेकी इच्छा हो, उस समय उस ही रूपको धारण कर सकते हैं और शीघ्र ही मुक्त होते हैं। हे राजन्! महावीर्य्यसम्पन्न परमात्माकी जगत् कर्तृत्वादि निरूपण रूपी जिन सब कथाओंका प्रसङ्ग होता है, उसे ही मैं शुभ समझा करता हूं, क्यों कि ईश्वरपरायण योगी लोग परमात्म विषयक प्रसङ्ग करते हुए सर्व्वाधिक होकर सङ्कल्पमात्र समस्त मर्त्य लोकको सृष्टि करनेमें समर्थ होते हैं।

योग विधानमें ३०० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे नरपाल! आपने शिष्यके पूछनेपर शिष्यहितैषी होकर शिष्य सम्मत इस योग मार्गका शिष्यके समीप पूर्णरीतिसे न्याय पूर्व्वक वर्णन किया; परन्तु अब मैं सांख्य शास्त्रकी विधि पूछता हूं उसे मेरे समीप विस्तार पूर्व्वक कहिये। तीनों लोकोंके बीच जो ज्ञान निर्दिष्ट हैं, उन सबको आप जानते हैं।

भीष्म बोले, हे मनुजेन्द्र! कपिल आदि यतीन्द्रोंने जो प्रकाश किया है, उसमें किसी भांतिका भ्रम नहीं दीखता, जिसमें अनेक प्रकारके गुण विद्यमान हैं, और जिससे सब दोष नष्ट होते हैं, आत्मवित् सांख्यमतवाले मनुष्योंका वह सूक्ष्म तत्व तुम्हारे समीप कहता हूं, तुम सुनो। हे राजन्! मोक्षके उपयोगी सात्विक भावसे चित्तको वशमें करनेवाले, ज्ञान और विज्ञानयुक्त सांख्यमतवाले मनुष्य, पिशाच, राक्षस, यक्ष, गन्धर्व्व और तिर्य्यग्गामी पितर, नाग, पक्षी, मारुत, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, राजर्षि, असुर, विश्वदेव, योगी प्रजापति और ब्रह्मा, इन लोगोंके सदोष अर्थात् मिथ्यात्व दोषयुक्त सब दुर्ज्जय विषय, इस लोकमें आयुका समय, सुखका परमतत्व, सदा विषयकी इच्छा करनेवाले पुरुषके प्राप्तकालमें उत्पन्न हुए दुःख, तिर्य्यग्गामी और नरकगामी लोगोंके क्लेश, स्वर्गके दोष तथा गुण, वैदिक, वेदवाद, ज्ञानयोग और सांख्य ज्ञान, इन सबके दोष गुणोंका ज्ञानके सहारे जानके और आनन्द प्रीति, उद्वेग, प्रकाश्य, पथ्यशीलता, सन्तोष, श्रद्धानत्व, आर्ज्जव, दानशीलता तथा ऐश्वर्य्य आदि दश गुणोंसे युक्त सत्व, अनशन, कृपणता हीनता, सुख, दुःख सेवा, भेद, पौरुष, काम, क्रोध, मद और मत्सरता, इन नव गुणोंसे युक्त रज, तम, मोह, महामोह, तामिस्र, अन्धतामिस्र, निद्रा, प्रमाद और आलस्य, इन आठों गुणोंसे युक्त तम, महत्, अहंकार शब्द तन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र, रूपतन्मात्र, रसतन्मात्र और गन्धतन्मात्र, इन सातों गुणोंसे युक्त बुद्धि, कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नासिका, इन पांचों इन्द्रियोंके सहित षष्टमरूप मन, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी पञ्चगुणोंसे युक्त आकाश, संशय निश्चय, गन्धर्व्व, स्मरण, इन चारों गुणोंसे युक्त बुद्धि, अप्रतिपत्ति विप्रतिपत्ति और विपरीत प्रतिपत्ति ये त्रिगुणात्मक तम आदि तथा दुःखरूपी द्विगुण रज, प्रकाशात्मक एक गुणसत्व, ये सब और प्रलय अर्थात् प्राकृत लय तथा प्रेक्षण अर्थात् आत्मतत्त्व समालोचनके समयमें मोक्ष मार्ग यथार्थ रीतिसे जानके आकाशगामी सूर्य्य किरणकी भांति मङ्गलकारी परम मोक्षलाभ किया करते हैं। और रूप-गुणसे युक्त श्रवणेन्द्रिय, रस गुणसे युक्त रसनेन्द्रिय, स्पर्शगुण युक्त त्वगेन्द्रिय, आकाशाश्रित वायु, तमोगुणयुक्त मोह अर्थाश्रित लोभ, विक्रम अर्थात् पादविक्षेपमें आसक्त विष्णुबल अर्थात् हस्तेन्द्रियासक्त इन्द्र, कोष्ठासक्त अग्नि, जलमें आसक्त सिद्ध देवी, तेजसमाश्रित जल, वायुवाश्रित तेज, प्रकाशाश्रित वायु महत्तत्वसे

संयुक्त आकाश, बुद्धि समाश्रित महत् तम संयुक्त बुद्धि रजके आश्रित तम, सत्वाश्रित रज, आत्मा अर्थात् जीविताश्रित सत्व, ईश्वर नारायण देवमें आसक्त आत्मा, मोक्षमें समासक्त नारायण देव, शिवमहिमामें प्रतिष्ठित मोक्ष, सोलह गुणोंसे युक्त लिङ्ग शरीर, लिङ्ग देहके आश्रित स्वभाव अर्थात् पूर्वकर्म्म वा चेतना अर्थात् बुद्धिवृत्ति, निष्पाप उदासीन अद्वितीय आत्मा, विषय वासनावान पुरुषोंके द्वितीय कर्म्म आत्माश्रित इन्द्रिय और इन्द्रियार्थ वेदके अनुसार मोक्षके दुर्लभत्व प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान आदि पञ्चप्राण तथा अधः और प्रवाह इस ही प्रकारसे सप्तधा विहित सातों वायु प्रजापति, ऋषि अनेक भांतिके उत्कृष्ट धर्म्म मार्ग, सप्तर्षि, देवर्षि, सूर्य्यके समान दूसरे दूसरे महान् ब्रह्मर्षि, उक्त ऋषियोंकी कालवशसे ऐश्वर्य्यच्युति, महाभूतोंका नाश, पापाचारियोंकी अशुभ गति, यमलोकगामी लोगोंके वैतरनी पार होनेका दुःख जीवोंका विचित्र योनियोंमें भ्रमण और रुधिर जलके पात्र अशुभकर जठरके बीच वास, जीवके कफ, मूत्र, पुरीषसे परिपूरित तीव्र गन्धसे युक्त, बहुतसे शुक्रशोणित संयुक्त मज्जा और स्नायुसे परिवृत सेकड़ों नाड़ियोंसे परिपूरित अपवित्र नवद्वार युक्त पुरीके बीच निवास और उसमें विविध सम्बन्ध, रमणीय वस्तुमें आसक्तचित्त तामस और सात्विक जन्तुओंके कुत्सित कर्म्म हैं, आत्मतत्ववित् सांख्यवादियोंके गर्हित आचरण चन्द्रमा और सूर्य्यका घोर उपराग, तारोंका गिरना, नक्षत्रोंका विपर्य्यय, दम्पतियोंका विरह और दीनता, प्राणियोंके परस्पर अशुभ भक्षण, बाल्यकालमें मोह और देहका पतन, राग और मोह उपस्थित होनेपर किसी पुरुषमें सतोगुण आश्रित होता है, सहस्र लोगोंके बीच कोई पुरुष मोक्षबुद्धि अवलम्बन करता है, श्रुतिके अनुसार मोक्षका दुर्लभत्व, अप्राप्त वस्तुमें बहुमान, प्राप्तवस्तुमें उदासीनता विषयोंमें दौरात्म्य अर्थात् बन्धनकारित्व दोष मृतकोंके सुन्दर शरीर, जन्तुओंको गृहवासरूपी दुःख, ब्रह्मघ्न पतित पुरुषोंकी दारुण गति, मद्य पीनेमें आसक्त और गुरुस्त्रीमें रत, दुरात्मा ब्राह्मणोंकी अशुभ गति, जो मनुष्य माताके अनुवर्त्ती नहीं होते और जो देवस्थानमें वास नहीं करते, उन अशुभ कर्म्म करनेवाले मनुष्योंकी गति, तिर्य्यग् योनिगत सब प्राणियोंकी पृथक् पृथक् गति, विचित्र वेदवाद ऋतुका बदलना, सम्वत्सर, महीना, पक्ष और दिवसका क्षय, चन्द्रमा, समुद्र, धन, इनकी घटती बढ़ती, सम्बन्ध, युग, पहाड़, नदी वर्ण इन सबका बार बार नष्ट होना, जन्म, जरा, मृत्यु, देह दोष, देहके दुःख, देह नष्ट करनेवालोंके दुःख, सर्व्व जीवस्थित आत्मदोष, निज शरीरसे उत्पन्न अशुभ गन्ध,—इन सबको यथार्थ रीतिसे जानकर मुक्ति लाभ किया करते हैं।

युधिष्ठिर बोले, हे अमित विक्रम! निज शरीरसे उत्पन्न कौन कौनसे दोष अशुभरूपसे दीखते हैं, मेरे इस सन्देहके विषयको यथावत् वर्णन करना आपको उचित है।

भीष्म बोले, हे शत्रुनाशन! मोक्ष मार्गवित् कपिल प्रणीत सांख्य मतावलम्बी मनीषि लोग देहके बीच स्थित जिन सब दोषोंको कहा करते हैं, उन्हें मैं तुम्हारे समीप कहता हूं, सुनो। पण्डित लोग काम, क्रोध, भय, निद्रा और श्वास, इन पांचोंको दोष कहा करते हैं, वे सब दोष शरीरमें ही दीख पड़ते हैं, हे राजन्! मनीषि लोग क्षमासे दोष, संकल्प त्यागसे काम, तत्वसेवाके जरिये निद्रा, अप्रमादसे भय और अल्प आहारसे श्वासको छेदन किया करते हैं।

हे नरपाल! महाप्राज्ञ सांख्य मतवाले पुरुष सांख्यसम्मत महान् व्यापक ज्ञान-योगसे सेकड़ों गुणोंके जरिये सब गुणों, सेकड़ों

दोषोंके सहारे सब दोषों और विविध हेतुग्र-तके जरिये अनेक प्रकारके हेतुओंको यथार्थ रूपसे जानकर जलके फेन समान विष्णुकी मायासे आवृत्त विचित्र भित्तिसदृश नलवणको भांति अन्तःसार रहित अन्धकारसे परिपूरित बिल-सदृश, वर्षाके बुलबुलेके समान, सुखहीन, नष्टप्राय विनाशान्तर अवश, इन सब लोकोंको देखते हुए कीचड़में फंसे अवश हाथीकी भांति अन्धकारमें निमग्न रज और प्रजाकृत स्नेहको त्यागके देहस्थित रज तथा तमोगुणसे उत्पन्न वैसे अशुभ गन्ध और सतोगुणसे उत्पन्न सब स्पर्शन पुण्यगन्धोंको ज्ञानरूपी शास्त्रसे शीघ्र ही काटके जिसका दुःखरूप जल, चिन्ता वा शोकरूपी भयङ्कर तालाब, व्याधि और मृत्यु-रूपी महाग्राह, भयरूपी महासर्प, तमरूपी कूर्म्म, रजोगुणरूपी मीन, बुद्धिरूपी नौका, स्नेहरूपी कीचड़, ज्ञानरूपी दीपक, कर्म्मरूपी अगाध, सत्यरूपी तीर, हिंसारूपी प्रबलवेग, अनेक रस सदृश आकर, नाना प्रीतिरूपी महा-रत्न, दुःख और ज्वररूपी वायु, शोक और तृष्णा-रूपी महाआवर्त्त, तीच्छा व्याधिरूपी महाहस्ती, हड्डीरूपी सघट, कफ रूपी फेन, दानरूप मुक्ताकी खान सीप, रुधिर ह्रदरूपी विद्रुम, हंसी और रोदनरूपी निर्घोष और जो जराके जरिये दुर्गम अनेक भांतिके ज्ञानके सहारे दुस्तर, रोदनके आंसू और मलरूप जिसका चार तथा सङ्गत्यागरूप जिसका परम आश्रय है, लोककी उत्पत्तिरूपी वेग, बान्धव और पुत्र रूपी पत्तन, अहिंसा और सत्यरूपी सीमा प्राण-त्यागरूपी महान तरङ्ग वेदान्त गमनरूपी दीप और जिसमें मोक्ष विषय अत्यन्त दुर्लभ है, वैसे बाड़वानलसे युक्त सब भूतोंके दयारूप समुद्रको ज्ञानयोगके जरिये पार हुआ करते हैं। हे कुन्तीनन्दन ! सांख्य मतवाले इस ही भांति आलोचनासे दुस्तर जन्मयुक्त स्थूल शरीरको भूल कर हृदयरूपी निर्म्मल आकाशमें प्रविष्ट होने पर वहां जिस भांति सुख, संयोगसे अन्त-छिद्र मृणाल दण्डके जरिये आकर्षित जल भीतरमें प्रवेश करता है, वैसे ही चौदह भुवन विहारी सूर्य्य आत्मामें प्रणिहित मनके जरिये उन सुकृतमान सांख्यमतवालोंके अन्तरमें प्रविष्ट होकर उन लोगोंको चतुर्द्दश भुवनोंके विष-योंको मालूम करानेसे वे उन्हीं सब विषयोंको प्राप्त करते हैं। हे भारत ! वहां प्रवह-वायु उन रागरहित वीर्य्यवान तपोधन यतिसिद्ध सांख्य लोगोंको ग्रहण करता है। अनन्तर शुभलोक-गामी, सूक्ष्म, सुन्दर शीतलता सुगन्धि सुख-स्पर्श मरुत श्रेष्ठ वह प्रवहमान वायु उन्हें आकाशकी चरम गति अर्थात् हृदयरूपी आका-शमें लेजाता है। हे लोकेश ! इस ही प्रकार धीरे धीरे आकाशसे रजोगुणमें रजोगुणसे सत्वको परमगति और सत्वसे परमात्मा प्रभु नाराय-णको पाता है। फिर सब भूतोंके निवास स्थान वे सांख्य लोग पवित्र परमात्माको पाके अमृत-कल्प होते हैं, इसलिये उन लोगोंको फिर पुन-रावृत्ति नहीं होती। हे पार्थ ! सत्व और सर-लतायुक्त सब भूतोंमें दयावान् भेद ज्ञानसे रहित महात्माओंकी वही परमगति है।

युधिष्ठिर बोले, हे पाप रहित ! स्थिरव्रत-वाले सांख्योंके षड़्गुण ऐश्वर्य्ययुक्त परमात्म स्वरूप मोक्षधाम मिलने पर उन्हें जन्म मरण आदिका स्मरण और मोक्ष विषयका विशेष ज्ञान रहता है, वा नहीं। तथा मोक्ष प्रतिपा-दक श्रुतिमें मोक्ष विषयक ये दो प्रकारके महान् दोष दीख पड़ते हैं, कि कोई कोई यति मोक्ष धर्म्मको प्रशंसा करते हुए मोक्ष मार्गमें प्रवृत्त होते हैं, कोई कर्म्मकाण्डकी प्रशंसा करते हुए प्रवृत्ति मार्गमें प्रवृत्त होते हैं; मुझे भी वही प्रवृत्ति धर्म्म प्रधान जंचता है, परन्तु यह भी युक्ति सङ्गत है, कि मोक्षमार्गमें प्रविष्ट पुरु-षोंका ज्ञान श्रेष्ठ है। हे कौरवेन्द्र ! इसलिये इस विषयमें जो यथार्थ है, उसे यथावत वर्णन

करनेमें आप ही उपयुक्त हैं, आपके समान पुरुषके अतिरिक्त मैं और किसीसे पूछनेमें समर्थ नहीं होता हूं।

भीष्म बोले, हे तात भरत श्रेष्ठ! तुमने जो युक्ति सङ्गत प्रश्न किया, वह अत्यन्त कठिन है, यद्यपि इस प्रश्नमें पण्डितोंको भी मोह उपस्थित होता है, तौभी कपिलोक्त सांख्य मतावलम्बी महात्मा लोग जिस परम तत्वको जानते हैं, उसे ही तुम्हारे समीप विस्तार पूर्व्वक कहता हूं, सुनो। हे राजन्! प्राणियोंकी निज देहमें स्थित इन्द्रियोंके जरिये ही आत्माको जाना जा सकता है, इसलिये वे इन्द्रियें आत्म ज्ञानकी हेतुभूत बोध होती हैं, क्यों कि सूक्ष्म चिदात्मा उन इन्द्रियोंके सहित ही अन्तर-बाह्य सब विषयोंको प्रकाश किया करती है। परन्तु इन्द्रियें आत्मासे रहित होने पर काठ और कुड्यप्राय होकर महार्णवमें स्थित जल रहित फेनकी भांति विनष्ट होती हैं। हे प्रवृतापन! देहाभिमानी जीव इन्द्रियोंके सहित शयन करनेपर स्वप्नावस्थामें सूक्ष्म अन्तरात्मा आकाश मण्डलवर्त्ती वायुकी भांति सर्व्वत्र विचरण किया करती है। हे भारत! जाग्रत अवस्थाकी भांति स्वप्नमें भी वह सूक्ष्म अन्तरात्मा यथाक्रमसे रूप और स्पर्शविषयोंको दर्शन और स्पर्शन किया करती है। इस स्वप्नावस्थामें निज निज स्थानमें स्थित इन्द्रियें अपने अपने विषयोंको ग्रहण करनेमें असमर्थ होकर विषरहित सर्पकी भांति आत्मामें लीन होती हैं। हे पार्थ! उक्त अवस्थामें अन्तरात्मा निज निज स्थानमें स्थित इन्द्रियोंकी सब वृत्ति और धर्म्म आदि सतोगुण, प्रवृत्ति आदि रजोगुण, अप्रवृत्ति आदि तमोगुण, अध्यवसाय आदि बुद्धिके गुण और संकल्प आदि मनके गुण, श्रोत्र आदि आकाशके गुण, स्पर्श आदि वायुके गुण, स्नेहन आदि अग्निके गुण, रस आदि जलके गुण और गन्ध आदि पृथ्वीके गुणोंको आक्रमण करके सर्व्वत्र विचरण करता है। हे युधिष्ठिर! अन्तरात्मा क्षेत्रज्ञ जीवस्थित उक्तानुक्त सत्वादि गुणसान्त और अमित माया गुणके जरिये आच्छादित करके जीवको आक्रमण करती है, उसहीके अनुसार शुभाशुभ कर्म्म भी जीवको आच्छन्न किया करते हैं। अनन्तर क्षेत्रज्ञ जीवकार्थ्य उपाधि इन्द्रिय और कारणोपाधि प्रकृतिको अतिक्रम करके अव्यय परमात्माको पाता है। हे भारत! क्षेत्रज्ञ जीव मायातीत अनामय एकमात्र निर्गुण परमात्मा नारायणमें प्रविष्ट होनेपर पुण्य-पापसे मुक्त होती है, इससे उसको फिर पुनरावृत्ति नहीं होती। हे तात! समाधि भङ्ग होनेपर आत्मामें लीन हुए अन्तःकरण और इन्द्रियें प्रारब्ध कर्म्मोंके अनुसार ईश्वरकी आज्ञा पालन करनेके निमित्त फिर देह धारण किया करती है। अनन्तर थोड़े समयमें ही वर्त्तमान देहका पतन होनेपर मुमुक्षुर्थी, मोक्षकी इच्छावाले ज्ञानयुक्त योगी लोग विदेह मुक्ति लाभ करते हैं।

हे राजन्! महाप्राज्ञ सांख्य लोग इस ही ज्ञानके सहारे परम गति पाते हैं, इसलिये कोई ज्ञान भी इसके समान नहीं है। हे कुन्तीनन्दन! मेरी समझमें यह सांख्य ज्ञान जो अत्यन्त उत्कृष्ट और अचर अवज्ञस सनातन पूर्णब्रह्म स्वरूप है; इसलिये इसमें तुम्हें और सन्देह न करना चाहिये। मनीषि लोग जिसे अद्वैत उत्पत्ति, स्थिति और नाशरहित, नित्य अखण्ड, जगत्कर्त्ता कूटस्थ ब्रह्म कहा करते हैं, जिससे सृष्टि, स्थिति और प्रलयरूपी सब क्रिया उत्पन्न होती हैं, ऋषि लोग सब शास्त्रोंमें जिसकी प्रशंसा किया करते हैं; सब भूतोंमें समज्ञान करनेवाले साधु, ब्राह्मण और देवता लोग ब्राह्मणोंके परम हितकारी उस अच्युत अनन्त देवकी प्रार्थना किया करते हैं। विषयज्ञानसे युक्त ब्राह्मण लोग मायिक गुणोंके सहारे जिसकी स्तुति करते हैं; अमित दर्शन सांख्य और योगसिद्ध योगी लोग उसे जगत्का

कारण कहके अनेक प्रकारसे स्तुति करते हैं; और यह वेदमें प्रसिद्ध है, कि सांख्य उस अमूर्त्त शुद्ध चिन्मात्र परब्रह्मकी मूर्त्ति है तथा घटादि विषयक सब विषयोंका ज्ञान ही उसका महाज्ञान स्वरूप है।

हे राजन्! इस पृथ्वीपर जो स्थावर और जङ्गमात्मक दो प्रकारके प्राणी हैं, उनमें जङ्गम ही श्रेष्ठ हैं। हे महात्मन्! अत्यन्त विस्तृत वेद, सांख्य, योग, पुराण, इतिहास, शिष्टजन सेवित अर्थशास्त्र और इस लोकमें जो सब विविध भांतिके ज्ञान दीख पड़ते हैं, वे सब इसी सांख्यज्ञानके अन्तर्गत हैं, हे राजन्! शम, बल, सूक्ष्म ज्ञान, तपस्या और सुख, ये सब सांख्यज्ञानके बीच यथावत विहित हुए हैं। हे पार्थ! किञ्चित विकलता वशसे उस सांख्य ज्ञानका उदय न होनेसे सांख्य लोग देवलोकमें जाके वहां सदा सुखसे वास करके देवताओंके ऊपर आधिपत्य करते हुए कृतार्थ होकर भोगकी समाप्ति होनेपर यत्नशील विप्रकुलमें फिर पतित होते हैं। सांख्य लोग देह छोड़के देव लोकवासी देवताओंकी भांति देवलोकमें प्रवेश करके क्रमसे महापूज्य शिष्टोंसे सेवित सांख्य ज्ञानमें अधिक अनुरक्त हुआ करते हैं। हे राजन्! कभी वे तिर्य्यग्गति, अधोगति वा पापात्माओंके अधिवासको प्राप्त नहीं होते; क्योंकि जो द्विजाति एकमात्र ज्ञानमें अनुरक्त रहते हैं, वेही प्रधानता लाभ करते हैं। जो महात्मा महासागरकी भांति विशाल सुन्दर, अप्रमेय, पुरातन परम पवित्र सब सांख्यज्ञानकी धारणा अर्थात् दर्शन करते हैं वेही नारायण परब्रह्मरूप होते हैं। हे नरदेव! मैंने तुम्हारे निकट यथावत् तत्व वर्णन किया, वह जगदन्तर्य्यामी नारायण सृष्टि कालमें यही पुरातन विश्व उत्पन्न करता है, और प्रलयके समय फिर इस जगत्का संहार करता है। अन्तमें निज देह स्थित विषयादि कार्य्यजात अपनेमें लीन करते हुए कारण सलिलमें शयन किया करता है।

३०१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे शत्रुनाशन! जिससे जीवोंकी पुनरावृत्ति रहित होती, जिससे जीवोंका पुनरागमन होता है और जो अक्षर तथा क्षररूपसे वर्णित हुआ है, वह कौन है? हे महाबाहो कुरुनन्दन! उस अक्षर और क्षर दोनोंके प्रभेदको यथार्थ रूपसे जाननेके लिये आपसे प्रश्न करता हूं। क्योंकि वेदपारग ब्राह्मण, महाभाग ऋषि और महात्मा योगी लोग आपको ज्ञाननिधि कहा करते हैं। हे कुरुकुलश्रेष्ठ! आपकी परमायुके दिन बहुत ही कम बाकी हैं; क्योंकि भगवान सूर्य्यके दक्षिणायनसे लौटनेसे ही आपको परमगति प्राप्त होगी। आप कुरुवंशके दीपक हैं, तथा ज्ञान दीपसे सदा प्रकाशित हैं, इसलिये आपके परमधाममें गमन करने पर हम लोग किसके समीप इस कल्याणकर वचनको सुनेंगे। हे राजेन्द्र! इस ही निमित्त आपके समीप इन सब विषयोंके सुननेकी इच्छा करता हूं, इस लोकमें ऐसे अमृतमय वचनको सुनकर मैं परितृप्त नहीं होता हूं।

भीष्म बोले, इस विषयमें करालजनक और वशिष्ठके सम्वादयुक्त प्राचीन इतिहास तुम्हारे समीप कहता हूं, सुनो। पहिले समयमें कराल नाम महाराज जनक सूर्य्यके समान तेजस्वी अध्यात्म विद्याके जाननेवाले, आध्यात्मिक अनुभव और निश्चययुक्त ऋषिश्रेष्ठ मित्रावरुण वशिष्ठको बैठे हुए देख उन्हें प्रणाम कर हाथ जोड़के सुन्दर अक्षरोंसे युक्त विनीत कुतर्क रहित मधुर वचनसे मोक्ष सम्बन्धी परम ज्ञानका विषय पूछा कि, हे भगवन्! जिससे मनुष्योंकी पुनरावृत्ति निवारित होती है,

जिसमें यह जगत् लीन होनेसे चर रूप कहा गया है और जिसे अचर कहते हैं, उस संसार मोचक आनन्द स्वरूप निद्वन्द्व सनातन परब्रह्मके विषयको सुननेकी इच्छा करता हूं, उसे आप मेरे समीप बिस्तार पूर्व्वक कहिये।

वशिष्ठ बोले, हे पृथ्वीपाल! यह जगत् जिस प्रकार नष्ट होता और किसी समयमें भी जो बिनष्ट नहीं होता है, उस ही चर और अचरको विशेष रीतिसे वर्णन करता हूं, आप सुनिये। देव परिमाणसे बारह हजार वर्षका एक युग होता है, चार युगका एक कल्प और हजार कल्पका ब्रह्माका एक दिन और इस ही परिमाणसे ब्रह्मरात्रि हुआ करती है। हे राजन्! उस ब्रह्माका नाश होनेपर अमूर्त्तात्मा शम्भु, परमेश्वर अनन्त कर्म्मा महाभूत मूर्त्तिमान बिश्वरूप अग्रज हिरण्य गर्भको उत्पन्न करते हैं, उसहीमें स्वयम्भु ब्रह्माके नित्य स्वतःसिद्ध अणिमा आदि सब ऐश्वर्य्य बिद्यमान हैं, सर्व्वनियन्ता ज्योतिमय, अविनाशी, सर्व्वत्रगामी, सर्व्वग्राही, सर्व्वदर्शी, सर्व्वशिरा, सर्व्वानन, सर्व्वश्रोता वह हिरण्यगर्भ लोकमें सब वस्तुओंको आवरण करके स्थिति कर रहा है। यह सब ऐश्वर्य्योंसे युक्त हिरण्यगर्भ वेद शास्त्रोंमें सूत्रात्मा और बुद्धि समष्टि कहके निर्द्दिष्ट हुआ है। योग शास्त्रमें इसे सृष्टिका प्रथम कार्य्य महान् विरञ्चि और अज कहते हैं, सांख्य शास्त्रमें यह अनेक नामसे विख्यात् है, अनेक शरीरधारी, बहुरूपी, विश्वात्मा, एक मात्र अक्षररूप कहा गया है। वही अचर स्वयं अनेक रूप होकर तीनों लोकोंको उत्पन्न करके उन्हें आवरण कर रहा है, इसलिये रूप निबन्धनसे लोग उसे बिश्वरूप कहा करते हैं। यही महातेजस्वी बिश्वरूप सूत्रात्मा बिकृतभावसेयुक्त होकर स्वयं ही अपनेको उत्पन्न करके अहङ्कार और अहङ्काराभिमानी बिराटकी सृष्टि करता है। पण्डित लोग अव्यक्त प्रकृतिसे व्यक्तभावापन्न उस बिश्वरूपको बिद्यासृष्टि और महान् कहा करते हैं और अहङ्कारको अविद्या सृष्टि कहते हैं। एक मात्र ईश्वरविषयकी उपासना वा ज्ञानसम्बन्धमें जो बिधि और अविधि दोनों उत्पन्न हुई हैं; वेदशास्त्रोंके अर्थ जाननेवाले उन दोनोंको अविद्या कहके व्याख्या करते हैं। हे पार्थ! अहङ्कारसे पञ्चतन्मात्र अपञ्चीकृत पञ्चभूतोंकी जो सृष्टि होती है, वह तीसरी सृष्टि है और सात्विक, राजस तथा तामस आदि अहङ्कारसमूहके बिकारको चौथी सृष्टि समझिये। हे राजन्! आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी और शब्द स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध, ये दशवर्ग, युगपत् उत्पन्न हुए हैं, इसलिये इस सार्थक भौतिक सृष्टिको पांचवीं जानो। कान, त्वचा, नेत्र, जीभ और नासिका, ये पांचो बुद्धि इन्द्रिय और नाक, हाथ, पांव लिङ्ग और गुदा, ये पांचो कर्म्मेन्द्रिय मनके सहित युगपत् उत्पन्न हुई हैं। ये चौबीस तत्व सब शरीरमें ही विद्यमान हैं, तत्वदर्शी ब्राह्मण लोग इसे यथार्थरूपसे जानके शरीरके बिषयमें शोक नहीं करते। हे नरेन्द्र! यह निश्चय जानो, कि तीनों लोकके बीच सब जीवोंमेंही ये चौबीस तत्व देहरूपसे बर्णित हुए हैं। देव, दानव, मनुष्य, किन्नर, यक्ष, गन्धर्व्व, भूत, महोरग, चारण, पिशाच, देवर्षि, निशाचर, दंश, कीट, मशक, भनगे, कीड़े, चूहे, कुत्ते, स्वपाक, व्याध, चाण्डाल, पुक्कस, हाथी, घोड़े, गधे, शार्दूल गज और वृक्ष आदि सब मूर्त्तिमान प्राणिमात्रमें ही इसके दृष्टान्त दीख पड़ते हैं और प्राणियोंका जल, भूमि और आकाशके अतिरिक्त अन्यस्थान नहीं है, इस ही भांति स्थिर सिद्धान्त भी सुना जाता है। हे तात! हिरण्यगर्भ आदि व्यक्तात्मक सब वस्तु ही सदा बिनष्ट होती हैं, इस ही लिये भूतात्मा पञ्चभौतिक शरीर चररूपसे कहा गया है। पण्डित लोग शुद्ध चिन्मय प्रत्यगात्माको अचर कहते हैं और व्यक्त वा अव्यक्ता-

रख्य महात्मक जगत्का चर कहा करते हैं। हे महाराज! आप जो मुझसे पूछते हैं, उसे मैंने तुमसे प्रथम ही चरके दृष्टान्तभूत नित्य महान् और अग्रज हिरण्यगर्भका विवरण कहा है। विष्णु निस्तत्व होके भी पञ्चविंशति तत्त्वरूपसे गिने गये हैं; और वह सब तत्वोंके अवलम्ब हैं, उस ही लिये मनीषी लोग इन्हें तत्व कहते हैं। चौबीस तत्व अव्यक्त मूल प्रकृति मर्त्यरूपसे संहत होकर व्यक्त अर्थात् कार्य्यरूपी जगत्की सृष्टि करती हुई उस मूर्त्तिमान जगत्की अधिष्ठाता होती हैं; परन्तु पचीसवीं तत्त्व पुरुष अमूर्त्त और असंहत है, इससे वह जगत्का अधिष्ठाता नहीं है। वह अव्यक्त मूल प्रकृति ही चित्शक्तिसे युक्त होकर सब वस्तुओंके भीतर निवास करता है और सर्ग वा प्रलयधर्म्मिणी उस प्रकृतिके सहित वह नित्य शुद्ध चैतन्य स्वभावसे मूर्त्तिहीन होके भी सर्ग और प्रलयरूपसे सबको दीख पड़ता है। इस ही भांति सर्ग और प्रलयवित् वह महान् आत्मा हिरण्यगर्भ प्रकृतिके संयोगसे विकृत और मूढ़ होकर "मैं" इस ही प्रकार अभिमान करता है, वा तम, रज और सतोगुणसे युक्त होकर इस लोकमें मूर्खोंकी सेवा तथा मूर्खताके कारण सब योगियोंमें लीन होता है और सहवास निबन्धनसे विनाशी होकर "मैं दूसरा नहीं हूं" इस ही भांति "मैं अमुकका पुत्र तथा अमुक जातीय हूं"—ऐसा कहके ब्राह्मणादि गुणोंके अनुवर्त्ती होता है। तमोगुणके जरिये क्रोधादि तामसभाव, रजोगुणसे प्रवृत्यादि राजसभाव और सतोगुणके सहारे प्रकाशादि सात्विकभाव प्राप्त होता है। स्वच्छता, रञ्जकता और मलिनता निबन्धनसे पहले कहे हुए सत, रज और तमोगुणसे क्रमशः श्वेत, लाल और नीला, ये तीन प्रकारके रूप तथा इस लोकमें जो सब रूप विद्यमान हैं, वे सभी प्रकृतिके जरिये उत्पन्न हुए हैं। तामसिक लोग नरकमें गमन करते, राजस लोग मनुष्य लोकमें गमन करते और सात्विक लोग सुखभागी होकर देवलोकमें गमन किया करते हैं। जो लोग केवल पापकर्म्म करते हैं, वे तिर्य्यग् योनिको प्राप्त होते हैं जो पाप पुण्य दोनों कर्म्म करते हैं, वे मनुष्य योनि पाते हैं और जो लोग केवल पुण्य कर्म्म ही करते हैं वे देव योनिको प्राप्त हुआ करते हैं; यह पचीसवां अक्षर पुरुष अज्ञानसे इस ही भांति अव्यक्त प्रकृतिके वशीभूत होकर मनीषी पुरुषोंके जरिये चररूपसे कहा जाता है और वही ज्ञानके सहारे सदा अक्षर रूपसे प्रकाशित होता है।

३०२ अध्याय समाप्त।

वसिष्ठ बोले, इस ही प्रकार वह अक्षर पुरुष प्रकृति संयोगवशसे अज्ञानका अनुवर्त्ती होकर एक शरीरसे अनेक शरीर धारण करता है और सत्वादि गुणोंकी सामर्थसे वह सत्वादि गुणोंके सहित कभी तिर्य्यग् योनि कभी देवयोनिमें उत्पन्न हुआ करता है और मनुष्य लोकसे देवलोक, देवलोकसे मनुष्य लोक, वहांसे अनन्त नरक लोक पाता है। जैसे कोषकार कीट अत्यन्त सूक्ष्म सूत्ररूपी गुणके जरिये आपही बद्ध होता है, वैसे ही यह निर्गुण अक्षर पुरुष इस लोकमें तिर्य्यग् आदि योनियोंमें उत्पन्न होके सिरके रोग, नेत्र रोग, दन्तशूल, गलग्रह, जलोदर, तृषारोग, ज्वर, गण्ड, विशूचिका, श्वित्रकुष्ट अग्निदग्ध श्वास, खांसी और मिरगी आदि सब रोगोंसे दुःख भोग करता है और शरीरमें जो सब दूसरे अनेक प्रकारसे प्राकृत सुख दुःखरूपी द्वन्द्व उत्पन्न होते हैं, यह उन सब गुणोंको स्वयं ही ग्रहण करके "मैं दुःखी हूं मैं रोगी हूं" इस ही भांति अनुभव किया करता है। कभी तिर्य्यग् योनि और कभी देव योनिमें उत्पन्न होके अभिमानके कारण उस ही

योनिसे उत्पन्न हुए सब सुकृत अनुभव करता है और मूर्खताके सबब अभिमानी होकर सफेद वस्त्र परिधान चर्मवस्त्र धारण, सदा नीचे स्थानमें शयन, मेढ़ककी भांति शयन करना, वीरासनसे बैठना, चीर धारण, सूने स्थानमें शयन और निवास, इष्टक पत्थर, कण्टक पत्थर, भस्म पत्थर, भूमि, शय्यातल, वीरस्थान, जल, कीचड़ और फलक आदि विविध शय्यापर शयन करना फलकी वासनासे मूंजकी करधनी पहननी और वस्त्रोंकी त्याग करना बाघके चमड़े, पट्टवास भुर्जत्वच और कण्टक वस्त्रोंको धारण करना, पाटसूत्रके वस्त्र, चीर वसन और दूसरे अनेक प्रकारके वस्त्रोंको पहनना विचित्र रत्न धारण करना, अनेक प्रकार भोजन, एक रात्रिके अनन्तर भोजन, एककालिक भोजन, दिनके चौथे, छठवें और आठवें समयमें भोजन षष्ठाह, सप्ताह, अष्टाह, दशाह और द्वादशाहके अनन्तर भोजन, एक मास उपवास, फल, मूल, वायु, जल, तिलकल्क दही, गोमय, गोमूत्र, शाक फूल, शैवाल, आमद्रव्य, सूखे पत्ते और गिरे हुए फलोंका भक्षण, सिद्धिकी कामनासे विविध कृच्छ्र अनेक प्रकारके व्रत, चिन्ह और विधि पूर्वक चान्द्रायण सेवन, चतुराश्रम विहित और अविहितमार्ग पाखण्डके विविधमार्ग पाशुपत अर्थात् पशुपति सम्मत पञ्चरात्र आदिमें कहे हुए दीक्षायोग विविक्त शिलाच्छाया झरने, निर्ज्जन वन पुलिन, पुण्यजनक देवस्थान, तालाव, पहाड़ गहके समान गुफा, गूढ़ जापके मन्त्र विविध व्रत, अनेक प्रकारके नियम तपस्या, अनेक तरहके यज्ञ, विधि, वाणिज्य और ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र, इन चारों वर्णोंके व्यवसायका अवलम्बन तथा दीन अन्धे और कृपण पुरुषोंको अनेक प्रकारके धनदान आदि सब कार्य्योंको किया करता है। वह अक्षर आत्मा इस ही भांति प्रकृतिके संयोगसे शरीर धारण करके मूर्खताके कारण सत रज और तम, इन तीनों गुण तथा धर्म्म, अर्थ और काम, ये त्रिवर्ग "मुझमें विद्यमान हैं"—ऐसा समझके अभिमान करता है।

हे राजन्! स्वधाकार, वषट्कार, स्वाहाकार, नमस्कार, याजन, अध्यापन, दान, प्रतिग्रह यजन, अध्ययन, जन्म, मृत्यु और विवाद तथा युद्धमें जो कुछ शुभाशुभ कार्य्य हैं, इन सबको ही पण्डित लोग क्रियापथ कहा करते हैं, क्रीड़ाभिलाषिणी प्रकृति सृष्टि और संहार करती है, जैसे सूर्य्य दिनके प्रारम्भमें अपनी किरणोंको फैलाकर दिनके शेषमें उन्हें समेटकर अकेला ही निवास करता है, वैसे ही आत्मा सृष्टिके समयमें सत्वादि गुणोंका विस्तार करके प्रलयकालमें उन्हें अपनेमें लीनकर अकेलाही निवास किया करता है। यह त्रिगुणाधिपति आत्मा इस ही भांति बार बार कल्पित अवस्था, वर्ण, कार्य्य और सत्वादि अनेक प्रकारके हृदयप्रिय ऐसे गुणोंके क्रीड़ार्थ जानता है और कर्म्ममार्गमें अनुरक्त होकर सर्ग तथा प्रलयधर्म्मिणी इस प्रकृतिको विकृत करते हुए त्रिगुणात्मक कार्य्योंको सिद्ध किया करता है। वह कर्म्ममार्गमें प्रवृत्त होकर सब लोगोंको "यह कर्म्मका गुण है, यह फल है और इसे अवश्य करना चाहिये" ऐसा ही ज्ञान प्रदान करता है। हे विभो! प्रकृतिने इस समस्त जगत्को रज और तमोगुणके जरिये आच्छादन करती हुई अन्धीकृत कर रखा है, इस ही निमित्त सुख दुःखरूपी वे सब द्वन्द्व सदा आवर्त्तित हुआ करते हैं, हे नराधिप! इन द्वन्द्वोंको अपना समझनेसे ये इस लोक वा परलोक सर्व्वत्र ही जीवका पीड़ा किया करते हैं; इसलिये जीवको इन द्वन्द्वोंसे निस्तार पानेका उपाय सब प्रकारसे करनी उचित है। क्यों कि मूर्खतासे आत्मा ऐसा समझती है, कि मैं देवलोकगामी होकर इन्द्र वा सब सुकृत भोग करूंगा और इस लोकमें भी शुभाशुभ कर्म्मोंको भोगूंगा। इस लोकमें सदा

सुखका उपाय सुकृत कर्म्मोंको करना चाहिये, क्यों कि इसी एक बार कर सकनेसे जन्म जन्म जीवन पर्य्यन्त मुझे सुख होगा और यदि मैं इस लोकमें दुष्कृत कर्म्म करूंगा, तो मुझे अनन्तदुःख भोग करना होगा। मनुष्यता महादुःखका कारण है; मनुष्य ही नरकमें डूबता है। और कालक्रमसे नरकसे भी मनुष्यत्व प्राप्त होती है। मनुष्यत्वसे देवत्व, देवत्वसे फिर मनुष्यत्व और मनुष्यत्वसे पर्य्यायक्रमसे नरकमें जाना पड़ता है। जो निरात्मा अथवा चेतनत्व आदि आत्म गुणोंसे परिवृत होकर सदा ऐसा ही जानते हैं वे देव, मनुष्य और नरलोकमें जन्म ग्रहण करते हैं। जीव सदा ममतासे आवृत होकर अनन्तसृष्टिकालमें उस ममतायुक्त शरीरसे भ्रमण किया करता है। जो शुभाशुभ फलात्मक ऐसा कर्म्म करते हैं, वे त्रिलोकमें शरीरी होकर इस ही भांति फल पाते हैं। जो प्रकृतिके शुभाशुभ फलजनक कर्म्म करते हैं, वे तीनों लोकमें इच्छानुसार गमन करके उन सब कर्म्मोंको ग्रास करते हैं। इसलिये तिर्य्यगयोनि देवयोनि और मनुष्ययोनि इन तीनों स्थानोंको प्राकृत जानना चाहिये। सांख्य लोग कहते हैं कि प्रकृति अलिङ्ग अर्थात् अनुमेय है; जैसे महदादि कार्य्योंसे प्रकृतिका अनुमान होता है, वैसेही आभास चैतन्यके जरिये पौरुष लिङ्ग अर्थात् पुरुष अनुनामक देहादिके अनुगत चैतन्यका अनुमान हुआ करता है। निर्व्विकार प्रकृतिसाधक वह पुरुष कर्म्मके अनुसार लिङ्गान्तर अर्थात् पुर्य्यष्टक गर्भ लाभ करके व्रणहार इन्द्रियवर्गोंमें अधिष्ठान करते हुए इस स्थूल शरीरका अभिमान करता है और इस स्थूल शरीरमें श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रिय तथा वाक् आदि सब कर्म्मेन्द्रिय निज निज गुणोंके सहित गुणोंमें प्रवृत्त हुआ करती है। पुरुष इन्द्रियरहित और व्रणशून्य होके भी "मैं इन कार्य्योंको किया करता हूं, ये इन्द्रियें मेरी हैं और मैं व्रणवान हूं"—ऐसा ही ज्ञान किया करता है। वह मूढ़ता निबन्धनसे अलिङ्ग होनेपर भी लिङ्ग अर्थात् पुर्य्यष्टक, अमर होनेपर भी आत्माको मरणधर्म्मी बुद्धिसे पृथक् होके भी आत्माको बुद्धिमान् अतत्व अर्थात् अवस्तु देह आदिको आत्मतत्व, किसीका हन्ता न होनेपर भी आत्माको हन्ता अचर होके आत्माको चलनेवाला अचेत्र होके आत्माको चेत्र असर्ग होके आत्माको सर्ग अतपी होके आत्माको तपस्वी अगति अर्थात् गतागतिसे रहित होके आत्माकी गति, संसार रहित होके आत्माका संसारी अभय होके आत्माको भययुक्त और अचर होके आत्माको चर,—ऐसाही ज्ञान किया करता है।

३०२ अध्याय समाप्त।

वसिष्ठ बोले, हे राजन्! पुरुष इस ही भांति प्रकृति संसर्गके वशमें निज मूर्खता और मूर्खोंके सेवाकी समाप्तिमें पतनशील कोटिसहस्र सृष्टिलाभ किया करता है और चित्तलाके संयोगसे देव मनुष्य और तिर्य्यगयोनिमें भी मरणशील अनेक स्थान लाभ करता है। इस ही भांति पुरुष प्रकृतिके संयोगसे मूढ़ होकर चन्द्रमाकी भांति फिर उन सहस्र भूतयोनियोंको प्राप्त किया करता है, चिदाभासके सहित मूल प्रकृति, दशों इन्द्रिय और अन्तःकरण चतुष्टय ये पन्द्रह कलायोनि हैं, सोम अर्थात् चिदात्मा षोड़श कला है; यह निश्चय जाने कि वे ही योनिभूत पञ्चदश कला और सोमरूप चिदात्मा षोड़श कलाकी प्रभा नित्य प्रकाशित हुआ करती है। अविद्यावलसे पुरुष बुद्धिहीन होकर योनिभूत उन पन्द्रहों कलामें बार बार निरन्तर जन्म ग्रहण करता है। अनन्तर दूसरे समस्त भूत उस जायमान पुरुषके धाम अर्थात् आनन्द रूप षोड़श कलाको अव-

लम्बन करके फिर जन्म किया करते हैं, परन्तु अत्यन्त सूक्ष्म उस षोड़श कलाको सोम अर्थात् चिदात्मरूपसे जानना चाहिये, चिदात्मा इन्द्रियोंसे रक्षित नहीं है, परन्तु वही सत्ता और स्फूर्त्ति प्रदान करके इन्द्रियोंको पालन किया करता है।

हे नृपसत्तम! षोड़श कला प्राणियोंके उत्पत्तिका कारण है, उसके बिना प्राणिसमूह किसी प्रकार भी जन्म ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं होते; क्यों कि वह सोलहवीं कला ही प्राणियोंके सृष्टिकार्य्यकी प्रकृति रूप वर्णित हुई है। इस ही लिये पण्डित लोग कहते हैं, कि कार्य्यरूपी प्रकृतिके नष्ट होनेसे ही मुक्ति हुआ करती है। जो लोग उस सोलहवीं कला अर्थात् अव्यक्तसंज्ञक प्राकृत देहमें ममता करते हैं। वे लोग उस पचीसवें महात्मा पुरुष विमल विशुद्ध चिन्मय परब्रह्म स्वरूपको न जानकर उस ही देहमें बारबार भ्रमण किया करते हैं कदाचित मुक्ति लाभ करनेमें समर्थ नहीं होते। क्रमसे वे शुद्ध और अशुद्ध लोगोंकी सेवा करके पवित्र तथा अपवित्र हुआ करते हैं।

हे राजन्! वे असङ्ग शुद्धात्मा होके "यह शरीर मेरा है"—ऐसा समझनेसे अशुद्ध होते हैं, ज्ञानवान होके मूर्खोंकी सेवा करनेसे मूर्खता प्राप्त हुआ करती है। और प्रतिकूल ज्ञान रहित होके भी त्रिगुणात्मिका प्रकृतिकी परिचर्य्याके अनुसार त्रिगुणान्वित हुआ करते हैं।

३०४ अध्याय समाप्त।

जनक बोले, हे भगवन्! जैसे लोकसमाजमें स्त्री और पुरुषोंका सम्बन्ध दृष्ट है, शास्त्रमें अक्षर और क्षर अर्थात् प्रकृति पुरुषका सम्बन्ध भी उस ही भांति कहा गया है, और जैसे इस लोकमें बिना पुरुषके स्त्री गर्भ धारण नहीं कर सकती, वैसे ही पुरुष भी स्त्रीके बिना आकृति तयार करनेमें समर्थ नहीं होता। इस लिये सब योनियोंमें ही परस्परके सम्बन्ध वा परस्परके गुण संश्रयाधीन हैं, इस ही भांति सब रूप निवर्त्तित हुआ करते हैं। परन्तु रतिके निमित्त ऋतु कालमें स्त्रीपुरुष दोनोंके सम्बन्ध और गुणसंश्रयसे जैसा रूप उत्पन्न होता है, उसका दृष्टान्त कहता हूं। हे द्विजश्रेष्ठ! पिता-मातामें जो सब गुण विद्यमान हैं, वे सभी विभाग क्रमसे सन्तानमें उत्पन्न हुआ करते हैं। क्यों कि वेद और शास्त्रोंमें वर्णित है, कि अस्थि, स्नायु, मज्जा, तीनों मातासे उत्पन्न होते हैं, इसे मैं जानता हूं और इसलिये इसे अवश्य ही प्रमाणिक समझना होगा। क्यों कि वेद और शास्त्रोंमें जो प्रमाणरूपसे पठित होता है, वह और वेद वा शास्त्र ये दोनों ही सनातन प्रमान हैं। पुरुष प्रकृतिके जड़ता गुणको रोध करके दुःख अवलम्बन करता है, और प्रकृति पुरुषके आनन्द आदि गुणोंको रोध करके चैतन्यता अवलम्बन करती है। इस ही भांति प्रकृति और पुरुष परस्पर गुणरोध और गुणसंश्रय करते हुए नित्य मिलित हुए हैं। हे भगवन्! इसलिये मैं देखता हूं, कि इसमें मोक्ष धर्म्म किसी प्रकार विद्यमान नहीं रह सकता। यद्यपि दूसरा कोई मोक्ष विषयक निदर्शन हो, तो उसे यथार्थ रीतिसे मुझसे कहिये; आप सदा ही प्रत्यक्षदर्शी हैं, आपको कुछ भी अविदित नहीं है। हम मोक्षगामी हैं, इससे जो अनामय, अदेह, अजर, अतीन्द्रिय ईश्वरसे भी अतिरिक्त और नित्य है, हम उसहीको आकांक्षा करते हैं।

वशिष्ठ बोले, हे नरराज! आपने जो यह वेद और शास्त्रके प्रमाण कहे और मन ही मन जैसी धारणा की है, वह ठीक ऐसी ही है; आपने वेद और शास्त्र दोनों ग्रन्थोंमें अभ्यास किया है, परन्तु उसमेंसे यथार्थ अर्थको ग्रहण न कर सके, जो लोग वेद और शास्त्रोंके

अभ्यासमें अनुरक्त होकर उनके मर्म्मको यथावत् ग्रहण नहीं कर सकते, उनका ग्रन्थ-अभ्यास निष्फल है। जो लोग ग्रन्थके अर्थको नहीं जान सकते, वे केवल ग्रन्थका बोझ ढोया करते हैं, जो उनके अर्थको यथार्थ रीतिसे जान सकते हैं, उनका अभ्यास निष्फल नहीं होता, वैसे अर्थवित् पुरुषोंसे यदि कोई ग्रन्थका अर्थ पूछे, तो जिस प्रकार जिज्ञासु पुरुष समझ सके, वैसे ही उसे अवश्य उपदेश देना योग्य है। जो स्थूलबुद्धि पण्डित सभामें ग्रन्थका अर्थ नहीं कह सकता, वह मन्दबुद्धि किस प्रकार निश्चय करके ग्रन्थकी व्याख्या करेगा। जब कि आत्मज्ञानी लोग भी यथार्थ रूपसे ग्रन्थके मतकी व्याख्या करते हुए उपहासको प्राप्त होते हैं, तब अज्ञानी लोग जो हास्य स्पद होंगे उसमें सन्देह ही क्या है। हे राजेन्द्र! इसलिये सांख्य योग और महात्म ये जिस प्रकार आत्मज्ञानियोंमें यथार्थ रूपसे दीखते हैं, उसे सुनो। योगी लोग अनुभव करते हैं, सांख्य लोग उसहीका अनुगमन किया करते हैं; इसलिये जो लोग योग और सांख्य दोनोंको ही एक जानते हैं, वेही बुद्धिमान हैं। हे तात! त्वक्, मांस, रुधिर, मेद, पित्त, मज्जा, स्नायु और इन्द्रियां स्त्री पुरुषसे उत्पन्न होती हैं स्त्री-पुरुषकी भांति प्रकृति पुरुषसे शरीर सम्पादित होता है, यह जो वचन पहिले मुझसे कहे थे, वह युक्तियुक्त नहीं है; क्यों कि द्रव्यसे द्रव्य, इन्द्रिय देहसे देह और बीजसे बीज उत्पन्न हुआ करते हैं। निरिन्द्रिय बीजशक्ति शून्य, निर्द्रव्य, अदेही निर्गुण महात्मा पुरुषसे किस प्रकार सब गुण उत्पन्न होंगे। समस्त गुण गुणसे ही उत्पन्न होते हैं, और उस हीमें निविष्ट हुआ करते हैं; इसलिये सब गुण प्रकृतिसे उत्पन्न होके उसहीमें लीन होते हैं। त्वचा, मांस, रुधिर, मेद, पित्त, मज्जा, हड्डी और स्नायु, ये आठों शुक्रके जरिये प्रकृतिसे उत्पन्न होती हैं, इसलिये इन सबको प्राकृतिक जानना चाहिये। पुमान जीव, अपुमान पञ्चविषयादि और प्रमाण, प्रमेय तथा प्रमाता ये लिङ्गत्रय प्राकृत हैं। विशुद्ध चिन्मात्र लिङ्गी प्राकृत पुमान् वा अपुमान् कुछ भी नहीं है। जैसे सब ऋतु फल और पुष्पके जरिये सदा मूर्त्तिमान रूपसे मालूम होती है, वैसे ही प्रकृति अलिङ्ग पुरुष पुरुषको प्राप्त होकर आत्मज लिङ्ग महदादि कार्य्योंके जरिये अनुभूत हुआ करती है। इस ही भांति अलिङ्ग पुरुष भी अनुमानसे अनुभूत होता है। हे तात! पचीस तत्व लिङ्गके बीच नियतात्मा, उत्पत्ति विनाशसे रहित, अनन्त सर्व्वदर्शी निरामय पुरुष केवल देहादि गुणोंके अध्यासके कारण गुण रूपसे वर्णित हुआ है। जो गुणवान हैं, उन्हींमें संयोग आदि गुण विद्यमान रहते हैं, निर्गुण आत्मामें किसी प्रकार उक्त गुण विद्यमान नहीं रह सकते; इसलिये गुणदर्शी लोग ही उसे विशेष रूपसे जान सकते हैं, जब कोई पुरुष प्राकृतकाल आदि गुणोंको जय करे, तब वह देहादिमें आत्मभावरूप भ्रम परित्याग करके परम पुरुषका दर्शन करनेमें समर्थ होगा। सांख्य और योगी लोग जिसे बुद्धिसे अतिरिक्त, अबुद्ध जड़ अहङ्कार आदिके परित्यागसे बुध्यमान, महाप्राज्ञ, अप्रबुद्ध अर्थात् अज्ञान गुणातीत, गुणसम्बन्धरहित अन्तर्य्यामी, नित्य, सर्व्व-कार्य्योंके नियन्ता, प्रकृति और महदादि गुणोंकी अपेक्षा पचीसवीं कहके निर्द्देश करते हैं, सांख्य और योगमार्गमें कुशल पण्डित लोग ही उसे जान सकते हैं वाल्य आदि अवस्था और जन्मभयसे भीरु ज्ञानवान् पुरुष जब प्रमाता जीवको यथार्थ रूपसे जान सकेंगे, तब उनके जीव ज्ञानके समकालमें ब्रह्मज्ञान उदय होगा। हे अरिदमन! ज्ञानवान पुरुष जीव और ईश्वरके अभेद ज्ञानको शास्त्रसम्मत सम्यक वा पृथक् कहा करते हैं और अज्ञानी लोग जीव ईश्वरके अभेद ज्ञानको अशास्त्र, असम्यक् तथा

पृथक् कहा करते हैं, चर और अचर अर्थात् जीव ब्रह्मका निदर्शन परस्पर इस ही भांति कहा गया है, परन्तु पण्डित लोग एक मात्र अविनाशी पुरुषको अचर और अनेक रूप विनाशीको चर कहा करते हैं। जब पुरुष रज्जु सर्पकी भांति भ्रमात्मक पञ्चविंशति तत्वकी सब भांतिसे आलोचना करनेमें प्रवृत्त होता है, तब वह षड़्विंश आत्माका दर्शन करते हुए आत्माके एकत्व शास्त्रसम्मत और नानात्व अशास्त्र, इसे विशेष रूपसे जानता है, तत्वजनित और निस्तत्व अजन्य दोनोंका निदर्शन पृथक् है, परन्तु मनीषी लोग पञ्चविंशति सर्गको तत्व कहके निर्द्देश करते हैं, पञ्चविंशके अतिरिक्त षड़्विंश निस्तत्व है, और पञ्चविंशात्मक सर्गके प्रत्येक पांच पांच वर्ग विषयक जो ज्ञान है वही सत्य है।

३०५ अध्याय समाप्त।

जनक बोले, हे ऋषिसत्तम! आपने अनित्य चर और नित्य अचरके अनेकत्व और एकत्वरूप जो दो दृष्टान्त प्रदर्शित किये, उनमेंसे एकत्वमें बन्ध और मोक्ष विषयक व्यवस्थाकी अनुपपत्ति तथा अनेकत्वमें आत्मनाशका प्रसङ्ग;—इस प्रकारके संशयमें दोनों पक्षमें अवलोकन करता हूं। हे अनघ! मैं स्थूलबुद्धिके कारण मूर्ख और ज्ञानवान् पुरुषोंसे बध्यमान जीवात्माका तत्व निश्चय रूपसे नहीं जान सकता हूं; और आपने जो चर तथा अचर अनेकत्व एकत्वरूप कारण निर्द्देश किया है, बुद्धिकी अस्थिरता निबन्धनसे उसे भी मैं निश्चय करनेमें समर्थ नहीं होता हूं। हे भगवन्! इसलिये पहिले कहे हुए नानात्व, एकत्व बुद्धज्ञाता, अप्रतिबुद्ध, प्रधानादि, बुध्यमान जीव नित्य अचर, अनित्य चर वस्तुतत्व-विवेक सांख्य, चित्तवृत्ति निरोधयोग, पृथक् भेद और अपृथक् अभेद, इन सबको फिर यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं।

वसिष्ठ बोले, हे महाराज! आपने जिन विषयोंको पूछा है, मैं उनका यथार्थ वृत्तान्त तुमसे विशेष करके कहूंगा; अब आप मेरे समीप पृथक् रूपसे योगकृत्य सुनिये। योगीयोंको योग अवश्य करना योग्य है, योगरूप ध्यान ही उनका परमबल है; विद्यावित् पुरुष उस ध्यानको चित्तकी एकाग्रता और प्राणायाम भेदसे दो प्रकारका कहा करते हैं। उनमेंसे प्राणायाम सगुण विषयमें और चित्तकी एकाग्रता निर्गुण विषयमें कही गई है। हे नरनाथ! भोजन, मूत्र और मलत्याग, इन तीनों कालके अतिरिक्त पुरुष आलसरहित होके सब समयमें ही योगका अनुष्ठान करे, बुद्धिमान मनुष्य शब्द आदि विषयोंसे अन्तःकरणके सहित इन्द्रियोंको निवृत्त करते हुए पवित्र होकर परमात्मतत्व जाननेके निमित्त नासिका पुटमें वायुको आकर्षण करके अंगूठेसे सिर पर्य्यन्त सब शरीर वायुके जरिये परिपूर्ण करके धीरे धीरे ब्रह्मारन्ध्रसे मस्तकमें, मस्तकसे भौंके बीच, भ्रूमध्यसे नेत्रमें; नेत्रसे नासामूलमें, नासामूलसे जिह्वामें, जिह्वासे कण्ठ कूपमें, कण्ठकूपसे हृदयमें, हृदयसे नाभिस्थलमें, नाभिस्थलसे पीठ, पीठसे फिर हृदय, हृदयसे गुह्य, गुह्यसे उरुमूल, उरुमूलसे दोनों जानु, जानुसे चितिमूलमें, चितिमूलसे जङ्घामें, जङ्घासे गुल्फ और गुल्फसे पैरके अंगूठेमें वायुका आकर्षण तथा ध्यान धारणा समाधि और प्रकृति पुरुषका भेद ज्ञान, इन बाईस प्रकारके प्राणायामके जरिये मनीषी लोग जिसको सर्व्व शरीरमें स्थित और अजर कहा करते हैं, उस चौबीस तत्वके अतिरिक्त जीवको बाईस प्रकार प्रेरण करे। हे राजन्! मैंने ऐसा सुना है, कि उस बाईसों प्रकारके प्रेरणसे ही आत्माको सदा जाना जासकता है और यह निश्चय है, कि जिसका चित्त काम आदिके जरिये कभी आहत नहीं हुआ है, उन्हें ही यह योगरूप व्रत अनुष्ठेय है, ऐसे लोगोंके अतिरिक्त दूसरोंका

अनुष्ठेय नहीं है। योगाचारी पुरुष अल्पाहारी जितेन्द्रिय और सब प्रकारकी आसक्तिसे मुक्त होकर रात्रिके प्रथम और शेष भागमें आत्मामें मन संयुक्त करें।

हे मिथिलेश्वर! जो लोग मनके जरिये इन्द्रिय-वर्गोंको स्थिरीकृत करके बुद्धिके सहारे चित्त स्थिर करते हुए पत्थरकी भांति निश्चल स्थाणु-प्राय अकम्प और पहाड़की भांति अविचल होसकें, विधि वा विधानवित् पण्डित लोग उन्हें ही योगी कहा करते हैं और जो लोग समाधि समयमें सुनना, सूंघना, चखना देखना और छूना आदि विषय ज्ञान तथा अन्य विषयक मनन वा अभिमान रहित काष्ठके समान किसी विषयका बोध नहीं करते, मनीषी लोग उन्हें विशुद्ध स्वभावसे युक्त योगी कहा करते हैं। जैसे निर्व्वात स्थानमें जलता हुआ दीपक ऊर्द्ध अध और तिर्य्यग् गतिसे रहित होकर अविचलित रूपसे प्रकाशित होता है, वैसेही समाधिस्थ पुरुष समाधि समयमें बुद्धि आदि अन्तःकरण धर्म्मसे सहित होकर निश्चल भावसे प्रकाशित होता है। हे तात! जिस परमात्माके साक्षात्कार होनेसे हृदयस्थ अन्तरात्माका 'अहं ब्रह्म' यह ज्ञान ज्ञेय और ज्ञाता, ये तीनों मेरे समान पुरुषोंके जरिये अभिहित नहीं होते, समाधि समयमें समाधिस्थ पुरुष उस परमात्माको देख सकते हैं; उस समयमें धूमरहित अग्नि, रश्मिवान् सूर्य्य और आकाशस्थ वैद्युत अग्निकी भांति आत्मा योगियोंके हृदयमें प्रकाशित हुआ करती है, जिस समय महात्मा धृतिमान मनीषी वेदज्ञ ब्राह्मण लोग उस अयोनि अमृत स्वरूप परब्रह्मका दर्शन करते हैं, तब वे उसे सूक्ष्म महत्तर, सर्व्व भूतोंमें विद्यमान और सबके अगोचर ऐसा ही बचन कहा करते हैं। हे तात! ज्ञानरूप द्रविणयुक्त मनुष्य मनोमय दीपकके जरिये महान् तमोगुणके पारमें स्थित ईश्वरातिरिक्त भूरादि भुवनके कर्त्ता उस परमात्माका दर्शन करते हैं। सर्व्वज्ञ वेदपारग ब्राह्मण लोग इस ही प्रकार कहा करते हैं, कि उस निर्म्मल तमसे रहित वाक्य मनके अगोचर निरुपाधि ब्रह्मका बोध होनेपर मनुष्य संसार-पाशको छिदन करता है। हे राजन्! मैंने जो कहा, इसे ही योग कहते हैं, इसके अतिरिक्त योगका और कुछ भी लक्षण नहीं है। इस योगबलसे ही महात्मा योगी लोग सर्व्वदर्शी अजर परमात्माका दर्शन किया करते हैं। हे तात! मैंने तुम्हारे समीप यहां पर्य्यन्त योग-ज्ञानको यथावत् वर्णन किया; परन्तु जिसके जरिये सब भ्रम दूर होके परमात्म दर्शन होता है; उस सांख्य ज्ञानको फिर तुम्हारे समीप कहता हूं सुनो।

हे राजसत्तम! मैंने सुना है, कि प्रकृतिवादी आत्मदर्शी सांख्य लोग पहली प्रकृतिको अव्यक्त कहते हैं और उसहीसे दूसरी महत्, महत्से तृतीय अहङ्कार और अहङ्कारसे सूक्ष्म तन्मात्रकी उत्पत्ति होती है,—ऐसा ही कहा करते हैं। अव्यक्तसे पञ्चतन्मात्र पर्य्यन्त इन आठोंको प्रकृति और अन्तःकरणके सहित एकादश इन्द्रिय तथा पञ्च स्थूलभूत, इन सोलहोंको बिकार कहते हैं। इनमेंसे विषयादि पञ्चभूत विशेष रूपसे और शेष ग्यारहों निज निज विषयोंके प्रकाशक होनेसे इन्द्रिय रूपसे वर्णित हुए हैं। सदा सांख्य मार्गमें रत मनीषी विधि विधानवित् पण्डितोंने सांख्यके बीच चौबीस तत्वोंका यहांतक ही विचार किया है। हे नृपसत्तम! जो वस्तु जिससे उत्पन्न होती है, वह उसहीमें लीन हुआ करती है। सृष्टि कालमें सब प्राणि अन्तरात्मासे अनुलोम क्रमसे उत्पन्न होकर प्रतिलोममें लीन होते हैं। इस ही प्रकार सब गुण समुद्रसे उत्पन्न हुई लहरकी भांति सदा गुणसे ही उत्पन्न होके उसीमें लीन हुआ करते हैं। हे राजेन्द्र! सर्ग प्रलय केवल एक ही नहीं है, प्रकृति आदिकी उत्पत्ति और प्रलय हुआ करती

है। प्रलयकालमें पुरुषका एकत्व और सृष्टि कालमें उसका अनेकत्व होता है; ज्ञानवान् पण्डित लोग ऐसा ही जानते हैं। अव्यक्त प्रकृति ही इस एकत्व और अनेकत्वका निदर्शन है, इसलिये जो लोग प्रकृतिके अर्थको यथार्थ रीतिसे जानते हैं, वे ही एकत्व और अनेकत्वके कारणको समझ सकते हैं।

हे राजेन्द्र! चिदात्मा प्रसवात्मिका प्रकृतिको अनेक प्रकार विभक्त किया करता है वह प्रकृति ही चेत्ररूपसे वर्णित हुई है, महात्मा पञ्चविंशति तमपुरुष उसमें ही अधिष्ठान करता है, इसीसे योगी लोग पुरुषको अधिष्ठाता कहा करते हैं। मैंने ऐसा सुना है, कि क्षेत्रोंके अधिष्ठान निबन्धनसे पुरुष अधिष्ठाता होता है और वह अव्यक्त प्रकृतिको क्षेत्र जानता है, इस ही सबबसे क्षेत्रज्ञ रूपसे वर्णित हुआ करता है; शास्त्रमें ऐसा कहा है, कि जब पुरुष प्रकृतिक पुर्य्यष्टक क्षेत्रमें प्रविष्ट होता है, तब क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ, ये दोनों पृथक् रूपसे कहे जाते हैं। अव्यक्त क्षेत्र है, पञ्चविंशतितम पुरुष ज्ञाता है, इसलिये ज्ञान और ज्ञेय परस्पर पृथक् हैं। इनमेंसे अव्यक्तज्ञान और पचीसवां पुरुष ज्ञेयरूपसे वर्णित हुआ है। शास्त्र अव्यक्तको क्षेत्र, सत्त्व, अर्थात् बुद्धि वा ईश्वर कहा करता है। हे राजन्! सांख्य दर्शन इतना ही है। इस दर्शनके अनुसार सांख्य लोग स्थूल सूक्ष्म क्रमसे चिदात्मामें जो जगत्प्रपञ्च लीन होता है, उसे देखते हैं और प्रकृतिको जगत्का कारण कहते हैं। तथा वे लोग प्रकृतिके सहित चौबीसों तत्वोंकी यथावत् गिनती करके पचीसवें पुरुषको निस्तत्त्व कहा करते हैं। पचीसवां बुध्यमान जीव अप्रबुद्ध प्रकृतिको परित्याग करके आत्मदर्शन कर सकनेसे वह केवल शुद्ध चैतन्यरूपसे निवास करता है।

हे राजन्! मैं तुम्हारे समीप यहां पर्य्यन्त सम्यक्दर्शन यथावत् वर्णन किया, लोग इसे विशेषरूपसे जाननेसे ही अवश्य ही ब्रह्मत्व लाभ करते हैं। परब्रह्मके साक्षात्कारको ही सम्यक् दर्शन कहते हैं; इसहीमें सर्पको भांति अब्रह्मदर्शन भ्रान्तिदर्शन है, वह सम्यक् दर्शन नहीं है; जैसे निर्गुण पुरुषसे विभिन्नमहदादि व्यवहारिक प्रथाके अनुसार इसके निबन्धन प्रत्यक्षरूपसे गिना जाता है, वैसे ही निर्गुण पुरुषका भी दर्शन हुआ करता है। इस ही भांति आत्मदर्शी विदेहसुत पुरुषोंको पुनरावृत्ति निवारित होती है और सदेहसुत पुरुषके अक्षरत्व निबन्धनसे सत्य काम और सत्यसङ्कल्प आदि ऐश्वर्य्य समाधिकालका निरुपाधिक सुख और अव्यय भाव हुआ करता है। हे अरिदमन! जो लोग एक मात्र परमात्मदर्शनके अतिरिक्त अनेक वस्तुओंका दर्शन करते हैं, वे पूर्णदर्शी नहीं हो सकते; बल्कि वे बार बार जन्म लेके इस लोकमें शरीर धारण किया करते हैं; और जो लोग अर्थके सहित इन वाक्योंको विशेष रूपसे जानेंगे, वे लोग सर्व्वज्ञताके कारण शरीरके वशवर्त्ती न होंगे। हे राजन्! अव्यक्त सर्व्व और पचीसवां पुरुष असर्व्वरूपसे कहा गया है, इसलिये जो लोग इस असर्व्व पचीसवें पुरुषको सब भांतिसे जान सकते हैं, उन्हें फिर संसारके दुःखोंको नहीं भोगना पड़ता।

३०६ अध्याय समाप्त।

वसिष्ठ बोले, हे नृपसत्तम! मैंने आपके समीप यहांतक ही सांख्यदर्शन वर्णन किया अब फिर विद्या और अविद्याके विषयको विस्तारपूर्व्वक कहता हूं सुनो। पण्डित लोग सर्ग और प्रलय धर्म्मयुक्त अव्यक्तको अविद्या तथा सर्ग वा प्रलयधर्म्मरहित पचीसवें पुरुषको विद्या कहा करते हैं। हे तात! ऋषियोंने सोखर शास्त्रको सम्यक् निदर्शनस्वरूप परस्परको विद्या जिस

प्रकार वर्णन की है, उसे तुम्हारे समीप विस्तारके सहित कहता हूं, सुनो। कर्म्मेन्द्रियोंकी विद्या बुद्धीन्द्रिय है बुद्धीन्द्रियकी विद्या विशेष अर्थात् विषयादि पञ्चस्थूलभूत विशेषकी विद्या मन, मनकी विद्या पञ्चमहाभूत, पञ्चभूतकी विद्या अहंकार, अहंकारकी विद्या बुद्धि अर्थात् महत्तत्व महदादि सब तत्वोंकी विद्या है, अव्यक्त परमेश्वरी प्रकृति है. ये विद्या सब पुरुषोंकी ज्ञेय है; इसलिये इनमें परम विधि वर्णित हुई है: अव्यक्तकी परम विद्या पचीसवां पुरुष है। हे राजन्! सर्व्व ज्ञानका ज्ञेय सर्व्व अव्यक्त कहा गया है और अव्यक्त ज्ञान, पचीसवां पुरुष ज्ञेय तथा अव्यक्त ज्ञान पञ्चविंशति तम पुरुष ज्ञाता है, यह पहले कहा गया है। हे राजन्! मैंने विद्या और अविद्याकी यथार्थ रीतिसे तुम्हारे समीप वर्णन किया; परन्तु पहले जो क्षर और अक्षर कहके वर्णित हुआ है, उसे विशेष रीतिसे कहता हूं, सुनो। अनादि निबन्धनसे प्रकृति और जीव दोनों ही अक्षर रूपसे कहे गये हैं, और भूतोंके सहित विज्ञानघन आत्माका भी नाश होता है, इस श्रुतिके सबब प्रकृति तथा जीव दोनों ही क्षर रूपसे वर्णित हुए हैं। परन्तु मुझे जैसा ज्ञान है, उसके अनुसार मैं इनका कारण यथार्थ रूपसे कहता हूं। ब्रह्मदर्शी ब्राह्मण लोग इस प्रकृति और जीव दोनोंको ही अनादि निबन्धन ईश्वर और तत्व कहके व्याख्या करते हैं और सर्ग वा प्रलय धर्म्मके कारण महदादि गुणोंकी सृष्टिका निमित्त बार बार विकृत इस अव्यक्तको अक्षर कहा करते हैं। और परस्पर अधिष्ठानके हेतु पचीसवां चिदाभास जीव वा महदादि गुणोंकी उत्पत्ति स्थान कहके इसे क्षेत्र कहा करते हैं, इसलिये जीवको भी अक्षर कहना पड़ेगा। हे तात! जब योगी लोग अव्यक्त आत्मा अर्थात् शुद्ध चैतन्य स्वरूप परब्रह्ममें गुणोंको लीन करते हैं, तब उन गुणोंके सहित पचीसवां पुरुष भी लीन होनेपर उस समय जैसे केवल एकमात्र प्रकृति ही विद्यमान रहती है, वैसे ही पचीसवां क्षेत्रज्ञ पुरुष भी निज उत्पत्ति स्थान छब्बीसवें परब्रह्ममें लीन होनेपर उस समय एकमात्र ब्रह्म ही विद्यमान रहता है। हे विदेहराज! जब पचीसवां क्षेत्रज्ञ पुरुष निर्गुण परब्रह्मको प्राप्त होता है, तब महदादि गुणोंसे युक्त अव्यक्त प्रकृति और देहाश्रित प्रत्येक श्रोत्र आदि गुणोंमें अविद्यमानताके कारण क्षरत्वको प्राप्त हुआ करता है। इस ही भांति क्षेत्रज्ञ भी क्षरत्वको प्राप्त हुआ करता है। परन्तु मैंने ऐसा सुना है, कि यह क्षेत्रज्ञ पुरुष क्षेत्रज्ञान अर्थात् प्रकृति ज्ञानसे रहित होनेसे ही स्वभाविक निर्गुण होता है। हे राजन्! यह क्षेत्रज्ञ स्वभावसे क्षर होनेपर भी निर्व्विकल्प समाधिके समयमें जब गुणवती प्रकृतिको अपनेसे पृथक् बोध करता है, तब अपना निर्गुणत्व जान सकता है। और जब क्षेत्रज्ञ ज्ञानवान होकर "मैं अन्य हूं, प्रकृति मुझसे भिन्न है" ऐसा समझता है, तब प्रकृति परित्याग करनेसे वह केवल शुद्ध रूपसे स्थिति करता है। हे राजेन्द्र! प्रकृति परित्यक्त होनेसेही यह क्षेत्रज्ञ पञ्चविंशतितम रूप संज्ञा वा मिश्रभाव परित्याग करता है, क्यों कि क्षेत्रज्ञ प्रकृतिके सहित मिश्रित हुआ रहता है। परन्तु जब क्षेत्रज्ञ प्राकृत गुणोंको घृणास्पद बोध करता है, तब वह परब्रह्मका दर्शन करके फिर उसे परित्याग करना नहीं चाहता। बल्कि उस समय उसके अन्तःकरणमें इस प्रकार ज्ञान उदय होता है, कि मैंने क्या किया। जैसे मछली अज्ञानके कारण जालकी अनुवर्त्ती होती है, वैसे ही मैं इस लोकमें इस कालरूप प्राकृत शरीरका अनुवर्त्ती होता हूं। जैसे मछली जलको अपना जीवन समझके एक तालावसे दूसरे तालावमें जाती है। वैसे ही मैं भी मोह-

वशसे एक देह छोड़के देहान्तरका अनुवर्त्ती होता हूं, और जैसे मछली मूर्खताके कारण अपनेको जलसे अलग नहीं समझती, वैसे ही मैं भी अज्ञानके वशमें होकर पुत्र आदिकी आत्मासे पृथक् नहीं समझता हूं। इसलिये मैं अज्ञ हूं, मुझे धिक्कार है। क्यों कि मैं मोहके सबब इस विपदग्रस्त शरीरका बार बार अनुवर्त्ती होता हूं। मैं चाहे कोई क्यों न हूं, इस संसारमें यही मेरा सखा है, इसके सङ्ग हमारी योग्यता है, इसके सङ्ग मैंने समता और एकता लाभ की है, और इसके साथ मैं अपनी समानता देखता हूं ये निष्कपट हैं, मैं इस प्रकार हूं; क्यों कि अज्ञानतासे मैं इस जड़-स्वभाव प्रकृतिके सहित प्रवृत्त हुआ हूं। मैं आसक्ति रहित होके भी ससङ्ग प्रकृतिके सहित इस कालरूप देहमें निवास करता हूं, और इस प्रकृतिके वशमें होके यह जो काल स्वरूप शरीर है, उसे नहीं जान सकता। उत्तम देवता, मध्यम मनुष्य और अधम तिर्य्यग् रूपसे विकृत प्रकृतिमें मैं किस प्रकार निवास करूं, यह इसी प्रकार है, अब इसके सङ्ग मेरा सहवास होनेसे मैं कभी आत्माको न जान सकूंगा। इसलिये वञ्चना पूर्व्वक इस कालरूप प्रकृतिका सहवास त्याग करना ही उचित बोध होता है। मैं जो निर्विकार होके भी विकार स्वरूप प्रकृतिसे वञ्चित हुआ हूं, उसमें उसका कुछ अपराध नहीं है, अपना ही सारा अपराध स्वीकार करना होगा। जब मैं मूर्खताके सबब बाह्यविषयोंको भोग करनेकी अभिलाषासे इस प्रकृतिमें आसक्त हुआ हूं, तब अमूर्त्य होनेसे भी उस ही योनिमें वर्त्तमान रहनेसे मेरा चित्त ममतासे आकृष्ट होनेपर हमारा कितना अनिष्ट हुआ है, वह अवक्तव्य है। जो हो, अब इस प्रकृतिसे मेरा कुछ प्रयोजन नहीं है; क्यों कि यह प्रकृति अहंकारके जरिये आत्माके सर्व्वज्ञत्व आदि सब गुणोंको आवरण करती हुई अनेक शरीरमें विभक्त करके बार बार मुझे संसारमें नियुक्त करती है। जो ममता सदा अहंकारके जरिये हमारे बुद्ध्यादि धर्म्मोंका आवरण करती है, वह इसी प्रकृतिमें ही विद्यमान रहे, मैं जो ममतारहित और अहंकारशून्य हूं, उसे इस समय जान लिया है। इसलिये मैं प्रकृतिको परित्याग करके निरामय निर्द्वन्द्व परमात्माका आश्रय करूंगा। इस परमात्माका आसरा करनेसे अवश्य ही मेरा मङ्गल होगा; इसलिये इसके सङ्ग समता लाभ करूंगा। कदापि जड़-स्वभाववाली प्रकृतिके सङ्ग संसर्ग न करूंगा। जब पचीसवां पुरुष इस ही प्रकार अनामय परमात्माको समझ सकेगा; तब परमात्म बोधके सबब क्षरको परित्याग करके अक्षरत्व लाभ करेगा। हे मैथिल! अव्यक्त और व्यक्त धर्म्मयुक्त सगुण तथा निर्गुण है, उसमेंसे जो लोग अव्यक्तका भी आदि भूत निर्गुण परब्रह्ममें दर्शन कर सकते हैं, वेही ब्रह्मत्व लाभ करते हैं। हे राजन्! क्षर और अक्षरके वेदविहित अनुभवयुक्त ज्ञानसे पूरित सूक्ष्म सन्देहरहित निर्दोष, इस निदर्शनको मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया; फिर यथाश्रुत वही विषय तुमसे फिर कहता हूं, सुनो। दोनों शास्त्रोंके अनुभवके अनुसार सांख्य और योग दोनों ही मेरे जरिये कहे गये हैं; परन्तु जो शास्त्र सांख्योक्त है, उसे ही निश्चय योगदर्शन जानो। हे पृथ्वीपाल! मैंने शिष्योंके हितकामनासे उनके समीप इस प्रबोधक सांख्यज्ञानको विशिष्ट रूपसे प्रकाशित किया है। बुद्धिमान पण्डित लोग इस शास्त्रको वृहत् और शीघ्र फल देनेवाला कहते हैं; इसलिये योगी लोग वेद और शास्त्रका अत्यन्त ही समादर करते हैं। हे नरनाथ! सांख्य लोगोंने सांख्य शास्त्रमें पञ्चविंशति तत्वके अतिरिक्त तत्व स्वीकार नहीं किया है; उन लोगोंका जो परम तत्व है, उसे ही यथावत् वर्णन किया है। सांख्य लोग

कहते हैं, कि लोग मूर्खतासे नित्य प्रबुद्ध परमात्मा और जीवके एकत्व खरूपको न जानकर दोनोंमें भेद कल्पना किया करते हैं; परन्तु यथार्थमें योगसे जीव ब्रह्मकी एकता मालूम हुआ करती है।

२०७ अध्याय समाप्त।

वसिष्ठ बोले, हे राजन्! अनन्तर बुद्ध परमात्मा वा सत्व आदि गुणोंकी विधिकर्त्ता अबुद्ध जीवका विषय कहता हूं, सुनो। परमात्मा मायाके सहारे अपनेको विश्व, तैजस, प्राज्ञ, विराट्, सूत्रात्मा और अन्तर्य्यामी रूपसे अनेक भागमें विभक्त करके उन सब रूपोंको यथार्थ कहके बोध करता है। उस समय बुध्यमान जीव "मैं कर्त्ता, मैं भोक्ता हूं" इस ही प्रकार अभिमानके अनुसार सत्वादि गुणोंकी धारणा करते हुए खष्ठादिके कर्तृत्वरूपसे विकृत होकर बुद्ध परब्रह्मको यथार्थरूपसे नहीं जान सकता।

हे प्रजानाथ! इस लोकमें क्रीड़ाके निमित्त जीव बारम्बार विकृत हुआ करता है और कार्य्यके सहित अज्ञान अर्थात् यह घट है, मैं आपको नहीं जानता, "इस ही भांति अविद्या कार्य्य घट आदि और आत्माश्रित अज्ञानका अनुभव करता है, इसहीसे लोग उसे बुध्यमान कहके निर्द्देश करते हैं। हे तात! अव्यक्त अचेतन होनेसे कौन वस्तु सगुण है, कौन निर्गुण है, उसे किसी प्रकार भी जाननेमें समर्थ नहीं होता, इस ही लिये लोग उसे अप्रतिबुद्ध कहा करते हैं। वेदमें ऐसा प्रसिद्ध है, कि अव्यक्त प्रकृति, यद्यपि पञ्चविंश बुद्धमान जीव ससङ्ग होनेसे उसे जान सकता है। तथापि असङ्ग परमात्माको नहीं जान सकता। पुरुषके अस्फुट अधिकारी होनेपर भी ससङ्गत्व निबन्धनसे लोग उसे मूढ़ कहा करते हैं; और महात्मा पचीसवां पुरुष कार्य्यके सहित अज्ञान अर्थात् यह घट है, मैं आपको नहीं जानता" इस ही प्रकार अविद्याकार्य्य घट आदि और आत्माश्रित अज्ञानका अनुभव करता है, इसहीसे लोग उसे बुध्यमान कहा करते हैं। उस ही निमित्त परमात्माको नहीं जान सकता, परन्तु केवल चैतन्यखरूप निर्म्मल बुद्ध अप्रमेय सनातन छब्बीसवां परमात्मा सदा चतुर्विंश अव्यक्त और पचीसवें पुरुषको जाननेमें समर्थ है। हे तात! जो लोग दृश्य और अदृश्य अर्थात् कार्य्य तथा कारण रूप स्थूल सूक्ष्म समस्त पदार्थोंमें सदा खरूपसे अनुगत रहते हैं, वे केवल सत्भावसे ही षड्विंश शब्दसे कहे गये हैं; इस ही लिये मनीषी लोग इस सजीव शरीरस्थ उस षड्विंशको अव्यक्त ब्रह्म कहके बोध करते हैं। जब बुध्यमान जीव अपनेको "मैं अन्य हूं" ऐसा जानता है, तब केवल सत्खरूप षड्विंश, पचीसवां पुरुष और चतुर्विंश अव्यक्त प्रकृतिको प्रत्यक्ष करके उसे पराजय करनेमें समर्थ होता है, तब उसकी सर्व्वश्रेष्ठ विशुद्ध ब्रह्मविषयिणी बुद्धि उदय हुआ करती है।

हे राजशार्दूल! उस ब्रह्मविषयक विद्याका उदय होने पर षड्विंश धर्मबुद्धत्व लाभ करके सर्ग और प्रलयधर्म्मवाली प्रकृतिको परित्याग किया करता है। जो निर्गुण होके सगुण अचेतन प्रकृतिको जान सकते हैं, वे षड्विंश होते हैं; इसलिये अव्यक्त प्रकृतिका साक्षात्कार होनेसे ही जीव षड्विंश हुआ करता है। पण्डित लोग ऐसा कहा करते हैं, कि जीव तीनों उपाधिसे मुक्त होकर षड्विंशके सहित मिलित होनेपर अजर, अमर, अनारोपित, नित्य अपरोक्ष परमात्माको पाता है। हे मानद! षड्विंश परमात्मा प्रत्यक्ष परि दृश्यमान शरीर आदि तत्वोंका आश्रय होनेपर भी तत्वरूपसे न माना जायगा; क्यों कि मनीषी लोग पञ्चविंश पर्य्यन्त ही तत्व कहा करते हैं। हे तात!

कार्य्य और कारण रूप उपाधि रहित ज्ञान-स्वरूप परब्रह्म कार्य्यभूत महदादि तत्वोंमें कदापि विद्यमान नहीं रह सकता; क्यों कि यह निज तत्व बुध्यत्व लक्षण "मैं ब्रह्म हूं" ऐसी वृत्ति भी परित्याग किया करता है। जीवकी अन्तःकरणकी वृत्ति सदा षड़्विंश आकारमें परिणत होने पर वह अजर और अमर होकर बलपूर्व्वक निश्चयही षड़्विंशके सङ्ग समता लाभ करता है। जीव प्रबोध स्वरूप षड़्विंश परब्रह्मके जरिये प्रबोधित होके भी अज्ञान वशसे उस परब्रह्मको न जान सकनेसे उस ही अज्ञानके अनुसार अनेकत्व अर्थात् प्रपञ्चकी उत्पत्ति होती है यह सांख्य और वेदमें वर्णित हुआ है। और जब ज्वरात्मक जीव चैतन्यतायुक्त होकर अपनेको "अहं" इस रूपसे नहीं बोध करता, उस ही समय उसका एकत्व हुआ करता है। हे मिथिलाधिपति नरेन्द्र! सुखादि संसर्ग अहंकाराभिमानी जीव जब ज्ञानके अगोचर उस षड़्विंशके सहित समता लाभ करता है, तभी वह निःसङ्ग होता है। परन्तु जब जीव अज निःसङ्ग सर्व्वव्यापी षड़्विंशको प्राप्त होकर विशेष रूपसे उसे जान सकता है, तभी वह अव्यक्त प्रकृतिको परित्याग किया करता है। इस ही प्रकार जब षड़्विंशका बोध होता है, तब उसे चौबीस तत्व असार मालूम होते हैं। हे पाप रहित! वेदविहित अनुभवके अनुसार मैंने तुम्हारे समीप अप्रतिबुद्ध, क्षर बध्यमान और अक्षर बुद्ध ईश्वर विषयका यथावत वर्णन किया; परन्तु इस ही भांति शास्त्रके अनुसार अनेकत्व और एकत्वका विवरण अनुभव करो। जैसे उडुम्बरके सहित मशक और जलके संग मछलीकी परस्पर विभिन्नता मालूम होती है, वैसेही प्रकृतिके संग पुरुषका पार्थक्य, अनेकत्व और एकत्व मालूम करो। परन्तु सांख्य शास्त्रमें ऐसा कहा है, कि प्रकृतिको अपनेसे पृथक् जाननेसे ही उसकी मुक्ति और उसही समयमें एकत्व व्यवहृत होती है नहीं तो उसकी सदा नानात्व व्यवहृत हुआ करती है। कवि लोग कहते हैं, कि इस पञ्चविंश पुरुषके शरीरमें जो षड़्विंश परब्रह्म विद्यमान है, अव्यक्त ज्ञान और अज्ञानके विषय महदादिकोंसे उसे विमुक्त करना होगा, और ऐसा निश्चय है, कि अज्ञान नष्ट होनेसे ही षड़्विंश परमात्मा मुक्त होता है, नहीं तो उसके मुक्ति लाभकी सम्भावना नहीं है। हे पुरुष श्रेष्ठ! यह चिदात्मा जीव इस लोकमें क्षेत्रके सहित एकीभूत होकर क्षेत्र-धर्म्मा होता है, और शुद्ध बुद्ध परमात्माके सहित मिलित होनेसे विशुद्ध धर्म्मा, मुक्तके संग संयुक्त होनेसे विमुक्त धर्म्मा वियोग धर्म्माके सहित मिलनेसे विमुक्तात्मा विमोक्षि संसर्गसे विमोक्ष शुचिकर्म्मा सहवाससे शुचि, विमलात्मके सहित एकत्रित होनेसे विमल आत्मा केवल सम्मिलित होकर केवलात्मा स्वतन्त्र संयोगसे स्वतन्त्र होके स्वतन्त्रता लाभ किया करता है।

हे महाराज! मैंने तुम्हारे समीप इस यथार्थ तत्वको यथावत वर्णन किया है, आप मत्सरता रहित होके विशुद्ध आद्य सनातन परब्रह्म स्वरूप यह अर्थ परिग्रह करिये। हे राजन्! इस वेदमार्गमें श्रद्धाहीन प्राणियोंके प्रणत होनेसे उन्हें प्रबोधित करने और तत्वरत प्याससे लोगोंको आप ज्ञानका कारण परम तत्व प्रदान करिये, परन्तु अनृतात्मा, शठ, कायर, कुटिलबुद्धि, पाण्डित्याभिमानी और दूसरेको पीड़ित करनेवाले पुरुषोंको यह कदापि प्रदान न करिये। परन्तु जैसे पुरुषोंको इसका उपदेश देना चाहिये, उसे विशेष करके कहता हूं, सुनो। हे नरेन्द्र! जो लोग श्रद्धावान्, गुणवान्, सदा परापवादसे विरत, विशुद्ध, योगरत, पण्डित, क्रियावान्, क्षमाशाली, लोक हितैषी, पुण्यशील, विधिप्रिय, विवाद रहित, विज्ञ, हितकारी पुरुषोंके विषयमें क्षमावान्,

शम और दम गुणमें आसक्त हैं ; उन्हें ही यह शुद्ध परम तत्व प्रदान करो। जो लोग ऐसे गुणोंसे हीन हों, उन्हें यह तत्व दान न करे। क्यों कि पण्डित लोग कहा करते हैं, कि जो लोग निर्गुण अपात्रको यह परम तत्त्व दान करते हैं, वे कभी भी कल्याण लाभ करनेमें समर्थ नहीं होते। हे राजेन्द्र! इसलिये यदि कोई व्रतहीन मनुष्य आपको यह रत्नपूरित पृथ्वी प्रदान करे, तोभी उसे यह दान न करना, जितेन्द्रिय पुरुषोंको ही दान करना। हे महाराज कराल! आज जो तुमने मेरे समीप इस उत्पत्ति स्थितिरहित शोकशून्य परम पवित्र अक्षर परब्रह्मका विषय सुना है, उसमें तुम्हें और कुछ भी भय नहीं है। आप तत्त्वज्ञानको विशेष रूपसे जानके जन्म-मरणसे रहित, निरामय, भयहीन, कल्याणकर, अपरिलोप उस परब्रह्मका दर्शन करके मोह और विषयको परित्याग करिये। हे नराधिप! जैसे आज तुमने मुझे परितुष्ट करके मेरे निकट यह सनातन ब्रह्मज्ञान लाभ किया है, वैसे ही मैंने अत्यन्त यत्नके सहित उस उग्रचेता हिरण्यगर्भ सनातन ब्रह्माको प्रसन्न करके उनके समीप यह ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया था। हे राजेन्द्र! जैसे आज आपने मोक्षवित् पुरुषोंके परमपद इस महत् ज्ञानके विषयमें प्रश्न करके मुझसे जाना है, उस ही भांति मैंने उस हिरण्यगर्भ ब्रह्मसे इसे पूंछके उनके समीप इसे पाया है।

भीष्म बोले, हे पाण्डुपुत्र महाराज! पञ्चविंश जीवको जिससे पुनरावृत्ति निवारित होती है, ऋषिश्रेष्ठ वशिष्ठ मुनिके वचन अनुसार मैंने तुम्हारे समीप उस विषयको वर्णन किया। हे राजन्! बुध्यमान जीव अजर अमर अक्षर परब्रह्मके तत्त्वको यथावत् जानकर परमज्ञान प्राप्त कर सकनेसे फिर जन्म ग्रहण नहीं करता। हे तात! देवऋषि नारदके समीप मैंने इस निःश्रेयस परम ज्ञानको जिस प्रकार सुना था, उसे ज्योंका त्यों तुम्हारे निकट कहा। महात्मा वसिष्ठने पहले यह सनातन ब्रह्मज्ञान हिरण्यगर्भ ब्रह्मासे पाया, उसके अनन्तर ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठसे देवर्षि नारद और नारदसे मैंने पाके तुमसे कहा। हे कौरवेन्द्र! तुम इसे सुनकर अब शोक मत करो। हे राजन्! जो लोग क्षर और अक्षरको यथार्थ रूपसे जान सकते हैं, उन्हें कहीं भी भय नहीं रहता और जो लोग इसे प्रकृत रूपसे नहीं जान सकते, उन्हें सर्व्वत्र ही भय उपस्थित हुआ करता है। हे भारत! जीव अज्ञाननिबन्धनसे मूढ़ वा बारम्बार दुःखी होकर जीवन नष्ट होनेपर मरणशील सहस्रों जन्म भोग किया करता है। यद्यपि कालक्रमसे शुद्ध होकर उस अज्ञानसागरसे पार होसके, तो धीरे धीरे तिर्य्यगसे मनुष्य और मनुष्यसे सुरलोकमें सुख भोग करनेमें समर्थ होवे। हे राजन्! भयङ्कर अज्ञानसागरकी अगाधता अर्थात् गहराई अव्यक्त प्रकृति है, प्राणि लोग प्रतिदिन उस अव्यक्त रूप अगाध अज्ञानसागरमें डूबते रहते हैं, तुम अव्यक्तरूपी उस अगाध समुद्रसे पार होनेके लिये रज और तमोगुणसे विरत होगे।

३०८ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, वसुमान नाम किसी एक जनक पुत्रने मृगयाके निमित्त निर्जन बनमें घूमते घूमते ब्राह्मणोंमें मुख्य भृगुपुत्र ऋषिको देखा, अनन्तर वसुमानने उस बैठे हुए मुनिको सिर झुकाकर प्रणाम किया और उनकी आज्ञासे वहां बैठके उनसे यह प्रश्न किया। हे भगवन्! अनित्य देहमें वासनाविशिष्ट पुरुषको इस लोक वा परलोकमें कौन कार्य्य कल्याणकारी है, वह मुझसे विस्तारपूर्व्वक कहिये। वह महात्मा महातपस्वी भृगुनन्दन जनकपुत्र वसुमानसे इस प्रकार सत्कृत और जिज्ञासित होकर उससे कल्याणदायक यह वचन कहने लगे।

ऋषिने कहा, हे जनकपुत्र ! तुम जितेन्द्रिय होके इस लोक वा परलोकमें मनके अनुकूल कार्य्योंको करो और प्राणियोंके विरोधी कार्य्योंसे निवृत्त रहो। हे तात ! साधु पुरुषोंका धर्म्म हितकारी है, धर्म्म ही उनका अवलम्ब है, और धर्म्मसे ही चराचर तीनों लोक उत्पन्न हुए हैं। हे मधुर रसके अभिलाषी ! तुम्हें किस कामनामें तृष्णा नहीं होती। हे दुष्ट-बुद्धि ! तू केवल मधु देखता है, मधुके पतनका पीछा करके नहीं देखता है। ज्ञान फलार्थी मनुष्य जैसे ज्ञानका परिचय करते हैं, धर्म्मफलकी इच्छा करनेवाले पुरुष भी उसी भांति धर्म्मकी जांच करें। धर्म्मकाम दुष्ट लोगोंसे पवित्र कर्म्मका होना अत्यन्त कठिन है ; परन्तु कर्म्मकाम साधु पुरुषोंके लिये दुष्कर कर्म्म भी सरल हुआ करता है। साधु लोग बनमें रहके भी ग्रामीण लोगोंकी भांति ग्राम सुख भोगकर सकते हैं और गांवमें भी रहके बनवासियोंकी भांति बनसुख भोगनेमें समर्थ होते हैं। हे जनकपुत्र ! तुम प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्गके दोष और गुणको विचारके स्थिर होकर शारीरिक, वाचनिक तथा मानसिक धर्म्ममें श्रद्धा करो। हे राजन् ! तुम नित्य बहुतसा दान करना, साधुओंकी निन्दा न करना और देश कालके अनुसार व्रत तथा पवित्रताके सहारे सत्कृत प्रार्थना करना। शुभ विधिसे जो कुछ प्राप्त होता है, वही प्रकृत फल सिद्ध किया करता है। तुम क्रोधरहित होके पात्र विशेषको दान करना, दान करके कदापि पछतावा अथवा उसकी प्रशंसा न करना, जो ब्राह्मण वेदज्ञ, अनृशंस, पवित्र, दान्त, सत्यवादी, सरलता, युक्त शुद्धयोनिमें उत्पन्न हुए और पवित्र कर्म्म करनेवाले हैं, वेही पात्र हैं ; सत्कृत अनन्य-पूर्व्वा पत्नी ही पुत्रोत्पत्तिकी स्थान है, इसलिये वही इस स्थलमें योनि कहके अभिहित हुई है और ऋक्, यजु तथा साम, इन तीनों वेदोंके जाननेवाले षटकर्म्म शाली ब्राह्मण ही पात्रस्वरूपसे वर्णित हुए हैं। देशकालके अनुसार पात्र और कर्म्मविशेषमें उन्हीं लोगोंके विषयमें धर्म्म तथा अधर्म्म हुआ करता है। जैसे पुरुष खेल समाप्त होने पर धीरे धीरे शरीरसे सब धूलि धोता है, वैसे ही शरीरसे सब पापोंको बहुत यत्नके सहित दूर करे। जैसे पुरुषके विचारके अनुसार घृतका पीना औषधकी तरह हितकारी होता है, वैसे ही दान आदिके जरिये निष्पाप पुरुषका धर्म्म परलोकमें सुखकर हुआ करता है। चित्त शुभ और अशुभरूपसे सब प्राणियोंमें ही विद्यमान रहता है, पुरुष सदा पापसे चित्तको आकर्षित करके शुभकार्य्यमें संयोजित करे। सब कोई सर्व्वदा अपने अपने कार्य्योंकी ही प्रशंसा किया करते हैं ; इसलिये जिस प्रकार तुम्हारा धर्म्ममें अनुराग रहे, सदा प्राणपणसे उसकी ही चेष्टा करना। हे दुष्टात्मन् ! तुम धीरज धारण करो। हे दुर्बुद्धे ! तुम बुद्धिमान् बनो, तुम बहुत ही अपशान्त और अज्ञ हो ; इसलिये प्रशान्त होकर ज्ञानीकी भांति आचरण करो। ऐश्वर्य्यशाली पुरुष निज तेजबलसे जिस ऐहिक और पारलौकिक मङ्गलका उपाय प्राप्त करते हैं, उस मङ्गलका मूल ही परम धैर्य्य है। राजर्षि महाभिष उस धैर्य्यसे रहित होनेसे स्वर्गसे पतित हुए थे और ययातिने पुण्यक्षीण होके भी धैर्य्यबलसे स्वर्गलोक पाया। हे राजन् ! इसलिये तुम धीरज अवलम्बन करके तपस्वी धर्म्मशील पण्डितोंकी सेवा करनेसे अवश्य ही विपुल बुद्धि और अभिलषित कल्याण लाभ करोगे।

भीष्म बोले, हे राजन् ! नत स्वभावयुक्त जनकपुत्र वसुमानने उस भृगुपुत्र मुनिका ऐसा वचन सुनके अन्तःकरणकी वृत्तियोंको काम आदिसे निवृत्त करते हुए धर्म्ममार्गमें बुद्धि प्रवर्त्तित की थी।

३०९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, जो धर्म्माधर्म्म सब तरहके संशय, जन्म, मृत्यु, पुण्य, पापसे बिमुक्त और मङ्गल स्वरूप सर्व्वदा भय-रहित अविनाशी, अक्षर, अव्यय, स्वभावसे ही निर्दोष तथा सदा आयासरहित है, उसे ही आपको वर्णन करना उचित है।

भीष्म बोले, हे भारत! देवराजके पुत्र प्रशस्तिप्रवर महायशस्वी महाराज जनकने ऋषिश्रेष्ठ याज्ञवल्क्यसे जो बिषय पूछा था, उस जनकके सम्वादयुक्त याज्ञवल्क्यके प्राचीन इतिहासको तुम्हारे समीप कहता हूं।

जनक बोले, हे बिप्रर्षि! मैं आपके अनुग्रहका अत्यन्त अभिलाषी हूं, इसलिये इन्द्रिय संख्या, प्रकृतिका परिमाण और अव्यक्त क्या है; अव्यक्तसे पृथक् निर्गुण परब्रह्म क्या है? इन सबकी उत्पत्ति, नाश और कालकी संख्या कहिये। हे बिप्रेन्द्र! मैं अज्ञ हूं, आप ज्ञानमय रत्नस्वरूप हैं, इसलिये मैं आपके निकट इन सब बिषयोंको निःसंशय रूपसे सुननेके निमित्त प्रश्न करता हूं।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे पृथ्वीपाल! सांख्य और योगमें जो सब ज्ञान बिहित हैं, उनमेंसे कुछ भी आपको अबिदित नहीं है, तौभी जब आप मुझसे पूछते हैं, तब इस बिषयकी तुमसे मैं अवश्य कहूंगा, क्यों कि जब कोई किसीसे कुछ पूछे, तब उससे वह बिषय यथार्थ रीतिसे कहना चाहिये, यह ऋषियोंका सनातन धर्म्म है; इसलिये आपने जो पूछा है, उसे बिशेष करके कहता हूं सुनो। अध्यात्मबिचारवाले सांख्य लोग अव्यक्त, महान्, अहङ्कार, पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और अग्नि, इन आठोंको प्रकृति तथा कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, वाक्, हाथ, पांव, गुदा और मेढ़ इन सबको बिकार कहते हैं और महत् आदि सात पदार्थको व्यक्त कहा करते हैं। हे राजेन्द्र! पञ्च महाभूतोंके बीच शब्द आदि दश पदार्थ बिशेष नामसे बिख्यात हैं। कान आदि पांचो बुद्धीन्द्रिय सबिशेष कहके वर्णित हुई है। हे मैथिल! तुम और अध्यात्म गतिके बिचारनेवाले दूसरे पण्डित लोग मनको षोडश बिकार कहा करते हैं। हे राजन्! भूतचिन्तक सांख्य लोग अव्यक्तसे उत्पन्न हुए महान् आत्माको प्रथम सर्ग और प्रधान कहते हैं, तथा महत्से उत्पन्न हुए अहङ्कारको बुध्यात्मक द्वितीयसर्ग अहङ्कारसे उत्पन्न भूत गुणात्मक मनको अहङ्कारिक तृतीय सर्ग, मनसे उत्पन्न पञ्च महाभूतोंको मानसिक चतुर्थ सर्ग, शब्दादि पञ्चकको भौतिक पञ्चमसर्ग कान आदि पांच इन्द्रियोंको बहुचिन्तात्मक मानसिक षष्ठ सर्ग, श्रोत्र आदिसे उत्पन्न वाक् आदि इन्द्रियोंको सप्तम सर्ग, सरल वृत्ति ऊर्द्ध प्रवाहयुक्त प्राण और तिर्य्यग् प्रवाह सम्पन्न समान, उदान, व्यान ये कई एक अष्टम सर्ग और ऋजुवृत्ति अधोप्रवाहयुक्त अपान तथा तिर्य्यग् प्रवाह सम्पन्न समान उदान, व्यान इन्हें नवम सर्ग कहा करते हैं। हे महाराज! वेदबिहित प्रमाणके अनुसार मैंने आपके समीप इन नव प्रकारके सर्गों और चौबीस तत्वोंका यथावत् वर्णन किया; इसके अनन्तर महात्माओंने इन गुण सर्गोंकी जिस प्रकार कालसंख्या निरूपण की है, वह मेरे समीप सुनो।

३१० अध्याय समाप्त।

याज्ञवल्क्य बोले, हे नरश्रेष्ठ! मैं अव्यक्त प्रकृतिका कालसंख्या कहता हूं, उसे आप मेरे समीप सुनिये। हे नरनाथ! अव्यक्त प्रकृतिके दश हजार कल्पमें दिन और इसही परिमाणसे उसकी रात्रि होती है, यह शास्त्रमें वर्णित है। प्रतिबुद्ध परमात्मा सबसे पहले प्राणियोंके जीवन स्वरूप अन्न अर्थात् अन्नमय सूक्ष्म मन उत्पन्न

करता है। फिर हिरण्य अण्डसे समुद्भूत ब्रह्माको उत्पन्न किया करता है। हे राजन्! वह ब्रह्मा ही सब भूतोंकी मूर्त्ति है, मैंने ऐसा ही सुना है। अनन्तर वह महामुनि प्रजापति ब्रह्मा सम्वत्सर पर्य्यन्त अण्डके बीच वास करके फिर वर्षके अनन्तर उस अण्डेसे बाहर होकर पृथ्वी, स्वर्ग और ऊर्द्ध इन सबकी सृष्टि विषयक चिन्ता करने लगे। फिर उस ब्रह्माने पृथ्वी और स्वर्गके बीचमें आकाशकी सृष्टि की। हे राजन्! वेदमें पृथ्वी और स्वर्गका विषय इस ही प्रकार कहा गया है। अध्यात्म चिन्तक वेद वेदाङ्ग जाननेवाले ब्राह्मण लोगोंने साढ़े सात हजार कल्पतक ब्रह्माका दिन और इस ही परिमाणसे रात्रि संख्या निरूपण की हैं। हे राजसत्तम! महान् ऋषि ब्रह्माने महद्भूतोंके उपादान कारण दैवतात्मक अहंकारकी सृष्टि करके, भौतिक देहके सहित उत्पत्ति समयमें बुद्धि, चित्त, मन और अहंकार नाम, इन चार पुत्रोंको उत्पन्न किया; ये पितृ लोग महाभूतोंके पिता हैं, ऐसा ही मैंने सुना है। इसके अतिरिक्त हमने इस भांति सुना है, कि अन्तः-करण चतुष्टयके सहित इन्द्रियां पितृलोक महाभूतोंके पुत्र रूपसे कल्पित हुए और चराचर सब लोक उन्हीं महाभूतोंके सहारे परिपूरित होरहे हैं। हे राजन्! परमेष्ठी ब्रह्माने अहंकार पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि और मन आदि सब इन्द्रियोंको उत्पन्न किया है। अहंकार करनेवाले तृतीय स्वर्गकारी इस अहंकारकी भी पांच हजार कल्प पर्य्यन्त दिनकी संख्या है और इस ही परिमाणसे रात्रिकी संख्या वर्णित हुई है। हे राजेन्द्र! पञ्च महाभूतोंके बीच शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, इन पांचोंके नाम विशेष करके वर्णित हुए हैं। ये शब्द आदि सब विषय सदा प्राणियोंको आविष्ट करते हैं। परस्पर आपसमें हितैषी होकर परस्परकी स्पृहा करते हैं, आपसमें स्पर्द्धावान होकर एक दूसरेको अतिक्रम करते हैं और रूप आदि गुणोंसे परस्पर बध्यमान होकर तिर्य्यग् योनिमें प्रवेश करके इस लोकमें ही घूमा करते हैं। शास्त्रमें इनकी तीन हजार कल्पतक दिनकी संख्या है और इस ही परिमाणसे रात्रिकी संख्या निरूपित हुई है। हे नरनाथ! मनका भी तीन हजार कल्प तक दिनका परिमाण है और तीन हजार कल्पतक रात्रिका परिमाण कहा गया है। हे राजन्! मन ही इन्द्रियोंके जरिये प्रेरित होकर विषयोंको प्रत्यक्ष करता है, मनके बिना इन्द्रियोंको विषयोंके प्रत्यक्ष करनेकी सामर्थ्य नहीं है। देखो नेत्र मनके सहयोगसे ही रूपको देखता है, मनका सहयोग न रहनेसे कदापि नहीं देखता; क्योंकि मन व्याकुल होनेसे रूप आदि विषय नेत्रके सम्मुख होनेपर भी वह उसे ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं होता, जो लोग ऐसा कहा करते हैं, कि इन्द्रियें ही निज निज विषयोंका दर्शन करती हैं, वह वचन अमूलक है; क्योंकि इन्द्रियां कभी भी निज निज विषयोंको दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होतीं, केवल मन ही दर्शन किया करता है। हे राजन्! मनके विरत होनेसे इन्द्रियां उपरत होती हैं और मन ही इन्द्रियोंकी प्रधानता वा प्रभावको वर्द्धित किया करता है, इसहीसे ऐसा कहा गया है, कि मन ही इन्द्रियोंका ईश्वर है। हे महायशस्वी! इस लोकमें सब प्राणी बीस प्रकार कहे गये हैं।

२११ अध्याय समाप्त।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे राजन्! मैंने आपसे इन तत्त्वोंकी सर्ग संख्या और कालसंख्या विस्तारपूर्व्वक कही है, अनन्तर अनादि निधन अक्षर नित्य ब्रह्मा जिस प्रकार सब जीवोंको बार बार उत्पन्न करके संहार करता

है, उसे विस्तारके सहित कहता हूं। हे महीपाल! भगवान् अव्यक्त ब्रह्मा रात्रि समयमें स्वप्न देखके प्राणियोंके दिनका क्षय काल उपस्थित जानके उनके संहारके लिये अहंकाराभिमानी महारुद्रको प्रेरण करते हैं। तिसके अनन्तर वह महारुद्र अव्यक्त ब्रह्माके जरिये प्रेरित होकर प्रज्वलित अग्निके समान द्युतिशाली सौहजार किरणवाले सूर्य्यकी मूर्त्ति धारण कर निज शरीरको बारह हिस्सेमें विभक्त करके अपने तेजसे उसही समय जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज, इन चार प्रकारके प्राणियोंको जलाया करते हैं। हे राजन्! जिस सूर्य्यके प्रकाशप्रभावसे ही कछुवेकी पीठ समान भूमि और स्थाणु जङ्गम आदि सब वस्तु विनष्ट हो जाती है, वह अमितबलशाली सूर्य्य सारे जगत्को जलाकर बलवत्तर अधिक जलसे उस भस्मीभूत सारी पृथ्वीको परिपूरित करता है। हे राजेन्द्र! फिर कालाग्नि उस समस्त जलको सुखाकर स्वयं प्रज्वलित होती रहती है। उसके अनन्तर अत्यन्त बलशाली वायु निज शरीरको आठ भागोंमें बिभक्त करके तिर्य्यग्, उर्द्ध और अधःप्रदेशमें बिचरते हुए प्राणियोंको उत्तापित करनेवाली जलती हुई सातशिख अग्निको भक्षण करता है। फिर क्रमसे वायुको आकाश, आकाशको मन, मनको भूतात्मा प्रजापति अहङ्कार, वर्त्तमान, भूत तथा भविष्यत् महान् अहङ्कारको और अणिमा आदि शक्तियुक्त ज्योतिर्म्मय अव्यय सर्व्वग्राही सर्व्वग, सर्व्वदर्शी सर्व्वशिरा सर्व्वानन सर्व्वस्रोता सर्व्वव्यापक सब भूतोंकी बुद्धिके प्रवर्त्तक अंगुष्ठ परिमित अनन्त महात्मा ईश्वर उस अनुपम महात्मा महान् और संसारको ग्रास किया करता है। अनन्तर इस ही प्रकार सब वस्तु नष्ट होकर अक्षय, अव्यय, अव्रण अनघ, वर्त्तमान, भूत वा भविष्य कालके सृष्टिकर्त्ता उस ब्रह्मरूपमें विद्यमान रहते हैं। हे राजन्! मैंने तुम्हारे समीप यह संहारका विषय यथावत वर्णन किया अब अध्यात्म अधिभूत और अधिदैवका विषय कहता हूं सुनो।

३१२ अध्याय समाप्त।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे राजन्! तत्वदर्शी ब्राह्मण लोग दो पादको अध्यात्म, गन्तव्यको अभिभूत और उसमें विष्णुको अधिदेव कहा करते हैं। तत्वार्थदर्शी पुरुष गुदाको अध्यात्म, बिसर्गको अधिभूत और मित्रको अधिदैव कहते हैं। योगदर्शी लोग उपस्थको अध्यात्म, आनन्दको अधिभूत और प्रजापतिको अधिदैव कहते हैं। सांख्यदर्शी लोग दोनों हाथोंको अध्यात्म, कर्त्तव्यको अधिभुत और उस विषयमें इन्द्रको अधिदैव कहते हैं। योग निदर्शी मनुष्य वाक्यको अध्यात्म, वक्तव्यको अधिभूत और उस विषयमें अग्निको अधिदैव कहते हैं। यथाश्रुति निदर्शी पण्डित लोग नेत्रको अध्यात्म, रूपको अधिभूत और सूर्य्यको अधिदैव कहा करते हैं। वेदविहित अनुभवशाली मनुष्य कानको अध्यात्म, शब्दको अधिभूत और दिशाओंको अधिदैव कहा करते हैं। श्रुतिविहित निदर्शनशाली मनीषि लोग जीभको अध्यात्म, रसको अधिभूत और उसमें जलको अधिदैव कहा करते हैं, श्रुतिविहित निदर्शनशाली पण्डित लोग नासिकाको अध्यात्म गन्धको अधिभूत और पृथ्वीको अधिदैव कहते हैं। तत्त्वबुद्धिवाले ब्राह्मण लोग त्वचाको अध्यात्म स्पर्शको अधिभूत और पवनको अधिदैव कहते हैं। शास्त्र जाननेवाले ब्राह्मण मनको अध्यात्म, मन्तव्यको अधिभूत और चन्द्रमाको अधिदैव कहते हैं। तत्त्व निदर्शनशाली बिद्वान् लोग अहङ्कारको अध्यात्म, अभिमानको अधिभूत और इसमें बुद्धिको अधिदेव कहते हैं। यथार्थदर्शी पण्डित लोग बुद्धिको अध्यात्म, बोधव्यको अधिभूत और क्षेत्रज्ञ जीवको अधिदैव कहा करते हैं। हे तत्त्ववित्

महाराज! सृष्टि, स्थिति और प्रलय, इन तीनों कालमें ही भूत प्रपञ्चके अनुसार उस एकमात्र अद्वितीय ईश्वरकी विभूतिको मैंने तुम्हारे निकट यथार्थ रीतिसे कहा। हे राजन्! प्रकृति इच्छानुसार क्रीड़ाके अनुसार निमित्त आत्म-कामनाके सैकड़ों तथा हजारों तरहसे सबको विकृत कर रखती है। जैसे मर्त्य लोकवासी मनुष्य एक दीपकसे सहस्रों दीपक जलाते हैं, वैसे ही प्रकृति पुरुषके सत, रज और तम, इन तीनों गुणोंको अनेक हिस्सोंमें विकृत किया करती है। सत्त्व, धैर्य, आनन्द, ऐश्वर्य, प्रीति, प्रकाश, सुख, शुद्धता, आरोग्यता, सन्तोष, श्रद्धानता, कृपणता हीनता, असत्य, क्षमा, धृति, अहिंसा, समता, सत्य, आनृण्य, मार्द्दव, लज्जा, चपलता हीनता, पवित्रता, विनीतता, आचार, अचञ्चलता, असम्भ्रचित्तता दूसरेकी की हुई भलाई, बुराई और वियोगकी अविकल्पना, दानके सहारे आत्म ग्रहण, अस्पृहता, परोप-कारिता और सब प्राणियोंमें दया, ये सत्त्वके गुण कहके वर्णित हुए हैं। सङ्घात, रूप, सुन्दरताई, विग्रह, अत्याग, करुणाहीनता, सुखदुःखका सेवन; परापवादमें रति, विवाद सेवन, अहंकार, असत्कारकी चिन्ता, वैरोपसेवा, परि-ताप, पराया धन हरना, लज्जानाश, अनार्ज्जव, भेद, परुषता, काम, क्रोध, मद, दर्प, द्वेष और अतिवाद, ये सब रजोगुण कहके वर्णित हुए हैं और मोह अप्रकाश, तामिस्र, अन्धता-मिस्र, मरण, क्रोध भक्षण आदिमें अभिरुचि, भोजनमें अपर्य्याप्ति, पीनेमें अतृप्ति, विहार शयन और आसनमें गन्धवास आदिका रूप अतिवाद तथा प्रमोदमें रति अज्ञान नृत्यगीत और बाजोंमें श्रद्धानता अथवा धर्मविशेषमें द्वेष प्रकाश, ये सब तामसगुण कहके निर्द्दिष्ट हुए हैं।

३१३ अध्याय समाप्त।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे पुरुषोत्तम! सत, रज और तम ये तीनों प्रधान गुण हैं; ये गुण सदा समस्त जगत्के निमित्त कारण रूपसे निवास करते हैं। षड़ैश्वर्य्य शक्ति युक्त अव्यक्त रूप प्रधान, इन तीन प्रकारके गुणोंसे प्रत्यगात्म परमात्माको सैकड़ों, लाखों और करोड़ों प्रकारसे विभक्त कर रखता है। अध्यात्म विचार करनेवाले पण्डित लोग कहते हैं, कि इस लोकमें सतोगुण अवलम्बन करनेवाले मनुष्य लोग ही उत्तम स्थान, रजोगुणावलम्बी मनुष्य मध्यम स्थान और तमोगुणावलम्बी पुरुष अधम स्थान प्राप्त करते हैं। इस लोकमें जो लोग केवल अधर्म्म रूप पापकार्य्य करते हैं वे लोग अधोगति लाभ किया करते हैं। हे नराधिप! सत्त्व रज और तम, इन तीनों गुणोंके परस्पर मिलन तथा द्वन्द्वको मेरे समीप सुनिये सतोगुणमें रज, रजोगुणमें तम, तमोगुणमें सत और सतोगुणमें समता दीख पड़ती है। अव्यक्त ब्रह्म सत्त्वसे संयुक्त होकर देवलोक, रज और सतसे संयुक्त होकर मनुष्य लोक, रज और तमसे युक्त होके तिर्य्यग्योनि तथा सत्त्व, रज, तम गुण युक्त होके मनुष्यलोक लाभ करता है, और तत्त्वज्ञ पुण्य तथा पापरहित महात्मा लोग शाश्वत अव्यय अक्षय अमृत परमधाम पाते हैं। ज्ञानियोंका जन्म श्रेष्ठ और उनका स्थान अक्षय है, अच्युत, अतिन्द्रिय, निरवयव और जन्म मृत्यु, तथा अन्धकारसे रहित है। हे नरनाथ! आपने मुझसे जो परम धामका विषय पूछा था, वह स्थान अव्यक्त ब्रह्ममें विद्यमान रहता है, मनुष्य लोग उस अव्यक्त ब्रह्मको जान-नेसे ही उस स्थानको सहजमें प्राप्त कर सकते हैं; परन्तु उस ब्रह्मका प्रकृति संसर्ग होनेसे ही लोग उसे प्रकृतिस्थ पुरुष कहा करते हैं। हे राजन्! प्रकृति अचेतन है, परन्तु उस ब्रह्मके अधिष्ठानसे ही वह सृष्टि और संहार किया करती है।

जनक बोले, हे महाबुद्धिमान ऋषिवर! प्रकृति और पुरुष दोनोंही अनादि निधन हैं, अमूर्त्त, अचल, अविचलित दोष-गुणसे युक्त और अप्रत्यक्ष हैं, परन्तु इनमेंसे किस लिये प्रकृति अचेतन और पुरुष सचेतन क्षेत्रज्ञ कहके वर्णित हुआ। हे विप्रेन्द्र आपने समस्त मोक्षधर्म्मकी उपासना की है; इसलिये आपके समीप सम्पूर्ण मोक्षधर्म्म यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं। हे ऋषिसत्तम! हाथमें स्थित आमलककी भांति आपको सब विषय विदित है। इसलिये आप पुरुषके अस्तित्व कैवल्य, भावरहित, देहाश्रित देवता यह सब और व्यग्र विपदग्रस्त जीवोंके स्थान तथा काल क्रमसे वे जिन स्थानोंको लाभ करते हैं, वह स्थान, सांख्य ज्ञान, पृथक् योग और मृत्यु सूचक तत्त्व यह सब बिस्तारपूर्व्वक मुझसे कहिये।

३१४ अध्याय समाप्त।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे तात! निर्गुणको सगुण और सगुणको निर्गुण करना जो महाकठिन दुःसाध्य है, उसे तुम यथार्थ रूपसे मेरे समीप सुनो। तत्वदर्शी महात्मा मुनि लोग ऐसा कहते हैं, कि जिसमें गुणका संसर्ग है वह वस्तु ही गुणवान है; जिसमें गुणका संसर्ग नहीं वह वस्तु गुणवान नहीं है। अव्यक्त प्रधान गुणवान होनेसे सब गुणोंको त्यागनेमें असमर्थ होता है, और स्वभाविक अज्ञ होनेसे सदा वही उन गुणोंको भोग किया करता है। अव्यक्तमें वस्तु ज्ञान न होनेसे वह अज्ञ रूपसे गिना जाता है, परन्तु पुरुष स्वभाविक ही ज्ञानवान है; क्योंकि "मुझसे और कोई भी श्रेष्ठ नहीं है" वह सदा ऐसा ही ज्ञान किया करता है। हे राजन्! इसही कारणसे अव्यक्त अचेतन है, परन्तु चरत्व निबन्धनसे उसमें भोक्तृत्व हुआ करता है। वह अज्ञानसे बार बार आत्माको गुणयुक्त किया करता है, इसलिये जबतक उसे आत्मज्ञान नहीं होता तबतक आत्मा मुक्तिलाभ करनेमें समर्थ नहीं होता, और आत्मा प्रकृत महदादि तत्वोंके कर्त्तृत्व निबन्धनसे सृक्त न हो सकनेसे तत्त्वधर्म्मा कहा जाता है। इस ही प्रकार वह सब स्वर्गोंके कर्त्तृत्व हेतुसे स्वर्ग धर्म्मा, योग कर्त्तृत्व हेतुसे योगधर्म्मा प्रकृति अर्थात् प्रजापुञ्जके कर्त्तृत्व निबन्धनसे प्रकृतिधर्म्मा, बीजके कर्त्तृत्व हेतुसे बीजधर्म्मा और शम दम आदि गुणोंकी सृष्टि तथा प्रलय कर्त्तृत्व हेतुसे गुणधर्म्मा कहके वर्णित होता है, आत्मा मिथ्या अभिमान वशसे सुख दुःख भोग किया करता है परन्तु मैंने ऐसा सुना है, कि अध्यात्मज्ञ अजर सिद्ध यति लोग साक्षित्व, अनन्यत्व वा अभिमानितासे आत्माको केवल अनित्य नित्य अव्यक्त तथा व्यक्त जानते हैं। परन्तु सब प्राणियोंपर दया करनेवाले केवल ज्ञानमें रत निरीश्वरवादी सांख्य लोग अव्यक्तको एकत्व और पुरुषकी नानात्व कहा करते हैं और वे लोग बहुतसे दृष्टान्त दिखाके पुरुष तथा प्रकृतिमें इस प्रकार भेद कहते हैं; कि जैसे मूंजके भीतरकी सींक मूंजसे पृथक् है, गूलर फलके भीतर रहनेवाले मशक गूलरसे अलग है, जलमें रहनेवाली मछलियें जलसे स्वतन्त्र हैं, पत्थरमें रहनेवाली अग्नि पत्थरसे पृथक् है, और जैसे जलमें रहनेवाले कमल जलसे अलग हैं; वैसेही प्रकृतिमें निवास करनेवालेही पुरुषको भी प्रकृतिसे पृथक् जानो। हे राजन्! साधारण पुरुष इस सहबास और नित्य निवासको यथार्थ रीतिसे नहीं जान सकते। जो इसे उलटा समझते हैं, वे सम्यकदर्शी होनेमें समर्थ नहीं होते वरन वे लोग स्पष्ट ही बार बार घोर नरकमें डूबा करते हैं।

हे राजन्! मैंने जो यह परिसंख्या करके अनुत्तम सांख्य दर्शन तुमसे कहा है, सांख्य लोग इस ही प्रकार परिसंख्या करके कैवल्यता

लाभ किया करते हैं। परन्तु जो लोग सांख्यके अतिरिक्त अन्य तत्त्वकी आलोचना करते हैं, उनके लिये यह निदर्शन कहा है, इसके अनन्तर योगानुदर्शन ज्योंका त्यों कहता हूं।

२१५ अध्याय समाप्त।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे नृपसत्तम! मैंने आपसे यथाश्रुत और यथादृष्ट सांख्यज्ञानको ज्योंका त्यों कहा, अनन्तर योगज्ञानको यथार्थ रूपसे कहता हूं, सुनो। सांख्य ज्ञानके समान ज्ञान और योगबलके समान दूसरा बल नहीं है, तथा सांख्य वा योग दोनोंका ही अनुष्ठान एक वा दोनों ही अविनाशी कहके वर्णित हुए हैं। हे राजन्! जो मनुष्य मूढ़ हैं, वेही सांख्य और योगको पृथक् पृथक् समझते हैं, परन्तु निश्चय-हेतुसे मैं दोनोंको एक जानता हूं। योगी लोग योगके सहारे जिसका दर्शन करते हैं, सांख्य लोग भी ज्ञानके जरिये उसका दर्शन किया करते हैं; इसलिये जो लोग सांख्य और योग दोनोंको ही एक रूप जानते हैं, वेही तत्त्ववित् हैं। हे अरिदमन! तुम निश्चय जानो, कि जितने प्रकारके योग हैं, उन सबमें ही प्राण और इन्द्रियोंको अवलम्बन करना पड़ता है, योगी लोग इस ही प्रकार योगका अनुष्ठान करके, उसी योगयुक्त देहसे सर्व्वत्र विचरण किया करते हैं। हे तात! योगियोंका स्थूल शरीर नष्ट होनेपर भी वे शारीरिक सुखको पृथक्‌ष्टक सूक्ष्म शरीरमें स्थापित करके योगबलसे सब लोकोंमें विचरते रहते हैं। हे नृपसत्तम! मनीषी लोगोंने वेदमें अष्टांग योग ही कहे हैं, इसके अतिरिक्त इतर योगके विषय नहीं कहे हैं। परन्तु योगियों सब प्रकारसे योगके बीच शास्त्र सम्मत सगुण और निर्गुण, इन दोनों प्रकारके योगोंको ही उत्तम कहके वर्णन किया है। हे राजन्! प्राण वायुको निग्रह, मनको धारण और चित्तको एकाग्र करनेसे जो प्राणायामरूप दो योग वर्णित हुए हैं, उसमेंसे प्राणायामको सगुण और धारणाको निर्गुण जानो। हे मैथिल! वायुके मोचनस्थान अदृश्य होने पर यदि उस समय प्राणवायु मुक्त हो, तो वायुकी प्रबलता होजाती है; इसलिये उस समय वायु रेचन न करे। रातके प्रथम, मध्य वा शेष भागमें बारह प्रकारसे आत्माका प्रेरण करना होता है; इसलिये जो लोग शान्त, दान्त, सन्न्यासी, आत्माराम और शास्त्रज्ञ हैं, वे अवश्य इसही भांति आत्माको बारह प्रकारसे नियोग करेंगे, और पांचो ज्ञानेन्द्रियोंके शब्दादि दोषोंको निरास करते हुए विक्षेप तथा लयको संहार कर इन्द्रियोंको मनमें निवेश करें। अनन्तर मनको अहंकारमें अहंकारको महतत्त्वमें और महतत्त्वको प्रकृतिमें स्थापित करें। हे राजन्! योगी लोग इस ही प्रकार क्रमसे अन्तःकरण आदिको परस्परमें लीन करके अन्तमें केवल शुद्ध चैतन्य स्वरूप, नित्य, अनन्त, कूटस्थ, अभेद्य, अजर, अमर, शाश्वत, अव्यय और ईशान ब्रह्मका सदा ध्यान किया करते हैं। हे महाराज! जैसे मन्दिरके चिन्हसे प्रसन्न पुरुष तृप्त होकर सुखसे शयन किया करते हैं, वैसे ही समाधिस्थ पुरुषका लक्षण कहता हूं, सुनो। मनीषियोंने समाधिस्थ पुरुषोंका इस प्रकार लक्षण वर्णन किया है, कि जैसे निर्व्वातस्थलमें तेलसे भरा हुआ दीपक निश्चल और ऊर्द्ध्वशिख होकर जलता रहता है, वैसे ही समाधिस्थ पुरुष समाधि समयमें निश्चल भावसे निवास करते हैं। जैसे बक समूह जलकी बूंदसे पत्थरको आहत करके तनिक भी उसे विचलित नहीं कर सकते, वैसे ही समाधियुक्त पुरुषको भी वृष्टि आदिके जरिये कोई समाधिसे अणुमात्र भी सञ्चालित करनेमें समर्थ नहीं होता। ऐसा ही क्यों, पुरुषके समाधि युक्त होने पर शंख,

नगाड़े आदि विविध बाजे और संगीत शब्दसे भी उसकी समाधि भंग नहीं होती; समाधि-युक्त पुरुषका ऐसा ही निदर्शन निर्द्दिष्ट है। और जैसे कोई पुरुष तेलसे भरे पात्रको दोनों हाथसे ग्रहण करके सोपान पर चढ़ते हुए तलवार धारण करनेवाले पुरुषके जरिये तर्ज्जित तथा उसके भयसे भीत होने पर भी संयतचित्त होकर पात्रसे बूंदभर भी नहीं त्यागता, वैसे ही समाधिस्थ पुरुष भी उत्तम मार्गमें गमन करते हुए किसीके जरिये तर्ज्जित वा भय प्रदर्शित होनेपर भी एकाग्र चित्त होकर समाधि परित्याग नहीं करते। जो मुनि इन्द्रियोंके वहिर्मुखाकार वृत्तिको रोकके अन्तःकरणको अचल करके समाधि अवलम्बन करता है, उसहीमें इस प्रकार सब योग लक्षण दीखते हैं। हे राजन्! और ऐसी नित्य श्रुति निरूपित है, कि ऐसे लक्षणोंसे युक्त मनुष्य हो समाधियुक्त होके महतत्त्व और उसमें स्थित अग्नि सदृश अव्यय परब्रह्मका दर्शन करके, उस दर्शनबलसे अचेतन देहको त्याग कर बहुत समयके लिये कैवल्य लाभ किया करता है। हे राजन्! और दूसरा योगका क्या लक्षण कहूंगा, मैंने जो कहा सब प्रकार योगके बीच यह अत्यन्त उत्तम योग है, मनीषिलोग इस योगको विशेषरूपसे जानकर अपनेको कृतकृत्य विवेचना किया करते हैं।

३१६ अध्याय समाप्त।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे राजन्! हठयोग-चारी योगी लोग अन्तकालमें जिन जिन स्थानोंसे प्राणवायु बाहर करके जैसा फल पाते हैं, वह सब आपके समीप वर्णन करता हूं, आप साव-धान होकर सुनिये। मैंने ऐसा सुना है, कि योगी लोग पांवके जरिये प्राणवायु परित्याग करनेसे वसुलोक, जानुके जरिये प्राणत्याग करनेसे साध्य लोक, गुदाके जरिये त्यागनेसे मैत्रलोक, जघनके सहारे प्राण छोड़नेसे पृथ्वी लोक, उरुके जरिये त्याग करनेसे ब्रह्मलोक, पार्श्वसे छोड़नेपर वायुलोक, नासिकासे त्याग करनेसे चन्द्रलोक, बाहुसे त्यागनेपर इन्द्रलोक, वक्षस्थलसे त्यागनेपर रुद्रलोक, ग्रीवाके जरिये परित्याग करनेसे उत्कृष्ट मनुष्य लोक, मुखसे त्यागने पर विश्वदेव लोक, कानसे त्यागनेपर दशदिक् लोक, घ्राणके सहारे त्यागनेसे गन्ध-वह वायु लोक नेत्रसे त्यागनेपर अग्नि लोक, भौंसे त्यागनेपर अश्विदेवलोक, ललाटसे त्यागने पर पितृलोक और सिरके सहारे त्यागनेसे ब्रह्मलोक पाते हैं।

हे मिथिलेश्वर! मैंने क्रमसे इन सब उत्-क्रमण स्थानोंको तुम्हारे समीप वर्णन किया अनन्तर सम्वत्सरके बीच मरण शील देहधा-रियोंके जो मनीषियोंके जरिये विहित अरिष्ट हैं, उसे कहता हूं सुनो। हे पार्थिव! जो पुरुष दृष्टपूर्व्व अरुन्धती और ध्रुवनक्षत्रको न देखे तथा पूर्णचन्द्र और दीपकको दहिने भागमें खण्डाभासरूपसे दर्शन करे, वह सम्वत्सर भर जीवित रहता है। हे राजन्! जो पुरुष दूसरेके नेत्र पुतरीके बीच अपना प्रतिबिम्ब नहीं देखता वह भी सम्वत्सरभर जीवन धारण करता है। अत्यन्त तेजस्वी पुरुषोंकी निस्तेजस्कता, बुद्धि-मानोंकी बुद्धिहीनता और स्वभावका उलटफेर अर्थात् कृपण पुरुषमें दातृत्व-शक्ति, ये सब छः महीनेके भीतर मृत्युके लक्षण हैं। जो लोग देवताओंकी अवज्ञा करें, ब्राह्मणोंसे विरोध करते रहें, जिनकी कान्ति काली तथा कपिश वर्णकी होजाती है, छःमहीनेभरमें उनकी मृत्यु हुआ करती है। जो लोग सूर्य्य और चन्द्रम-ण्डलको उर्णनाभ-चक्रकी भांति छिद्रयुक्त अव-लोकन करें, सात रात्रिके बीच उनकी मृत्यु होती है। जो मनुष्य देवमन्दिरमें रहके गऊकी गन्धको मुर्देकी गन्धकी भांति आघ्राण करे,

सात रात्रिके बीच वह मृत्युभागी होता है। कान और नासिकाकी नम्रता, दांत और दृष्टिकी विरागिता, संज्ञा लोप और विरुष्मत्व ये सदा मृत्युके निदर्शन हैं। हे नरनाथ! जिसके बायें नेत्रसे अकस्मात् आंसू बहे अथवा सिरसे धूआं बाहर हो, उसकी सदा मृत्यु हुआ करती है। बुद्धिमान मनुष्य इन अरिष्टोंको मालूम करके दिन रात आत्माको परमात्मामें संयुक्त करें। जिस समयमें प्रेतत्व होगा, उस समयकी परीक्षा करते हुए यदि योगियोंका मरना इष्ट न हो, तो इस ही क्रियाके अनुष्ठान करनेकी इच्छा करनी उचित है। हे नरनाथ! मनुष्य समस्त गन्ध और सब रसोंको धारण करे, अन्तरात्माके आत्मानिष्ठ होनेपर मनुष्य मृत्युको जय करनेमें समर्थ होता है। हे नरवर! अन्तःकरण आत्मनिष्ठ होनेपर योगी लोग उसहीके जरिये योगसे मृत्युको जय करनेमें समर्थ हुआ करते हैं। जो लोग इस ही प्रकार अनुष्ठान करते हैं, वे अकृतबुद्धि पुरुषोंसे दुष्प्राप्य, अक्षय, पुनरावृत्तिसे रहित, कल्याणकर नित्य अचल लोक पाके वहां ही जाते हैं।

२१७ अध्याय समाप्त।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे नरनाथ! तुमने जो अव्यक्तघटित परम पदार्थका विषय मुझसे पूछा है, अब उस परम गुह्य प्रश्नका उत्तर कहता हूं, सावधान होकर सुनो। हे मिथिलापति! मैं आर्य्यविधिके अनुसार अवनत होकर विचरते हुए जिस प्रकार आदित्यसे समस्त शुक्ल यजुर्व्वेद पाया है उसे सुनो। हे अनघ! मैंने उत्तम महत् तपस्याके जरिये सूर्य्यदेवकी सेवा की, अनन्तर वह मेरी तपस्यासे प्रसन्न होकर बोले, हे विप्रर्षि! तुम्हें जिस अभिलषित दुर्लभ वरकी इच्छा हो, वह मांगो, मैं प्रसन्नचित्त होकर तुम्हें वही दान करूंगा, मेरी प्रसन्नता दूसरेके पक्षमें अत्यन्त दुर्लभ है। अनन्तर मैंने सिर नीचाकर प्रणाम करके सूर्य्यदेवसे कहा। हे भगवन्! मैं अस्मदादिके उपयुक्त समस्त यजुर्वेद जाननेकी इच्छा करता हूं। अनन्तर भगवान् भास्कर मुझसे बोले, हे द्विज! मैं तुम्हें अभिलषित वर प्रदान करूंगा, तब वाग्देवी सरस्वती तुम्हारे शरीरमें प्रवेश करेंगी। अनन्तर भगवान् सूर्य्यदेव मुझसे बोले, तुम अपना मुंह पसारो, मैंने जब उनकी आज्ञानुसार मुंख फैलाया, तब सरस्वती उसमें प्रविष्ट हुईं। अनन्तर मैं विशेष रूपसे दह्यमान होकर महात्मा भास्करके अज्ञातसारमें अमर्षवशसे जलके बीच प्रविष्ट हुआ। भगवान् सूर्य्य मुझे दह्यमान देखके बोले, "तुम मुहूर्त्तभर दाह सहो, फिर शीतल होगे।" अनन्तर भगवान सूर्य्य मुझे शीतल होते देखके बोले, हे द्विज! अखिल आद्यन्त वेद तुममें प्रतिष्ठित होगा। हे द्विजवर! तुम समस्त शतपथ ब्राह्मण प्रणयन करोगे, उनके प्रणयनकी समाप्ति होनेपर तुम्हारी बुद्धिशक्ति मोक्षपथकी अनुवर्त्तिनी होगी। सांख्य योगमें तुम्हारा जो अभीष्ट पद प्रार्थनीय है, उसे पाओगे। भगवान् इतना मन्त्र कहके अस्त हुए। सूर्य्यदेवका वचन सुन उनके अस्त होनेपर मैंने घर आके हर्षपूर्व्वक सरस्वती देवीका ध्यान किया। अनन्तर स्वर व्यञ्जनसे भूषित अत्यन्त शुभङ्करी सरस्वती देवी ओंकारको आगे करके मेरे सम्मुख प्रकट हुईं।

अनन्तर मैंने बैठके सूर्य्यनिष्ठ होकर सरस्वतीदेवी तथा तपनदेवको विधिपूर्व्वक अर्घ प्रदान किया। अनन्तर परमहर्षसे रहस्य-संग्रह और परिशिष्टके सहित समस्त शतपथ ब्राह्मण स्वयं प्रकट हुआ। हे महाराज! महानुभाव मातुल सशिष्य वैशम्पायनके प्रियकार्य्य साधनके लिये एक सौ शिष्योंको उक्त शतपथ पढ़ाके गभस्तिगणके सहित सूर्य्यकी भांति सब शिष्योंके

सहित तुम्हारे महानुभाव पिताके यज्ञ कार्य्यको निर्व्वाह करनेमें प्रवृत्त हुआ। अनन्तर देवलके सम्मुखमें मेरे मातुलके वेद दक्षिणाके लिये महान् विमर्द उपस्थित हुआ। मैंने दोनोंको सम्मत करके दक्षिणाका आधा हिस्सा लेना अङ्गीकार किया। अनन्तर सुमन्त, पैल, जैमिनी, तुम्हारे पिता और अन्यान्य मुनियोंने मेरा सम्मान किया। हे अनघ! मैंने आदित्यसे पन्द्रह यजुर्म्मन्त्र पाये थे और रोमहर्षणके जरिये सारे पुराणका निश्चय किया था। हे नरनाथ! उस ही बीज और सरस्वती देवीको पुरस्कृत करके सूर्य्यदेवके प्रभावसे इस अपूर्व्व शतपथके प्रणयन करनेमें प्रवृत्त हुआ, और उनके प्रभावसे इसे सम्पन्न किया है। जो पथ मुझे अभिलषित था, वह पूर्णरूपसे तय्यार हुआ है, शिष्योंको संग्रहके सहित समस्त शतपथ अध्ययन कराया है, सब शिष्य पवित्र और परम हर्षित हुए हैं। इस पन्द्रह शाखाओंसे युक्त सूर्य्यको उपदिष्ट विद्याकी प्रतिष्ठा करके मैं स्वेच्छापूर्व्वक उस वेद्य पुरुषका ध्यान किया करता हूं। हे राजन्! वेदान्त ज्ञानकोविद विश्वावस्तु नाम गन्धर्व्वने उस शास्त्रमें ब्राह्मण जातिका हितकर सत्य क्या है, और इसमें अनुत्तम वेद्यवस्तु ही कौनसी है। ऐसी चिन्ता करके मेरे समीप आकर उस विषयमें प्रश्न किया। हे राजन्! अनन्तर उन्होंने मेरे निकट वेदके चौबीस प्रश्न किये और शेषमें निम्नलिखित आन्विक्षिकी विद्या अर्थात् युक्तिके जरिये आलोचना शास्त्र सम्बन्धीय पचीस प्रश्न किये। हे राजन्! वे प्रश्न ये हैं,—विश्व, अविश्व, अश्व, अश्वमित्र, वरुण, ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञ, अज्ञ, क, तपा, अतपा, सूर्य्यादि, सूर्य्य, विद्या, अविद्या, वेद्य, अवेद्य, अव्यक्त, चल, अचल और अक्षय तथा क्षयशील वस्तु कौनसी है? यही सर्व्वोत्तम प्रश्न है। हे महाराज! अनन्तर मैंने गन्धर्व्व सत्तम राजा विश्वावसुसे कहा, हे गन्धर्व्वराज! तुमने यथाक्रमसे अत्यन्त उत्तम अर्थयुक्त प्रश्न किया है। अब मुहूर्त्त भर निवास करो, मैं इसका अर्थ विचारता हूं। गन्धर्व्व मेरा बचन सुन मौनावलम्बन करके स्थित हुआ। अनन्तर मैंने फिर मन ही मन सरस्वती देवीका ध्यान किया। हे महाराज! ध्यान करतेही दहीसे घृत निकलनेकी भांति उस प्रश्नका उत्तर मेरे अन्तःकरणमें उत्पन्न हुआ। मैंने परमश्रेष्ठ आन्विक्षिकी शास्त्र निरीक्षण करके उपनिषत् और परिशिष्ठ शास्त्रोंको मन ही मन मथा। हे राज शार्दूल! वार्त्ता, शास्त्र, दण्डनीति और आन्विक्षिकी इन तीनोंके अतिरिक्त चौथी मोक्षकी निमित्त हितकरी साम्परायकी विद्या जो कि पञ्चविंश अर्थात् शरीरको आत्माको अधिकार करके निवास करती है, जिसे तुम्हारे समीप इसके पहले वर्णन किया है, उसे भी विश्वावसुके समीप कहा था। हे राजन्! उस समय मैंने गन्धर्व्वराज विश्वावसुसे कहा तुमने मेरे समीप जो प्रश्न किया है, उसका उत्तर कहता हूं, सुनो। हे गन्धर्व्वेन्द्र! तुमने जो विश्वाविश्व कहके प्रश्न किया है, उसके बीच भूत भविष्य कालक परा विद्या अव्यक्तको विश्व कहके जानो। और गुण कर्त्तृत्व निबन्धन त्रिगुणात्मक निष्कल पुरुषको अविश्व समझो अर्थात् जो पुत्र और वित्तसे भी प्रिय है, दूसरी सब वस्तुओंसे अन्तरतर है और जो आत्मरूपसे सबके भी है, वही अविश्व शब्द प्रतिपाद्य है और उसके अतिरिक्त बस्तुमात्रको ही विश्व कहा जाता है। अश्वाश्व पदके वाच्य मिथुन अर्थात् प्रकृति पुरुष ही विदित हुआ करते हैं। स्त्रीरूपी प्रकृतिको अव्यक्त और जिसके प्रतिविम्बसे प्रकृति सब कार्य्योंका निर्व्वाह करती है, उस निर्गुणको पुरुष कहते हैं। इस ही प्रकार प्राचीन विपश्चितगण प्रकाशात्मक पुरुषको मित्र, जलको इस समस्त जगत्के उत्पन्न करनेका कारणहेतु प्रकृतिको वरुण

अर्थात् वरुण देवतारूपी निर्देश किया है। और प्रकाशमात्रसे ही जगज्जन्म आदिका कारण होना सम्भव नहीं होता, इससे जगज्जन्म आदिके उपयोगी जो ज्ञान है, वह मायावृत्ति है, इसलिये पण्डित लोग प्रकृतिको ही ज्ञान रूपसे वर्णन किया करते हैं, और ज्ञेय स्वरूप जो ज्ञान है, वही निष्कल अर्थात् सत्य ज्ञान है, वही ब्रह्म कहके विहित हैं। ज्ञ और अज्ञ शब्दके प्रतिपाद्य ईश्वर तथा जीव है, क्यों कि कार्य्य उपाधिको जीव और कारण उपाधिको ईश्वर कहा जाता है। कार्य्य कारण उपाधि योगसे ब्रह्मको जीव तथा ईश्वर कहा जाता है, उस उपाधिसे रहित होनेसे ही वह निष्कल शब्दसे पुकारा जाता है। क, तपा और अतपा कौन पुरुष है। यह जो तुमने पूछा है, वह विषय कहता हूं सुनो। क शब्दसे आनन्द, तपासे प्रकृति और अतपासे निष्कल ब्रह्म स्मृत होता है, ऐसा प्राचीन लोग कहा करते हैं। अज्ञान पुरुषार्थको प्रतिबन्ध करता है, वही अवेद्य है और आत्मा ही वेद्यरूपसे वर्णित हुआ है। तुमने जो चलाचलका उल्लेख करके प्रश्न किया है, वह भी मेरे समीप सुनो। लय और सृष्टिके कारण प्रकृतिको पण्डित लोग चला करते हैं, क्यों कि प्रकृति व क्रियमाण होकर जगत्‌को लय और उदय किया करती है, इस ही लिये निश्चल शब्दसे स्मृत होती है, यद्यपि शास्त्रके अनुसार इसके पहले प्रकृतिको अवेद्य और पुरुषको वेद्यरूप कहा गया है, तथापि वस्तु स्वभावकी पर्य्यालोचना करके देखा जाता है, कि प्रकृतिका दृश्यत्व निबन्धन ही वेद्य और अदृश्यत्व निबन्धनसे पुरुष अवेद्य है। प्रकृति जड़ है, इसलिये जैसे वह अपनेको नहीं जान सकती वैसे ही निष्कल आत्मा भी स्वप्रकाशसे वृत्ति विरोधके हेतु निज आत्माको नहीं जान सकता इस ही निमित्त प्रकृति तथा आत्मा दोनों ही अज्ञ हैं। अनादि और अक्षय परिणामी नित्यताके व्यवहारके कारण प्रकृति नित्य तथा पुरुष स्वतःसिद्ध नित्य पदार्थ है, पण्डित लोग अध्यात्म शास्त्रके निश्चय निबन्धनसे प्रकृति और पुरुष दोनोंको ही अज और नित्य कहा करते हैं। नित्य सृष्टि विषयमें अक्षत्वके कारण पण्डित लोग जन्म रहित पुरुषको अव्यय कहते हैं और इस अव्यय पुरुषको वे लोग अक्षय भी कहा करते हैं, क्यों कि उत्पन्न हुए घट पट आदि पदार्थोंकी भांति यह नष्ट नहीं होता। सत्त्व, रज और तमोगुणके क्षयवत्ता हेतु अर्थात् अप्राकृत लोगोंमें सत्त्वादि गुणोंकी सत्त्वासन्दिग्धता निबन्धन और आद्य प्रलयकालमें तीनों गुणोंकी साम्यावस्थामें गुण कार्य्योंका अवश्य नाश होता है, इसलिये पण्डित लोग प्रकृतिको अक्षय कहके पुरुषको भी अक्षय कहा करते हैं। मैंने तुम्हारे समीप यह मोक्षसाधनके उपायभूत आन्वि-क्षिकी विद्याका वर्णन किया; हे विश्वावसु! ऋक्, यजु, सामरूप तीनों वेदोंका युक्तिके सहित संयुक्त करके गुरुके समीप जाकर यत्नपूर्वक समस्त वेद तथा नित्यकर्म्म विषयको विशेषरू-पसे जानना चाहिये। हे गन्धर्व्व सत्तम! ये आकाश आदि भूत जिस अधिष्ठानसे उत्पन्न होकर जिसमें लीन होते हैं, उस वेदार्थ प्रति-पाद्य वेद्य आत्माको जो लोग न जानें और यदि कोई साङ्गोपाङ्ग सब वेदोंको पढ़के वेदसे जानने योग्य उस आत्माको न जान सकें, तो वे वेदके बोझ मात्रको ढोनेवाले हैं। हे गन्धर्व्वस-त्तम! जो पुरुष घृतकी इच्छा करके खराचोर मंथता है, वह उस चोरमें मैं केवल विष्टा देखा करता है, शुद्ध घृत वा पवित्र मक्खन नहीं देखता। वैसे ही जो वेद जाननेवाला पुरुष अवेद्य प्रकृति और वेद्य पुरुषका दर्शन नहीं करता, वह मूढ़बुद्धि मनुष्य केवल ज्ञानका भार ढोनेवाला कहा जाता है। जिस दर्शनके जरिये जीवका बार बार जन्म और मृत्यु न होसके, प्रकृति और परमात्माको अन्तरात्माके सहारे

उस ही भावसे सदा दर्शन करना उचित है। इस लोकमें अजस्र जन्म मृत्युके विषयकी चिन्ता करके चयशील कर्म्मकाण्डमें कहे हुए धर्म्मोंको परित्याग करके अक्षय योगधर्म्मको अवलम्बन करना उचित है। हे काश्यप! त्वं पदार्थके प्रतिपाद्य पुरुष प्रतिदिन यदि आत्माको अवलोकन करे, तब वह वाक्य नित्य ज्ञानके जरिये केवलीभूत और अविद्या विमुक्त होकर उस पदार्थके प्रतिपाद्य परमात्माका वश करनेमें समर्थ होगा। शाश्वत ईश्वर स्वतन्त्र है और पचीसवां जीव स्वतन्त्र है, मूढ़ लोग ऐसी सम्भावना किया करते हैं, परन्तु वेदान्तनिष्ठ साधु लोग उन दोनोंको अभिन्न रूपसे देखते हैं। यह मत समझो कि सांख्य और पातञ्जल मतावलम्बी मनुष्य जीव और ईश्वरके अभेद दर्शनको अभिनन्दन नहीं करते, जन्म मृत्यु भयके उद्वेगसे युक्त परम तत्वको खोजनेवाले सांख्य मतावलम्बी पुरुष स्पष्टरूपसे जीव और ईश्वरका अभेद कहते हैं और योगाचारी पण्डित लोग मोक्ष समयमें जब जीव सब क्लेशोंसे रहित होता है, उस समय निर्व्विशेष चिन्मात्रमें लीन हुआ करता है, इस ही भांति दोनोंका अभेद स्वीकार किया करते हैं।

विश्वावसु बोले, हे ब्राह्मणसत्तम! आपने जो जीव तत्त्वके विषय कहे अर्थात् जीव अच्युत और परमात्मासे अभिन्न है, यह सत्य है, परन्तु जीवका ईश्वरत्व अत्यन्त दुर्व्वच है। यद्यपि इस विषयको मैंने बहुतोंके मुखसे सुना है, तौभी मुझे आपपर अधिक विश्वास रहनेसे आपको विस्तारके सहित इस विषयको वर्णन करनेका अनुरोध करता हूं। आप ही इस विषयको वर्णन करनेके उपयुक्त पात्र हैं। जैगीषव्य, असित, देवल, विप्रर्षि पराशर, बुद्धिमान वार्षगण्य भृगु, पञ्चशिख कपिल, शुकदेव, गौतम, अष्टिसेन, महात्मा गर्ग, नारद, आसुरि धीमान् पुलस्त्य, सनत्कुमार, महानुभाव शुक्र, काश्यप और अपने पिताके मुखसे पहले मैंने इस विषयको सुना था। तिसके अनन्तर रुद्र, धीमान् विश्वदेव देवताओं, पितरों और दैत्योंके समीप मैंने इस नित्य वेद्य विषयको जाना है, इसे ही सब कोई नित्य वस्तु कहा करते हैं। हे ब्रह्मन्! इसलिये मैं आपको बुद्धिके जरिये स्थिरीकृत इस तत्व विषयको सुननेकी इच्छा करता हूं, आप शास्त्र जाननेवालोंमें श्रेष्ठ, प्रगल्भ और अत्यन्त बुद्धिमान हैं, आपसे कुछ भी अविदित नहीं है, आप सब वेदोंके अवलम्ब रूपसे स्मृत हुए हैं। हे ब्राह्मण! देव लोक और पितर लोकमें यही कहा जाता है, कि ब्रह्म लोकमें गये हुए महर्षि लोग ही तत्व विषय कहा करते हैं। तापदाता आदित्य सदा आपके उपदेष्टा हैं। हे याज्ञवल्क्य! आपने समस्त सांख्य ज्ञान लाभ किया है, विशेष करके योग शास्त्र भी जाना है, और चराचर ज्ञान गोचर करके निःसन्दिग्ध रूपसे प्रवृत्त हुए हैं। इसलिये मैं आपके निकट मक्खनमय घृतकी भांति अत्यन्त स्वादमय तत्व ज्ञानका विषय सुननेकी इच्छा करता हूं।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे गन्धर्व्व सत्तम! मैं विवेचना करता हूं, तुमने सब शास्त्रोंको जाना है, इस समय मुझसे जो कुछ पूछते हो, उस विषयको मैंने जिस प्रकार सुना है, वैसे ही कहता हूं सुनो। हे गन्धर्व्वराज! पुरुष बुध्यमान अर्थात् जड़ प्रकृतिको प्रकाश करता है, परन्तु प्रकृति पुरुषको प्रकाश नहीं कर सकती। सांख्य और योगमतावलम्बी तत्वज्ञ लोग श्रुति दर्शनके अनुसार इस पुरुषके प्रतिरोध निबन्धन अर्थात् प्रकृतिमें चित्प्रतिबिम्बके कारण उस प्रकृतिको प्रधान कहा करते हैं। भूतात्मा एक होके भी सब भूतोंमें निवास कर रहा है, वह एक होके भी जलमें चन्द्रमण्डलके प्रतिबिम्बकी भांति अनेक दीखता है, चित्प्रतिबिम्बता बुद्धि ही 'मैं'—इस प्रत्ययका विषय है।

हे अनघ! चिदाभाससे स्वतन्त्र साक्षी जाग्रत आदि अवस्थान अर्थात् प्रकृति पुरुषके विवेकके समयमें विकारयुक्त अव्यक्त और आत्माको अवलोकन करती है, और सुषुप्ति अवस्थान अथवा निर्व्विकल्प समाधि समयमें परमात्म दर्शन लाभ किया करती है, इसलिये जबतक साक्षी साक्ष्यके सहित सम्बन्ध विशिष्ट रहता है, उस समय जीव और साक्ष्य वियुक्त होनेसे ही आत्म रूपसे प्रकाशित होता है। जो पुरुष आत्माको अवलोकन करते हुए इसके सहित परमात्माका दर्शन करते हैं, वे कुछ भी दर्शन करनेमें समर्थ नहीं हैं। आत्मा यह अभिमान करता है, कि मुझसे श्रेष्ठ और दूसरा कोई भी नहीं है। ज्ञानदर्शी मनुष्य प्रकृतिको आत्म-भावसे ग्रहण नहीं करते। मछली जलकी ही अनुगत हुआ करती है, वह जैसी प्रवृत्तिके कारण उसहीमें प्रवृत्त होती है; जैसे मछली जलमें रहके प्रकाशित होती है, आत्मा भी अव्यक्तसे आवृत रहके, उस ही भांति प्रकाशित हुआ करता है। सदा सहवास और साभिमानसे जीव स्नेहयुक्त होता है, जबतक जीवका परमात्माके सङ्ग अभेद नहीं होता, तबतक वह संसारमें निमग्न और उन्मग्न हुआ करता है। हे द्विज! मैं चिदात्मा अन्य हूं और ये विषयादि आत्मासे पृथक् पदार्थ अन्य हैं,—जब जीव ऐसा समझता है, तब वह केवलीभूत होकर परमात्माका दर्शन करता है। हे राजन्! जीव पृथक् है और परमात्मा स्वतन्त्र है। परन्तु परमात्माका जीवमें अधिष्ठान रहनेके कारण साधु लोग दोनोंको एक भावसे अनुभव किया करते हैं।

हे महामुनि काश्यप! जन्म मृत्युके भयसे भीत योग और सांख्य मतावलम्बी मनीषी पुरुष जीवको अविनाशी कहके अभिनन्दन नहीं करते, वे लोग पवित्र तथा आत्मपरायण होके परमात्माका दर्शन करते हैं। आत्मा विशुद्ध होनेसे परमात्माका दर्शन करनेमें समर्थ होता है, उस समय वह सर्व्ववित् और ज्ञानसम्पन्न होकर फिर जन्म नहीं लेते। हे अनघ! यह मैंने वेद प्रमाणके अनुसार अप्रतिबुद्ध प्रकृति बुध्यमान जीव और बुद्ध ब्रह्मतत्वका यथावत् वर्णन किया। हे काश्यप! जो पुरुष द्रष्टा और उससे इतर पदार्थोंको नहीं देखता, मोक्षविषयमें स्थितकर तथा दृक् दृश्यके अन्यत्व निर्व्विकल्पभावको नहीं देखता, वह मोक्षनिर्म्मुक्त और साक्षीरूप चिदाभास जगत् कारण तथा महदादि कार्य्योंको देखनेमें समर्थ होता है।

विश्वावसु बोले, हे विभु! आपने सत्य, शुभकर और मोक्षसाधनके उपायभूत पूर्ण ब्रह्मतत्वको यथावत् वर्णन किया है, इसलिये आपका सदा अक्षय मङ्गल होवे तथा आपका मन सदा बुद्धियुक्त रहे।

याज्ञवल्क्य बोले, उस महात्माके ऐसा कहनेपर मैंने उसे परम परितोषके सहित देखा, तब वह मेरी प्रदक्षिणा करके सौन्दर्य्ययुक्त शरीर धारण करके स्वर्गलोकमें गये। हे नरेन्द्र! ब्रह्मलोकमें खेचरोंके निकट भूमण्डल और रसातलमें जो लोग मोक्षपथको अवलम्बन करके वास करते हैं, उन्होंने उन लोगोंके निकट इस मोक्ष साधन शास्त्रको प्रदर्शित किया। जैसे सांख्य मतावलम्बी मनुष्य सांख्यधर्म्ममें रत हैं, वैसे ही पातञ्जल मतवाले मनुष्य योगधर्म्ममें अनुरक्त हैं, इनके अतिरिक्त जो सब मनुष्य मोक्षकी कामना किया करते हैं, उनके सम्बन्धमें इस शास्त्रके फल प्रत्यक्ष सिद्ध हैं। हे राजश्रेष्ठ नरेन्द्र! ज्ञान हेतुसे मोक्ष हुआ करती है, अज्ञानसे मोक्ष नहीं होती, पण्डित लोग ऐसा ही कहा करते हैं; इसलिये जिस ज्ञानके सहारे आत्माको जन्म मृत्युसे मुक्त किया जासकता है, यथार्थ रीतिसे उस ज्ञानकी खोज करनी उचित है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा नीच जाति शूद्रसे भी ज्ञान लाभ करके श्रद्धावान पुरुषको

उस विषयमें सदा श्रद्धा करनी योग्य है, क्यों कि श्रद्धावान पुरुषके निकट जन्म-मृत्यु प्रवेश नहीं कर सकती। सब वर्ण ही ब्राह्मण हैं, क्यों कि ब्रह्मासे उत्पन्न हुए हैं, सभी सदा "ब्रह्म" ऐसा ही वचन कहा करते हैं; इसलिये मैंने ब्रह्म-बुद्धिसे तत्वशास्त्रकी व्याख्या की है, सब संसार ही ब्रह्ममय है, इससे यह दृश्यमान विश्व ही ब्रह्म है। ब्रह्माके मुखसे ब्राह्मण, भुजासे चत्रिय, नाभिसे वैश्य और दोनों चरणोंसे शूद्रोंकी उत्पत्ति हुई है; इसलिये सब वर्णोंको ही दूसरी भांति समझना उचित नहीं है। हे राजन्! इन सब वर्णोंका अज्ञानवशसे जिस प्रकार नाश होता है, उसहीके अनुसार कर्म्म-योनिकी भजना करते हैं और ये लोग ज्ञान हीन होकर घोर अज्ञानसे प्राकृत योनिजालमें पतित होते हैं। इसलिये सब वर्णोंके ज्ञानकी सब भांतिसे खोज करनी योग्य है, यही मैंने तुमसे कहा है। हे नरेन्द्र! जो ज्ञाननिष्ठ हैं, वेही ब्राह्मण हैं; इसलिये जिस ब्राह्मण वा चत्रियने ज्ञान अवलम्बन किया है, उसहीके लिये यह मोचशास्त्र नित्य सिद्ध है,—ऐसा ही प्राचीन पण्डित लोग कहा करते हैं। हे राजन्! तुमने जो पूछा था, मैंने यथार्थ रूपसे उस ही विषयका उपदेश दिया; इसलिये अब शोकरहित होकर ज्ञान आलोचनाके पारदर्शी बनो, तुमने उत्तम प्रश्न किया था, इससे तुम्हारी सदा स्वस्ति होवे।

भीष्म बोले, राजा मिथिलेश उस धीमान् याज्ञवल्क्यका ऐसा उपदेश सुनके प्रसन्न हुए। प्रदक्षिणाके अनन्तर जब मुनिवर चले गये, तब देवरात पुत्र मोचवित् राजा जनकने उस समय ब्राह्मणोंको एक करोड़ गऊ, सुवर्ण और अञ्जलिपूर्ण रत्न दान किया। मिथिलाधिपति उस समय पुत्रको राज्य देकर यति धर्म्म अवलम्बन करके निवास करने लगे। हे राजेन्द्र! वह प्राकृत धर्म्माधर्म्मकी सब प्रकारसे निन्दा करके सांख्य ज्ञान और समस्त योग शास्त्रकी अध्ययन करनेमें प्रवृत्त हुए। मैं अनन्त अर्थात् तीनों परिच्छेदोंसे रहित हूं, ऐसा मनमें निश्चय करके सदा एकमात्र परमात्म तत्त्वका विचार करने लगे। और ऐसा निश्चय किया, कि धर्म्माधर्म्म, पुण्य पाप, सत्यासत्य जन्म मृत्यु, ये सभी मिथ्या हैं। हे नरनाथ! सांख्य और योग मतावलम्बी मनुष्य निज निज शास्त्रके कहे हुए लक्षणके अनुसार इन धर्म्मादिको व्यक्त और बुद्धि आदिको अव्यक्त भावसे सदा अवलोकन करते हैं। पण्डित लोग कहते हैं इष्टानिष्टसे विमुक्त परात्पर ब्रह्म जो स्थाणुकी भांति सदा अचल भावसे निवास करता है, वही शुद्ध है, इसलिये तुम भी उसे जानके पवित्र होजाओ। हे महाराज! जो दान किया जाता है, जो प्राप्त किया जाता है, जो दान करनेमें अनुमित होता है, जो दान करता और जो परिग्रह करता है, वह दीयमान गऊ आदि सब वस्तु ही आत्मा है; उस एकमात्र आत्मासे भिन्न और कौन होसकता है, तुम सदा ऐसा ही जानो, विपरीत चिन्ता मत करो। जो पुरुष सगुण वा निर्गुण प्रकृतिको जाननेमें समर्थ नहीं है, उस विपश्चित मनुष्यको तीर्थसेवा और यज्ञानुष्ठान करना उचित है। हे कुरुनन्दन! स्व-शाखोक्त वेदाध्ययन तपस्या वा यज्ञ आदिके जरिये ब्रह्मपद नहीं मिलता, मनुष्य परब्रह्मको जाननेसे ही सब लोगोंमें पूजनीय होता है, और क्रमसे महत्तत्वके स्थान अहंकार और अहंकारके भी परतर स्थानोंको प्राप्त किया करता है। जो सब शास्त्र परायण मनुष्य अव्यक्तसे परम श्रेष्ठ, जन्म मृत्युसे रहित कार्य्यकारण भावसे सदसत् नित्य शुद्ध परमात्माको जान सकते हैं, वे परम पद पानेमें समर्थ होते हैं। हे राजन्! पहले मैंने राजर्षि जनकके समीप यह ज्ञान लाभ किया था, ज्ञान ही सबसे श्रेष्ठ है, यज्ञ श्रेष्ठ नहीं है। ज्ञानसे

सहारे जीव जन्म मरण स्वरूप दुर्गसे पार होता है, यज्ञके जरिये उससे कदापि पार नहीं हो सकता।

हे राजन! ज्ञानवित् मनुष्य भौतिक जन्म मरणको ही दुर्ग कहते हैं, उसके अतिरिक्त दूसरा और कुछ भी दुर्ग नहीं है। मनुष्य यज्ञ तपस्या, नियम और व्रतके जरिये स्वर्ग लाभ करके फिर पृथ्वीपर पतित होता है, इसलिये पवित्र होके परात्पर विमोक्ष विमल पवित्र परब्रह्मकी उपासना करो। हे पार्थिव! क्षेत्र ज्ञानपूर्व्वक यथार्थ ज्ञान यज्ञकी उपासना करनेसे ज्ञानी होगे। उपनिषत् पाठ करनेसे जो उपकार होता है, पहले समयमें याज्ञवल्क्य मुनिने राजा जनकका वही उपकार किया था। उन्होंने जो शाश्वत अव्यय पुरुषका उपदेश दिया, उसहीसे जनक शुभ, अमृत और शोक रहित परमात्माकी प्राप्त हुए।

३१८ अध्याय समाप्त।

———

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ! मनुष्य महत् ऐश्वर्य्य, विपुलवित्त अथवा दीर्घ परमायु पाके किस प्रकार मृत्युको अतिक्रम करता है। महत् तपस्या, कर्म्म अथवा शास्त्र ज्ञान वा रसायन प्रयोग, इनके बीच क्या करनेसे मनुष्य जरा मृत्युको प्राप्त नहीं होता।

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस विषयमें पञ्चशिख नाम किसी सन्न्यासीके सहित जनककी जो वार्त्ता हुई थी, उस ही प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। विदेहवंशीय राजा जनकने धर्म्मार्थ संशय छेदन करनेवाले देवविसत्तम महर्षि पञ्चशिखसे पूछा,—हे भगवन्! तपस्या, बुद्धि, कर्म्म वा शास्त्रज्ञान, इन सबके बीच किसके जरिये मनुष्य जन्म और मृत्युको अतिक्रम करनेमें समर्थ होता है। अपरोक्षवित् महर्षिने विदेहराजके ऐसा पूछनेपर यह उत्तर दिया,—जन्म मरणकी निवृत्ति नहीं है और किसी प्रकार उसकी निवृत्ति हो, वह भी नहीं है। दिन रात और महीनोंकी निवृत्ति नहीं होती, जो अनित्य होके भी सदाके लिये नित्य-पथ अवलम्बन करते हैं, अर्थात् स्वधर्म्माचरण पूर्व्वक निवृत्ति मार्गमें निष्ठावान होते हैं, वेही जरा मृत्युको अतिक्रम करनेमें समर्थ हैं। सर्व्वभूतोंका समुच्छेद मानो सदा ही स्रोतमें भासमान होरहा है, नौकारहित काल सागरमें जिसे भासमान देखा जाता है, वही डूबता है, जरा मृत्युरूपी महाग्राहसे पकड़े जानेपर कोई फिर नहीं लौटता। कालसागरमें बहते हुए मनुष्यका कोई भी आत्मीय नहीं है और वह भी किसीका आत्मीय नहीं है, पत्नी और दूसरे बान्धवोंके साथ मिलना पथिकोंके मिलनेकी भांति अचिर कालतक स्थायी मात्र है। जीवने पहले किसीके सङ्ग अत्यन्त सहवास लाभ नहीं किया है, जब जिसके साथ मिलन होता है, तभी उसके निमित्त रोदनके सहित वियोग हुआ करता है। जैसे वायुके वेगसे बादल छितरा जाते हैं, वैसे ही कालवशसे जो लोग गमन करते हैं, वे फिर लौटके नहीं आते। जरा मृत्यु भेड़ियेकी भांति प्राणियोंको भक्षण करती है। क्या बलवान, क्या निर्व्वल, क्या छोटे वा बड़े किसीको भी जरा मृत्युके समीपसे छुटकारा नहीं है। ऐसे अनित्य प्राणियोंके बीच नित्यभूत भूतात्मा स्थित है, इसलिये प्राणियोंके जन्मनेसे लोग किसलिये हर्षित होते और मरनेपर क्यों दुःख किया करते हैं। मैं कहांसे आया हूं, मैं कौन हूं, कहां जाऊंगा, मैं किसका हूं, कहा हूं, किस लिये किस स्थानमें जन्म ग्रहण करूंगा; क्या लोग इसकी आलोचना किया करते हैं; स्वर्ग वा नरकका द्रष्टा दूसरा कौन है? इसलिये सब शास्त्रोंकी अतिक्रम न करके दान और यजन करना उचित है।

३१९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे कुरुराजर्षिसत्तम! किस पुरुषने गार्हस्थ्यधर्म्म परित्याग न करके बुद्धिके विलयास्पद मोचतत्वको पाया है, उसे आप मेरे समीप वर्णन करिये। हे पितामह! यह स्थूल शरीर तथा लिङ्ग शरीर कैसे परित्यक्त होता है और मोचका परम तत्व क्या है, आप मुझसे वही कहिये।

भीष्म बोले, हे भारत! इस विषयमें सुलभा और जनककी सम्वादयुक्त इस प्राचीन इतिहासका पुराने लोगोंने इस विषयमें यह दृष्टान्त दिया करते हैं। पहिले समयमें मिथिला-देशमें संन्यास फलदर्शी जनक नाम कोई राजा थे, वह श्रेष्ठ धर्म्मध्वजा कहके विख्यात हैं। उन्होंने मोच शास्त्र वेद और निज दण्डनीति शास्त्रमें विशेष श्रम किया था तथा इन्द्रियोंको समाधान करके इस पृथ्वीको शासन किया। हे नरनाथ! बुद्धिमान पुरुषोंने उस वेदवित् भूपतिकी उत्तम वक्तृता सुनके सब कोई उसके चरित्रके अनुरक्त हुए थे। उस सत्ययुगमें योग-धर्म्मका अनुष्ठान करनेवाली सुलभा नामी भिक्षुकी अकेली ही इस पृथ्वीमण्डलपर विचरती थी। वह इस सारे जगत्में घूमती हुई जिस जिस स्थानमें उपस्थित होती थी, उस ही उस स्थानमें सन्न्यासियोंके मुखसे सुनती, कि पृथ्वीमण्डलके बीच मिथिलेश्वर ही मोच धर्म्ममें अत्यन्त निष्ठावान हैं। उसने अत्यन्त सूक्ष्म वचन सुनके यह सत्य है वा नहीं, ऐसा सन्देह करके राजा जनकका दर्शन करनेके लिये सङ्कल्प किया। उस समय उस अनिन्दि-ताङ्गीने योगबलसे पूर्व्वरूपको परित्याग कर एक दूसरा उत्तम रूप धारण किया। वह कमल-नैनी शुभ्र शीघ्रगामी अस्त्रकी भांति गति अव-लम्बन करके पलभरमें विदेहकी राजधानीमें गई। अनेक लोगोंसे परिपूरित मिथिलानगरमें पहुंचके भैच्यचर्य्यके छलसे मिथिलेश्वरको देखा। राजा उसकी अत्यन्त सुकुमारतायुक्त शरीर देखकर मनही मन "यह कौन है, किसकी कन्या है, कहांसे आई है?" ऐसा सोचते हुए विस्मित हुए। अनन्तर राजाने उसके स्वागत प्रश्नकर बैठनेकी आज्ञा दी, फिर उसका चरण धोके पूजा और उत्तम अन्न दानकर उसे तृप्त किया। भिक्षुकी सुलभा भोजन करके प्रसन्न हुई और मिथिलापति मुक्त है, वा नहीं; इस विषयमें सन्देह कर समस्त भाष्यवित् अर्थात् सूत्रार्थ जाननेवाले ऋषियोंके बीच मन्त्रिमण्डलीमें घिरे हुए राजासे मोचधर्म्मका विषय पूछनेमें प्रवृत्त हुई। योग जाननेवाली सुलभाने मोचधर्म्मके विषयको पूछनेकी इच्छा करके पहले निज नेत्ररश्मिको संयत करती हुई निज बुद्धिसे राजाकी बुद्धिमें प्रवेश करके योगबलसे उन्हें वशीभूत किया। हे नृपवर! राजा जनकने भी अपने अजेयत्व अभि-मानसे गर्व्व करके सुलभाके आशयको अभिभव करनेकी इच्छासे उसका अभिप्राय निज अभि-प्रायके जरिये ग्रहण किया, अर्थात् उसके सहित समभावसे एक ही शरीरमें वास करने लगे। राजा राजचिन्ह छत्र आदि और सुलभा भी यति-चिन्ह त्रिदण्ड प्रभृति परित्याग करने अर्थात् दोनोंके स्थूल देहके सब चिन्ह परि-त्याग करनेपर उस एक मात्र अधिष्ठानमें जो वार्त्ता हुई थी उसे सुनो।

जनक बोले, हे भगवति! तुम्हारा यह आचरण कहांसे हुआ, तुम किसकी कन्या हो, किस स्थानसे आई हो, इस समय कहां जाओगी? पृथ्वीपति जनकने सुलभासे यही प्रश्न किया और कहने लगे, अवस्थाके अनुसार शास्त्रका ज्ञान अथवा जातिसे सद्भाव नहीं होता, इसलिये जब मेरे निकट समागम हुआ है, तब इन विषयोंका यथार्थ उत्तर जानना उचित है। मैंने राजा होके भी छत्रादि राज-चिन्होंको परित्याग किया है, इसे यथार्थ रूपसे मालूम करो। मैं तुम्हें विशेष रूपसे जाननेकी

इच्छा करता हूं, तुम मेरे निकट मान्यके योग्य हुई हो। पहले मैंने जिससे यह वैशेषिक ज्ञान लाभ किया है और मुझे छोड़के दूसरा कोई भी जिसका वक्ता नहीं है, वह मोक्षका हेतु मुझसे सुनो। पराशरके सगोत्र महात्मा वृद्ध भिक्षु, पञ्चशिखका मैं प्रिय शिष्य हूं; सांख्य ज्ञान, योग और राजविधि, यह तीन प्रकारके मोक्षधर्मके पथमें विचरते हुए मैंने संशयको नष्ट किया है। वह पञ्चशिख शास्त्रदृष्ट मार्गसे विचरते हुए प्रतिवर्ष चार महीनेतक परम सुखसे मेरे निकट बास करते थे। उस सांख्य-ज्ञानी सुदृष्टार्थ गुरुके सुखसे मैंने त्रिविध मोक्षका हेतु सुना है, किन्तु राज्यसे विचलित नहीं हुआ। मैं उस ही गुरुके उपदेशको ग्रहण करके रागरहित होके अकेला ही परम पदमें निवास करते हुए निखिल वृत्तिसे युक्त तीनों प्रकारकी मोक्ष संहिता आचरण किया करता हूं। वैराग्य ही इस मोक्ष साधनका उपाय है, ज्ञान हेतुसे वैराग्य उत्पन्न होता है और वैराग्यसे पुरुष मुक्त होता है। ज्ञानके जरिये मनोनाशके कारण योगाभ्यास हुआ करता है; योगाभ्यासके जरिये आत्मज्ञान प्राप्त होता है, आत्मज्ञान ही जीवके सुखदुःख आदि मोक्षका हेतु है और जिसके जरिये मृत्युकी जय किया जा सकता है, उसे ही सिद्धि करते हैं, मैंने आसक्तिहीन तथा मोह रहित होकर इस लोकमें विचरते हुए सुखदुःखसे बर्ज्जित यह परम बुद्धि पायी है। जैसे जल भरनेसे नरम मिट्टी युक्त खेतमें अङ्कुरे जमते हैं, वैसे ही मनुष्योंके कर्म्म भी बीज स्थानीय होकर पुनर्ज्जन्मके कारण हुआ करते हैं। जैसे पलमें भुने हुए बीज अङ्कुर उत्पत्तिके हेतु होनेपर भी अङ्कुर उत्पत्तिके असामर्थ निबन्धनसे उत्पन्न नहीं होते, वैसे ही भगवन् भिक्षु पञ्चशिख आचार्य्यने मेरी बुद्धिकी बासना बीजसे रहित किया है, इसीसे वह विषयमें प्रवृत्त नहीं होती। मेरी बुद्धि शत्रु, बध आदि अनर्थमें वा बनिता-शक्ति विषयमें अनुराग प्रकाश नहीं करती, क्योंकि मैं रोष और रागको व्यर्थताके कारण किसी विषयमें भी अनुरक्त नहीं हूं। यदि कोई पुरुष मेरी दहिनी भुजाको चन्दनसे तर करे और कोई पुरुष बसुलेसे मेरी भुजाको काटे, तो वे दोनों पुरुष ही मेरे निकट समान हैं। उस ही समयसे मैं सुखी, सिद्धार्थ लोष्ट पत्थर सुवर्णमें समदर्शी, आसक्ति रहित और दूसरे त्रिदण्डियोंके सहित निर्विशेष होके भी राजकार्य्य करता हूं। किन्हीं किन्हीं मोक्षवित मनीषियोंने मोक्ष विषयमें त्रिविध निष्ठा देखी है, कोई कोई लोकोत्तर ज्ञान और कर्म्मोंके एकही समयमें परित्यागको मोक्षका उपाय कहा करते हैं, कोई कोई मोक्ष शास्त्रके जाननेवाले पण्डित ज्ञाननिष्ठाको ही मोक्षका साधन कहते हैं, और कोई कोई सूक्ष्मदर्शी यति लोग कर्म्मनिष्ठाकोही मोक्षको उपाय कहके विश्वास करते हैं, परन्तु महानुभाव पञ्चशिखने ज्ञान और कर्म्म दोनोंको ही परित्याग करके कर्म्मकृत उपकारके निरपेक्ष केवल ज्ञानको ही मोक्षका कारण कहा है, इसलिये यह तीसरी निष्ठा कहके बिख्यात् हुई है। यम, नियम, काम, द्वेष, परिग्रह, मान, दम्भ और स्नेह, इन सबके बीच यदि गृहस्थ पुरुषोंमें यम नियम आदि रहे तो वह सन्न्यासियोंके समान है और यदि सन्न्यासी काम द्वेषसे दम्भी हो, तो वह गृहस्थके सदृश है। यदि ज्ञानसे ही मोक्ष हो, तो त्रिदण्ड आदि धारण करनेकी क्या आवश्यकता है। परिग्रहकी यदि तुल्य कारणता हो, तो छत्र आदि धारण मोक्षके प्रतिबन्धक नहीं हैं, अर्थात् ज्ञानसे ही मोक्ष होती है,—जब ऐसा सिद्ध हुआ तो त्रिदण्ड धारण और छत्र धारण दोनों ही समान हैं। इस जगत्में जिस जिस कारणसे प्रयोजन सिद्ध होते हैं, स्वार्थ परिग्रह विषयमें सब कोई उस

ही कारणको अवलम्बन किया करते हैं, प्रयोजनकी अल्पता वा अधिकता बन्ध मोचका कारण नहीं होती, परन्तु उसमें आसक्ति और अनासक्ति ही बन्ध मोचकी कारण हुआ करती है। जो पुरुष गृहस्थाश्रममें दोष देखकर दूसरे आश्रममें गमन करता है, वह एक आश्रमको त्यागके दूसरे आश्रममें जानेसे आसक्तिसे नहीं छूटता। जब कि निग्रह और अनुग्रह स्वरूप आधिपत्य समान होरहा है, तब राजाओंके सहित भिचुकको समान जानना होगा, इसलिये भिचुक जब राजाओंके तुल्य ही हुए, तब किस कारणसे मुक्त होंगे। और ज्ञानके जरिये यदि सत्वमें ही आधिपत्य हो, तब इस देहमें रहके दोनों ही सब पापोंसे छूट सकते हैं। गेरुआवस्त्र पहरना, सिर मुंड़ाना, त्रिदण्ड और कमण्डलु धारण आदि आश्रमके परिचय देनेवाले जो सब चिन्ह हैं, मेरे विचारमें वे सब उत्पथ स्वरूपमात्र हैं, मोचके कारण नहीं हैं। आश्रम परिचायक चिन्होंके रहनेपर भी यदि ज्ञान ही दुःखकी अत्यन्त निवृत्तिमें कारण होता है, तब दण्डकमण्डलको धारण करना निरर्थक है। अथवा दुःखकी शिथिलता देखके यदि आश्रम-परिचायक चिन्ह धारण करनेमें प्रवृत्त हो, तो समान प्रयोजन-निबन्धनसे छत्र आदि धारण करनेमें प्रवृत्ति क्यों न होगी। अकिञ्चनता रहनेसे ही मोच नहीं होती, और किञ्चनता हेतुसे बन्ध नहीं होता; चाहे जीव अकिञ्चन हो, चाहे किंचन हो होवे, ज्ञानके सहारे ही मुक्त हुआ करता है। इसलिये बन्धनके स्थान धर्म्म, अर्थ काम और राज्यपरिग्रहमें लगी रहनेपर भी मुझे मोच पदमें स्थित जानो, मैं इस जगत्में मोचरूपी पत्थरसे शोणित त्यागरूपी तलवारके जरिये स्नेहायतन बन्धनस्वरूप राज ऐश्वर्य्य मय पाशको काटा है, इसलिये आसक्तियुक्त पुरुष बद्ध होता है, और त्यागशील मनुष्य ही मुक्त हुआ करता है।

हे भिचुकी मैं प्रागुक्त प्रकारसे मुक्त हुआ हूं। इस समय तुम्हारे ऊपर दया हुई है, तुम्हारा रूप योगानुष्ठानके योग्य नहीं है, उसे कहता हूं, मेरे समीप सुनो। तुम्हारी सुकुमारता, सुन्दरताई उत्तम थी, शरीर और यौवनका समय, यह सभी है, और योग प्रभाव भी है। सुकुमारता आदि और योगानुष्ठान, ये परस्पर विरुद्ध हैं; परन्तु इन विरुद्ध धर्म्मोंने तुम्हें अवलम्बन किया है; इस ही लिये मुझे संशय होता है, कि तुम योगसिद्धा ब्राह्मणी अथवा यच वा राचस योनिमें जन्मी हो। तुम्हारी दण्ड ग्रहणकी चेष्टा अत्यन्त ही असह्य है; क्यों कि उसमें शरीर सुखाना प्रभृति आवश्यकता है, परन्तु तुममें वह नहीं है। "यह पुरुष मुक्त है, वा नहीं" ऐसा संशय करके तुम रूप आदिसे मुझे मोहित करनेका उद्योग कर रही हो, परन्तु कामयुक्त योगियोंको त्रिदण्ड धारण करना विहित नहीं है; तुम भी इस आश्रम परिचायक चिन्हको रचा नहीं करती हो और मुक्त पुरुषको कोई विषय गोपन करना भी उचित नहीं है। मेरे शरीरमें प्रवेश करने अर्थात् स्वभावसे मेरे पूर्व्व शरीरको अवलम्बन करनेके तुममें जो व्यतिक्रम अर्थात् व्यभिचार हुआ है, उसे सुनो। मेरे राज्य वा राजधानीके बीच तुमने किसकी सहायतासे प्रवेश किया और किसके निकटसे आके मेरे हृदयमें प्रविष्ट हुई। तुम वर्णश्रेष्ठा ब्राह्मणी हो, मैं चत्रिय हूं; हम लोगोंका एकत्र योग नहीं होसकता, इसलिये वर्णसङ्कर मत करो। दूसरे तुम मोच धर्म्ममें निवास करती हो, मैं गृहस्थाश्रममें बसता हूं। इसलिये आश्रमको सङ्कर करना भी तुम्हारे पचमें अत्यन्त कष्टकर होता है। तीसरे तुम मेरी सगोत्रा हो, वा असमान गोत्रा हो, उसे मैं नहीं जानता, परन्तु यदि तुमने सगोत्रके शरीरमें प्रवेश किया है, तो तुममें गोत्रसङ्कर दोष हुआ है। चौथे यदि

तुम्हारा पति जीवित हो, वा जीवित रहके किसी स्थानमें वास करता हो, तो परायी स्त्री अगम्या है, इससे तुममें धर्म्मसङ्कर दोष उपस्थित होता है; इसलिये यदि तुम सन्न्यासिनीके वेषसे गृहस्थ आश्रममें प्रवेश करनेके लिये आई हो, जो पहले बिना गोत्र, आदिके जाने मेरे शरीरमें प्रवेश करना तुम्हें उचित नहीं था। और यदि तुम कार्य्यापेक्षिणी होकर अविज्ञान अथवा मिथ्या ज्ञानसे पहले ही इन सब अकार्य्योंको करती हो, तो यह अत्यन्त अविहित है। यदि तुम निज दोषसे किसी दूसरे पुरुष पर स्वाधीनता प्रकाशित करो, तो स्त्रियोंकी स्वतन्त्रता शास्त्रमें निषिद्ध है, इसलिये तुम्हें जो कुछ शास्त्रज्ञान है, वह भी निरर्थक होरहा है। तीसरे यदि तुम प्रकाशमें बाहर हुई हो, तो इससे भी तुम्हारा महान् प्रीति-विघातक दुष्ट लक्षण बोध होता है। तुमने जयकी अभिलाषिणी होकर केवल मुझे ही जीतनेकी इच्छा नहीं की है, मेरे इस सभा सम्बन्धीय सब पण्डितोंको भी जीतनेकी तुम्हारी अभिलाषा है। मेरे पक्षके प्रतिघात और निज पक्षको सिद्ध करनेके लिये तुम इन पूज्य पुरुषोंकी ओर देखरही हो। तुम दूसरेके उत्कर्षकी असहिष्णुता रूपी आमर्ष जनित योगसमृद्धि मोहसे मोहित होकर विष और अमृतकी एकताकी भांति फिर योग अर्थात् परम बुद्धिके सहित निज बुद्धिका सम्बन्ध-विधान करती हो। यदि स्त्री पुरुष परस्पर अनुरक्त होके दोनों मिलित हों, तब उनका मिलना अमृत समान हुआ करता है और अनुरक्त दम्पतिका जो अमिलन है, वह विषके समान दोषरूपसे परिणत होता है, इसलिये तुम मुझे स्पर्श मतकरो साधु ज्ञानसे संन्यासि शास्त्रको पालन करो। मैं मुक्त हूं, वा नहीं, इसे जाननेके लिये तुमने इच्छा की है, परन्तु गुप्तभावसे मेरे समीप यह सब अभिप्राय छिपाना तुम्हें उचित नहीं है।

यदि तुमने निज कार्य्य अथवा दूसरे किसी महापतिके कार्य्यके लिये ऐसा किया हो, तो दूसरा वेष धरके मेरे निकट सत्यको छिपाना तुम्हें अत्यन्त अनुचित है। राजाके समीप मिथ्यावेषसे न जावे, ब्राह्मणके निकट कपट वेषसे उपस्थित न होवे और पतिव्रता स्त्रीके समीप कपटाचारसे न जाना चाहिये; जो लोग इनके निकट मिथ्या व्यवहार करते हैं, उनका नाश होता है। राजाओंका ऐश्वर्य्य बल है, ब्राह्मणोंका वेदबल है और स्त्रियोंको रूप यौवन सौभाग्य ही उत्तम बल स्वरूप है; इससे ये लोग इन्हीं बलोंके सहारे बलवान हैं; तब जो पुरुष स्वार्थकी इच्छा करे, उसे सरलभावसे इनके निकट जाना उचित है, इनके समीप कपटता करनेसे कपटोंका बिनाश हुआ करता है। जब तुम कपट आचारवाली हुई हो, तब तुम्हें जाति, शास्त्रज्ञान, चरित्र, अभिप्राय, अपना स्वभाव और आनेका प्रयोजन यथार्थ रूपसे कहना उचित है।

भीष्म बोले, सुलभा नरेन्द्रके जरिये यह सब रूखे, अयुक्त और असमञ्जस वचनसे पूछी जानेपर तनिक भी बिचलित न हुई और राजाका वचन समाप्त होनेपर वह सुन्दरी उत्तम वचन कहने लगी।

सुलभा बोली, हे राजन्! गुरुतर अक्षर संयुक्तत्व आदि वक्ष्यमाण नव प्रकारके वाक्य दोष और वक्ष्यमाण काम आदि नव प्रकारके बुद्धिदोषसे रहित तथा अठारह गुणोंसे युक्त सङ्गतार्थ सूक्ष्म वाक्य, पूर्वपक्ष तथा सिद्धान्त पक्षके गुण दोषोंकी संख्या तथा गुणदोषोंके बलाबलका बिचार, बिनिर्णय अर्थात् सिद्धान्त और अनुष्ठान, इन पांचो विषयोंसे संयुक्त होनेसे वाक्य अर्थात् शब्दाख्यप्रमाण रूपसे अभिहित होता है। पद, वाक्य, पदार्थ और वाक्यार्थ इस चार प्रकारके भेदके अनुसार पहले कहे हुए सूक्ष्मादिके पृथक् पृथक् लक्षण सुनो। जब ज्ञेय पदार्थोंके भिन्न भिन्न होनेसे ज्ञान बिभिन्न होता है,

और जिसमें बुद्धि अनेक तरहसे संशय करती है उसीको सूक्ष्म अर्थात् दुर्ज्ञेय बाक्य कहते हैं। किसी विषयका अभिप्राय करके दोष और गुणोंकी विचारके अनुसार बलाबल विचार करनेकी संख्या कहके निश्चय करो और संख्यात गुण दोषोंके बीच यह प्रथम बक्तव्य है, उसी पश्चात् कहना चाहिये। ऐसे बलाबल बिचारको बाक्य-विद पुरुष क्रमयोग कहा करते हैं। धर्म्म, काम, अर्थ, मोक्षविषयमें विशेष रूपसे प्रतिज्ञा करके बाक्यार्थ बिचारकी समाप्ति होनेपर "यही वह सत्य बाक्य है" इस प्रकारके निश्चयको निर्णय करते हैं। हे राजन्! इच्छा द्वेष उत्पन्न हुए दुःखके जरिये जो उद्वेग उत्पन्न होता है अर्थात् इसे अवश्य करना चाहिये और यह अवश्य त्याज्य है, इस कर्त्तव्यता और अकर्त्तव्यता विषयमें जो प्रवृत्ति वा निवृत्ति होती है, उसका ही नाम प्रयोजन है। हे प्रजानाथ! यथाक्रमसे कहे हुए ये सूक्ष्मादि एक अर्थसे पर्य्यवसित होकर पञ्च अङ्गयुक्त बाक्य होता है, इसलिये मेरे बचनके अनुसार उसका निश्चय करो। मैं प्राञ्जल और प्रसिद्ध अर्थसम्पन्न श्लाघ्यविशेषण-युक्त तथा संक्षिप्त श्लेष आदि आठ गुणोंसे पूरित असन्दिग्ध परम उत्तम बचन कहूंगी, जो सब बाक्य कहूंगी, उसमें बहुत अक्षर नहीं हैं, अश्लील अमङ्गल और घृणाकर शब्द नहीं है, वह अनृत, असंस्कृत अथवा धर्म्मकाम और अर्थ, इन त्रिवर्गोंसे बिरुद्ध नहीं है। उसमें अमङ्गल पद नहीं हैं, छन्द वा व्याकरण दोष युक्त शब्द नहीं हैं, क्लिष्ट शब्द अर्थात् बहुत कष्टसे जिसका अर्थ-बोध होता है, वैसा पद नहीं है, और वह निष्प्रयोजन वा युक्तिहीन भी नहीं है। मैं काम, क्रोध, भय, लोभ, दीनता, दर्प, दया, लज्जा और अभिमानके वशमें होकर कुछ बचन न कहूंगी। हे राजन्! वक्ता, श्रोता और बाक्य जब बिवक्षा समयमें अव्यग्रभावसे समान होते हैं, तब बिवक्षित अर्थ प्रकाशित हुआ करता है, कहनेके समय यदि बक्ता श्रोताको अवज्ञा करे और निज प्रयोजनीय विषयको पराये प्रयोजन रूपसे प्रकाश करे तो वह बचन अंकुरित नहीं होता; जो मनुष्य स्वार्थ त्यागके दूसरेके निमित्त प्रकट करता है, उसमें शङ्का उत्पन्न होती है, तथा वैसा बचन भी दोषयुक्त होता है। हे राजन्! जो बक्ता अपने और श्रोताके अविरुद्ध वचन प्रकाश करता है, वह साधारण नहीं है; इसलिये अवि-क्षिप्त चित्त वा एकाग्र होकर वाक्य सम्पत्तिसे युक्त अर्थ सम्पन्न यह बचन तुम्हें सुनना उचित है। हे महाराज! तुमने जो मुझसे "तुम किसकी कन्या हो, कहांसे आई हो" ऐसा पूछा है उसका उत्तर एकाग्रचित्त होकर सुनो। हे राजन्! जैसे जतु और काष्ठ पांशु तथा जलको बूंद परस्पर संश्लिष्ट होती हैं, इस लोकमें प्राणियोंका सम्भव भी वैसा ही है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और पञ्चेन्द्रिय अनेक रूप होकर जतुकाष्ठकी भांति आत्मामें संश्लिष्ट होती हैं। शब्द आदि विषय और श्रवण आदि इन्द्रियां चाहे भिन्न हों, वा संहत हो होवें, उन्हें "तुम कौन हो?" ऐसी बात नहीं पूछी जाती, यह निश्चय है और वे परस्पर अपने तथा परायेको नहीं जानतीं। नेत्र निज रूपको देखनेमें समर्थ नहीं है, कान आप ही अपनेको नहीं जान सकता, ये परस्पर व्यभिचारके जरिये वर्त्तमान नहीं रहते और परस्पर संश्लिष्ट होके भी जल-मिश्रित धूलिकी भांति एक दूसरेको नहीं जान सकते, अर्थात् जैसे सूर्य घट पट आदि बाह्यव-स्तुओंको प्रकाश करता है, वैसे ही आंख, कान आदि इन्द्रियां देहाश्रित होके भी अपने वा दूसरेको प्रकाश नहीं कर सकतीं। ये दूसरे बाह्य गुण अर्थात् प्रकाश आदिकी अपेक्षा किया करती हैं, यह भी मुझसे सुनो।

रूप नेत्र और प्रकाश, ये तीनों दर्शन ज्ञानके सहकारी कारण हुआ करते हैं; जैसा दर्शन ज्ञानका कारण है, श्रवण आदि ज्ञान

और ज्ञेय विषयमें वैसी सहकारिताके बिना ज्ञान नहीं होता। ज्ञान और ज्ञेय पदार्थके बीच मन एक विशेष गुण है, जिसके सहारे जीव सदसत्का विचार करता हैं, उसे ही मन कहते हैं। पञ्चभूत, पञ्चइन्द्रिय और मन, इन ग्यारहोंके अतिरिक्त बुद्धिकी बारहवां गुण कहा जाता है, संशयात्मक बोधव्य विषयमें जीव जिसके सहारे निश्चय करता है, उसे ही बुद्धि कहते हैं। उस बुद्धिके बीच सत्त्वनाम और एक गुण हैं, उसे बुद्धिका उपादान कहा जाता है। रज और तमोगुणके अत्यन्त अभिभव होनेपर सतो गुणकी मध्य वा और किञ्चित अभिभव होनेसे महत्त्व होता है। जन्तु महासत्त्व अथवा अल्प सत्त्व हैं,—जिसके जरिये यह अनुमान किया जाता है, उसे ही सत्त्व कहते हैं। "यह पुरुष मेरा है और यह मेरा नहीं है" जिस सत्त्वके जरिये जीव ऐसा ज्ञान करता है, वह अहङ्कार नाम चोदहवां गुण कहा जाता है। हे राजन्! अहङ्कारका और एक पन्द्रहवां गुण स्मृत हुआ करता है, अर्थात् पञ्चप्राण, आकाश आदि पञ्चभूत, पञ्चेन्द्रिय और मन, इन सोलहों कलाओंकी समग्रता जोकि वासनात्मक जगत् रूप अहङ्कारमें निवास करती है, उसे ही पञ्चदश गुण कहा जाता है। उस वासनामें उसके उपादान स्वरूप त्रिगुणात्मक संघातकी भांति जगत्की अंकुर बीजभूत अविद्या संज्ञक सोलह गुण वर्त्तमान हैं, माया और उसका प्रकाश, ये दोनों गुण उसके आश्रित होरहे हैं, इसलिये माया सत्तरहवीं और उसके प्रकाशको अट्ठारहवें गुण रूपसे गिनना होगा। और सुख, दुःख, जरा, मृत्यु, लाभ, हानि यथाप्रिय, अप्रिय, ये द्वन्द्व योग इक्कीस गुण रूपसे कहे गये हैं, ये सब सुख दुःख आदि प्रकृतिके कार्य्य हैं और इक्कीसके ऊपर दूसरा एक कालनामक गुण है, इसहीमें सब भूतोंको उत्पत्ति और लय हुआ करती है, इसे बीसवें गुणके जरिये संख्यात जानो। इस बीसवें संघात और देहार-म्भक अंशके अतिरिक्त पञ्चमहाभूत उसके अतिरिक्त सत् और असत् भावके सम्बन्धयुक्त प्रकाश दोनों गुणोंमें सम्प्रविष्ट गुण और विधि अर्थात् वासना बीजभूत धर्म्माधर्म्म, शुक्र अर्थात् वासनाका उद्बोधक संस्कारबल अर्थात् वासना विषय प्राप्तिका यत्न इन तीनोंके सङ्ग मिलके और ऊपर कहे हुए सत्ताइसों गुण गिनतीमें तीस होते हैं। ये सब गुण जिसमें वर्त्तमान रहते हैं, उसे शरीर कहा जाता है। निरीश्वर-वादी सांख्य मतवाले पण्डित लोग अव्यक्त अर्थात् प्रकृतिको इन तीसों गुणोंके उपादान रूपसे देखते हैं और स्थूलदर्शी कणाद आदि व्यक्त अर्थात् परमाणु आदिको उक्त गुणोंमें उपादान रूपसे देखते हैं। अव्यक्त ही हो, अथवा व्यक्त परमाणु प्रभृति ही होवे, किम्वा चार्व्वाक मतके अनुसार चार प्रकारके परमाणु ही हों, अध्यात्मवित् पुरुषोंके वे सभी अविरुद्ध हैं, क्योंकि मेरे समान अध्यात्मचिन्तक पुरुष प्रकृतिको ही सब भूतोंके उपादान रूपसे देखते हैं; इस अपरिस्फुटा प्रकृतिने प्रागुक्त तीसों कला रूपसे इस्थल लाभ किया है। हे राजेन्द्र! मैं तुम और दूसरे जो सब जीव हैं, सभी उस ही तीस कलात्मिका प्रकृतिसे पृथक् स्वयं ज्योति-स्वरूप अर्थात् प्रतिस्वरूपमें निवास करनेवाली आत्मा है, इसलिये हम लोगोंका तत्त्वावत्व सिद्ध है। बिन्दुन्यास आदि अवस्था अर्थात् रेतःशेक आदि शुक्रशोणितके संयोगसे हुआ करती है; जिसके मिलनेसे कलन अर्थात् शुक्रशोणितका परस्पर संघटन उत्पन्न होता है। उस कलनसे बुद्बुद्की उत्पत्ति होती है, बुद्बुदसे गुठली उत्पन्न होती है, गुठलीसे अङ्ग उत्पन्न होते हैं और अङ्गसे नख तथा रोम निकला करते हैं।

हे मिथिलाराज! नवम महीना पूरा होने पर जठरस्थ जीवका स्त्री वा पुरुषके चिन्ह अनु-सार नामरूप होता है। उत्पन्न होतेही काल-

वर्गा नख और अङ्गलीयुक्त जो कौमार रूप दीखता है, रूपान्तर होनेपर उसकी प्राप्ति नहीं होती। कौमार रूपसे जवानी और जवानीके अनन्तर बुढ़ापा प्रकाशित हुआ करता है; इत्यादि क्रमसे जो सब रूप उत्पन्न होते हैं, उसके जरिये पहलेके रूपकी प्राप्ति नहीं होती, सब भूतोंके बीच रूप आदिकी प्रकाश करनेवाली परिणामवती कलासे प्रतिक्षणमें ही रूपका विपर्य्यय होरहा है, परन्तु सूक्ष्मताके सबबसे वह मालूम नहीं होता। हे राजन्! दीपशिखाकी गतिके अनुसार प्रत्येक अवस्थामें रूपका उदय और लय होरहा है; परन्तु वह मालूम नहीं होता। जैसे उत्तम घोड़े सदा दौड़ते हैं, उस ही भांति जब कि ऐसे प्रभावयुक्त सब लोक धावित होरहे हैं, तब कौन कहांसे आया है, वा आता नहीं है, यह किसका है वा किसका नहीं है, कहांसे उत्पन्न होता है अथवा जन्म नहीं लेता,—इसका क्या निश्चय है; इस लोकमें जीवका निज अवयवोंके सङ्ग क्या सम्बन्ध है? जब कि अपने अवयवोंके सङ्ग ही अपना सम्बन्ध नहीं है, तब तुमने जो मुझसे "तुम कौन हो, कहांसे आई हो?" इत्यादि प्रश्न किये हैं, वह अत्यन्त ही अयुक्त है। लोहेके सम्बन्धसे सूर्य्यकान्तमणि और घिसनेसे काठसे अग्नि उत्पन्न होती है, वैसे ही कलाओंसे जीव जन्म लिया करते हैं, जैसे तुम अपने शरीरमें आप ही निष्कल आत्माको देखते हो, वैसे ही क्या दूसरे शरीरमें उस ही आत्माको नहीं देखते। यदि अपने और भूखोंके अतिरिक्त समता निश्चय करते हो, तो मुझसे "तुम कौन और किसकी हो" इत्यादि प्रश्न किस लिये किया?

हे मिथिलानाथ! "यह हमारा और यह मेरा नहीं है" जो पुरुष इन द्वन्द्वोंसे मुक्त है, वैसे पुरुषको 'तुम कौन, किसकी हो' इत्यादि पूछनेका क्या प्रयोजन है? जो राजा शत्रु, मित्र उदासीन विजय और सन्धिविग्रहमें विहित कार्य्योंकी क्रिया करता है, उसमें मुक्त लक्षण कौनसा है। धर्म्म, काम तथा अर्थ, ये त्रिवर्ग असंकीर्ण भावसे तीन और धर्म्मार्थ धर्म्म,काम वा कामार्थ धर्म्म, काम संकीर्णभावसे दोनों परस्पर मिलित होके तीन धर्म्मार्थ काम ये तीनों परस्पर संकीर्णभावसे एक; इस ही भांति सब कर्म्मोंमें सात प्रकारसे व्यक्त त्रिवर्गको नहीं जानता और जो त्रिवर्गोंमें आसक्त हो रहा है, उसमें मुक्त लक्षण क्या है? प्रिय, अप्रिय, निर्व्वल और बलवान पुरुषमें जिसकी समदृष्टि नहीं है, उसमें कौनसा मुक्तलक्षण है? हे राजन्! अपथ्यसेवी रोगीके औषध सेवनकी भांति तुम योगयुक्त न होके भी जो मोक्ष विषयका अभिमान करते हो, तुम्हारे मित्रोंको उचित है कि उस अभिमानको छुड़ावें।

हे अरिन्दम! सङ्ग स्थान पत्नी आदिका विचार करके आप ही अपनेमें देखे, इससे भिन्न दूसरा मुक्तका लक्षण और क्या होसक्ता है; मोक्षको अवलम्बन करके जो मनुष्य निवास करता है, उसके विषयमें ये सब तथा दूसरे जो सूक्ष्म सङ्ग स्थान हैं, तथा शयन, उपभोग, भोजन और वस्त्र, इन चारों अङ्गोंसे युक्त जो सब सङ्ग स्थान विद्यमान हैं, वह मुझसे सुनो। जो इस अखण्ड पृथ्वीमण्डलको एक छत्र करके शासन करता है, वही एकमात्र राजा है और एकमात्र वही पुरके बीच वास किया करता है। उस नगर जिसमें कि वह निवास करता है, वैसा उसमें उसका एक गृह रहता है, रात्रिके समय राजा जिसमें शयन करता है, गृहमें वैसी एक शय्या रहती है। उस शय्याका आधा हिस्सा उसके पत्नीके अधिकारमें रहता है, इस ही प्रकार प्रसङ्गके कर्म्मसे राजा फलभागी होता है। ऐसे ही वह भोज्यविषयोंको भोजन आच्छादन परिमेय गुणों और निग्रह विषयोंमें सदा परतन्त्र है, उसे स्वल्पविषयमें भी पूर्ण रीतिसे आसक्त होना पड़ता है, सन्धिवि-

ग्रहके सम्बन्धमें राजाकी स्वतन्त्रता कहां है ? स्त्रियोंके निकट क्रीडा और विहारकालमें राजाकी सदा ही अधीनता है, विचारकार्य्य और मन्त्रि समाजमें उसकी स्वतन्त्रता कहां है। जिस समय वह सबके ऊपर आज्ञा प्रचार करता है, तब उसकी स्वाधीनता होती है, परन्तु उस समयमें भी सब कोई उसे अवश्य कर देते हैं। राजाके शयन करनेकी इच्छा करनेपर कार्य्यार्थी लोग उसे सोने नहीं देते, सोनेमें अनुज्ञात अथवा सोते हुए भी कार्य्यवश उसे उठना पड़ता है, इसलिये वह उस विषयमें भी स्वाधीन नहीं है। स्नान करिये, लीजिये, पीजिये, खाइये, अग्निमें होम करिये, पूजा करिये, आज्ञा दीजिये, सुनिये, इत्यादि वचनसे दूसरे लोग राजाको विवश करते हैं। याचक मनुष्य सदा राजाके निकट जाके धन मांगते हैं, राजा वित्तरक्षक होके महाजनोंको दान करनेमें उत्साहवान नहीं होता, दान करनेसे उसका खजाना खाली होता है, न करनेसे लोग उसके शत्रु होजाते हैं। क्षण भरमें उसके निकट वैराग्यकारक दोष उपस्थित होते हैं, बुद्धिमान शूर और वित्तसम्पन्न लोगोंके एक स्थानमें रहनेसे राजा लोगोंकी शङ्का करता है। जो लोग सदा राजाकी उपासना किया करते हैं, उनसे भयकी सम्भावना न रहने पर भी राजाको भीत होना पड़ता है। हे राजन्! मैंने जिनका विषय कहा है, वे लोग राजाको दोष दिया करते हैं, इसलिये आश्रित लोगोंसे जैसा भय उपस्थित होता है, उसे देखो।

हे जनकराज! अपने अपने घरोंमें सभी राजा हैं, सभी अपने घरके मालिक हैं, सभी अपने घरोंमें निग्रहानिग्रह करतेहुए राजाओंके समान हुआ करते हैं। राजाकी स्त्री, पुत्र, शरीर, खजाना, मित्र और धन सञ्चय, आदिमें दूसरोंको स्त्री पुत्र आदिमें जैसी ममता है, उसे भी उनके सम्बन्धमें वैसी ही प्रीतिहुआ करती है। देश नष्ट होने, नगरके जलने, प्रधान हाथियोंके मरने, इत्यादि लोकके साधारण विषयोंमें राजा मिथ्या ज्ञानसे तापित होता है। इच्छा, द्वेष और भयसे उत्पन्न हुए मानसिक दुःख तथा सिरके रोग आदि पीड़ाओंसे साधारण पुरुषोंकी भांति राजा भी कदाचित मुक्त नहीं होता। सुख दुःख आदिसे उपहत और सब तरहसे शङ्कित होकर रात्रि बिताते हुए अनेक विघ्नोंसे युक्त राज्यभोग किया करता है, इसलिये कौन पुरुष अल्प सुखकर अत्यन्त दुःख जनक, सारहीन, फूसकी अग्निकी ज्वालाके समान तथा फेनके बुद्बुदेके तुल्य राज्य पाके शान्ति लाभ करनेमें समर्थ होता है। हे राजन्! "यह मेरा नगर है, मेरा राज्य है, मेरी सेना है, मेरा खजाना है, और हमारा ही सब है" तुम ऐसा ही ज्ञान किया करते हो, परन्तु ये सब विषय किसीके भी नहीं हैं। मित्र, सेवक, पुर, राज्य, कोष, दण्ड और राजा यह सप्ताङ्गयुक्त राज्य मेरे हाथमें स्थित त्रिदण्डसे समान है। अन्यान्य गुणोंसे युक्त पुरुषोंके बीच कौन किससे अधिक गुणवान हो सकता है। उसके उस समय उस ही उस अङ्गको उत्कृष्ट होते देखा जाता है, जिसके सहारे जो कार्य्य सिद्ध होते हैं, उसहीमें उसकी प्रधानता हुआ करती है। हे नृपोत्तम! सप्ताङ्गयुक्त राज्य स्वतन्त्र है और वृद्धि-क्षय स्थानाख्य नीति शास्त्रोक्त तीनों उदय स्वतन्त्र हैं, ये दसवर्ग मिलके राजाकी भांति राज्य भोग करते हैं। जो राजा महाउत्साह युक्त है, और क्षात्रधर्म्ममें अनुरक्त रहता है, वह दशभाग लाभ होनेसे प्रसन्न होता है, दूसरे राजा दसवें भागकी न्यूनतासे सन्तुष्ट हुआ करते हैं। असाधारण राजा कोई भी नहीं है, और अराजक राजा भी नहीं है, राज्य न रहनेसे धर्म्म नहीं होता, और बिना धर्म्मके मोक्षसुख नहीं मिलता, जो

कुछ पवित्र और परम धर्म्म है। वह राजा तथा राज्यका ही धर्म्म है, जो दक्षिणामें पृथ्वी दान करते हैं, वे राजा अश्वमेध यज्ञके फल-भागी होते हैं।

हे मिथिलाराज! मैं राजाओंके इन सब दुःखकर कर्म्मोंको सौ-हजार बार कह सकती हूं। जबकि मेरी निज देहमें आसक्ति नहीं है, तब पराया परिग्रह किस प्रकारसे सम्भव होगा। जबकि मैं इस प्रकार योगिनी हुई हूं, तब मुझे तुम्हारे शरीर सङ्गके कारण ऐसा वचन कहना उचित नहीं हुआ है। हे राजन्! तुमने पञ्चशिखके मुखसे समस्त मोक्षधर्म्म सुना है—श्रवण, मनन, निदिध्यासन, यम, नियम और परब्रह्ममें एकाग्र भावको जाना है, इससे जब तुम काम क्रोध आदिको पराजय करके मुक्तसङ्ग होरहे हो, तब तुम्हें, छत्र चंवर आदि राजचिन्ह धारण करनेका क्या प्रयोजन है। मुझे बोध होता है, तुमने जो शास्त्र सुना है, उससे तुम्हें ज्ञान नहीं हुआ अथवा दम्भ-वशसे शास्त्रज्ञान किया है, किम्वा शास्त्र सदृश शास्त्राभास सुना होगा। यदि तुम नाममात्र इस लौकिक सम्पत्ति लाभसे प्रतिष्ठित हुआ करते हो, तो प्राकृत पुरुषोंकी भांति तुम भी सर्व्वसङ्ग अवरोधके जरिये बद्ध हुए हो। मैंने जो बुद्धिबलके जरिये तुममें प्रवेश किया, यदि तुम सब भांतिसे मुक्त हुए हो, तो मैंने उस प्रकारसे प्रवेश करके तुम्हारी क्या बुराई की है। यतियोंको सूने स्थानमें ही निवास करनेका नियम है। इसलिये मैं तुम्हारे बोधशून्य बुद्धिस्थलमें प्रवेश करनेसे किसके समीप दोषी हुई हूं। हे पापरहित नरनाथ। मैंने तुम्हें दोनों हाथ, चरण, उरु अथवा दूसरे किसी अवयवके जरिये स्पर्श नहीं किया है। तुम महाकुलमें उत्पन्न हुए लज्जाशील और दीर्घदर्शी हो, इसलिये हम लोगोंने परस्पर जो कुछ सदसत व्यवहार किया है, उसे इस सभाके बीच तुम्हें कहना उचित नहीं है। ये सब ब्राह्मण लोग गुरु और माननीय हैं, तुम भी सबके माननीय हो, इसलिये परस्परके विषयमें परस्परका इस प्रकार गौरव है, इसलिये वक्तव्य वा अवक्तव्य विषयका विशेष रीतिसे विचार न करके स्त्रीपुरुषके सहवास विषयको सभामें प्रकाशित करना तुम्हें अनुचित है। हे मिथिलाराज! जैसे कमलके पत्रमें स्थित जल उसे स्पर्श नहीं करता, वैसे ही मैं भी तुम्हें स्पर्श न करके तुममें निवास करती हूं। मेरे स्पर्श न करनेपर भी यदि तुम स्पर्श ज्ञान किया करते हो, तो इन भिक्षुकोंके जरिये तुम्हारा बीजहीन ज्ञान किस प्रकार उत्पन्न हुआ। तुम गार्हस्थ धर्म्मसे च्युत होके और दुर्ज्ञेय मोक्ष धर्म्मको न जानकर दोनोंके बीचमें पड़के वार्त्तामात्रके अभिज्ञ होरहे हो, वास्तवमें मुक्त नहीं हो। मुक्त पुरुषको मुक्तके सहित और चिदात्मा प्रकृतिके साथ संयोग होनेपर अर्थात् आत्मा और प्रकृतिके संयोगसे वर्ण-सङ्कर नहीं होता। वर्ण और आश्रमोंसे पृथक् रूपसे निर्द्दिष्ट होनेपर जो पुरुष उसको अपृथक् भावसे देखता है, उसके पक्षमें शरीर भिन्न है, और आत्मा पृथक् है, जब मैं इसे प्रत्यक्ष देखती हूं, तब मेरे बुद्धिस्थलके अन्यत्र वर्त्तमान रहनेकी क्या सम्भावना है। करतलके एक स्थलमें यदि कोई पात्र हो, उस पात्रमें दूध और दूधमें मक्खी रहे, तो आश्रित तथा आश्रयके संयोगके पृथकत्वके अनुसार सबमें आश्रित रहती है, परन्तु पात्रमें दुग्ध भाव नहीं रहता, दूध भी मक्खी नहीं है, इसलिये पराश्रय भाव स्वयं प्राप्त होते हैं, आश्रमोंकी विभिन्नता और वर्णोंकी स्वतन्त्रताके हेतु तथा परस्पर पृथकत्वके सबबसे तुम्हारा कहा हुआ वर्णसङ्कर किस प्रकार होसकता। मैं जातिके अनुसार तुमसे उत्तम वर्णवाली नहीं हूं, और वैश्य अथवा शूद्रा भी नहीं हूं। हे राजन्! मैं

तुम्हारी सवर्णा हूं, शुद्ध योनिमें जन्म ग्रहण किया है, और अपने चरित्रको अपवित्र नहीं किया ; बोध होता है, प्रधान नामक राजर्षिका नाम तुमने सुना होगा मैं उन्हींके वंशमें उत्पन्न हुई हूं, मेरा नाम सुलभा है, मेरे पूर्व्व पुरुषोंके यज्ञके समयमें द्रोण, शतशृङ्ग और चक्रद्वार नामक तीनों पर्व्वत देवराजके जरिये इष्टिके स्थानमें निवेशित हुए थे, मैंने वैसे महावंशमें जन्म लेकर अपने समान पति न पाया, तब मोक्ष धर्म्मको शिक्षा लेके नैष्ठिक ब्रह्मचर्य्य अवलम्बन करती हुई सन्न्यासधर्म्म अवलम्बन किया है। मैं कपट सन्न्यासिनी, परस्वहरनेवाली अथवा धर्म्मको सङ्कर करनेवाली नहीं हूं, केवल निज धर्म्ममें रहके व्रत धारण किया है। हे प्रजानाथ! मैं अपनी प्रतिज्ञा विषयमें अस्थिर नहीं हूं, बिना विचारे कोई बात नहीं कहती और विवेचना करके भी तुम्हारे निकट नहीं आई। मैंने कुशलकी अभिलाषिणी होकर और यह सुनके कि मोक्ष धर्म्ममें तुम्हारी बुद्धि विनिविष्ट हुई है,—मोक्षधर्म्म जाननेके लिये इस स्थानमें आई हूं। मैं स्वपक्ष वा परपक्षके बीच निज पक्ष अवलम्बन करके यह वचन नहीं कहती हूं, वरन तुम्हारे ही हितके निमित्त कहती हूं। जो पुरुष मल्लकी भांति अपनी जयके लिये वादश्रम नहीं करता अथवा जो शान्तिस्वरूप परब्रह्ममें उपशान्त होता है, वही युक्त पुरुष है सन्न्यासी लोग जैसे नगरके सूने स्थानमें एक रात्रि निवास करते हैं, वैसे ही मैं तुम्हारे इस शरीरमें एक रात्रि वास करूंगी, हे मिथिलाराज! तुमने मानदायक वचन और आतिथ्यके जरिये मेरी पूजा की है, इसलिये मैं स्वन्दर्शनमें शयन कर प्रसन्न होके कल्ह चली जाऊंगा।

भीष्म बोले, राजा जनक यह सब युक्तियुक्त और प्रयोजन सम्पन्न वचन सुनके उत्तर देनेमें असमर्थ हुए अर्थात् गृहस्थाश्रमको अवलम्बन करनेकी युक्ति अत्यन्त दुर्लभ होती है, सन्न्यास धर्म्म ही कल्याणकारी है, इसलिये सुलभाके मतको ही सिद्धान्त वाक्य जाना।

३२० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे कुरुकुल-धुरन्धर पितामह! पहले समयमें वैयासिकी शुकदेवने किस प्रकार वैराग्य लाभ किया था, इसे सुननेकी इच्छा करता हूं, इस विषयको सुननेके लिये मुझे अत्यन्त ही कौतूहल होरहा है। कार्य्य और कारणमें अनारोपित स्वरूप ब्रह्मतत्व तथा जन्मरहित नारायणसे जिन सब कार्य्योंको आपने बुद्धिसे निश्चय किया है, उसे मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, पिता वेदव्यासने निजपुत्र शुकदेवको प्राकृत चरित्रसे निर्भयचित्त होकर विचरते हुए देखकर उसे समस्त स्वाध्याय अर्थात् पितृ पितामह परम्परासे परिगृहीत वेदमार्ग अध्ययन कराके उपदेश दिया था।

व्यासदेव मुनि बोले, हे पुत्र! तुम धर्म्मको सेवा करो और जितेन्द्रिय होकर प्रचण्ड सर्दी गर्म्मी, भूख-प्यास और वायुको सदा जय करो। सत्य, सरलता, क्रोधहीनता, अनसूया, दम, तपस्या, अहिंसा और अनृशंसताको विधिपूर्व्वक परिपालन करो। अनार्ज्जव विषयोंको त्यागके सत्यधर्म्ममें रत रहो और देवताओं तथा अतिथियोंके भुक्तावशिष्ट अन्नके सहारे जीवनयात्रा निबाहो, भोजनके समयमें स्वादिष्ट वा अस्वादु वस्तुको विवेचना मत करो। हे तात! जब कि शरीर फेनके समान और जीवन पक्षीके समान निवास किया करता है, जब कि प्रिय सहवास अनित्य होते हैं, तब तुम पुरुषार्थको साधनेमें प्रवृत्त क्यों नहीं होते। काम आदि शत्रु, अप्रमत्त जाग्रत और नित्य उद्योगयुक्त होके छिद्र खोज रहे हैं, तुम बालक

हो, इसलिये उसे नहीं समझ सकते, सब दिन गणित परमायु क्षीण और जीवनकालको बीतते देखकर तुम क्यों नहीं देवता और गुरुके शरणागत होते हो। अत्यन्त नास्तिक लोग इस लोकमें मांस और रुधिरकी वृद्धिकी कामना करते हैं, परन्तु वे पारलौकिक कार्य्योंमें प्रसुप्त हुआ करते हैं। जो सब मूढ़-बुद्धि मनुष्य धर्म्मकी असूया करते हैं, उन कुप-थगामी लोगोंका जो लोग अनुसरण किया करते हैं, वे भी पीड़ित होते हैं और जिन सब महाभाग महाप्राण सदा सन्तुष्ट श्रुतिपरायण मनुष्योंने धर्म्मपथमें आरोहण किया है, उन्होंकी उपासना करो और उन्होंसे धर्म्म जिज्ञासा करो। उन धर्म्मदर्शी मनीषियोंके मतको निश्चय करके उत्पथगामी चित्तको परम बुद्धिके जरिये नियमित करो। चैतन्यता-रहित सर्व्व भची लोग इस समय दूसरा दिन दूर है, ऐसा समझके निर्भय होकर कर्म्मभू-मिको अवलोकन करते हैं। धर्म्मस्वरूप सोपान अवलम्बन करके धीरे धीरे उसपर आरूढ़ होते हैं, कोषकारकी भांति आत्माको बांधके कुछ भी नहीं जान सकते हैं। नदीके तटको तोड़नेवाले प्रवाहकी भांति मर्य्यादा तोड़नेवाले नास्तिकोंको दण्ड उद्यत करनेवाले पुरुषके समान विश्वासी होकर बांई और कर रखो। धैर्य्यमयी नौकाको अवलम्बन करके काम, क्रोध, मृत्यु और पञ्च इन्द्रिय जलसे युक्त नदी-रूपी जन्म दुर्गको तरो। जब कि लोग जराके जरिये आहत और मृत्युसे परिपीड़ित होरहे हैं, जब परमायुका हरता हुई रात्रि सफल होके बिती जाती है, तब धर्म्मस्वरूप स्रोतको अवलम्बन करके संसारसे तरो। जब मृत्यु सुखसे सोये हुए मनुष्यको खोज रही है, तब अकस्मात मृत्युग्रस्त होकर मनुष्य किस प्रकार निवृत्ति लाभ कर सकता है। मनुष्यकी अर्थ-सञ्चय करके काम भोगसे परितृप्त न होते होते, मृत्यु इस प्रकार उठा ले जाती है, जैसे बाघिन भेड़को ग्रहण करके चल देती है। अन्धकारमें प्रवेश करना होगा, इसलिये धर्म्मबुद्धिमय महान् दीपशिखाको क्रमसे उज्ज्वल करके यत्न-पूर्व्वक उसे धारण करो। हे पुत्र! अनेक शरीर धारण करके तब इस मनुष्य शरीरमें जीव कदा-चित ब्राह्मणत्व लाभका तन पाता है; तुमने वह ब्राह्मणत्व लाभ किया है, इसलिये उसे परिपालन करो, यह प्रत्यक्ष परिदृश्यमान ब्राह्मण शरीर काम भोगके निमित्त नहीं उत्पन्न होता, यह इस लोकमें तपस्याका क्लेश सहनेके लिये और परलोकमें परम श्रेष्ठ सुख-सम्भोग करनेके निमित्त उत्पन्न होता है। बहुत तपस्यासे ब्राह्मणजन्म मिलता है, इस-लिये उसे प्राप्तकर रति-परायण होके अवहेला करना उचित नहीं है। पितर पितामह पर-म्परासे प्रचलित वेदपाठ, तपस्या और सदा इन्द्रियनिग्रहमें नियुक्त रहके मोक्षार्थी और कुशलपरायण होके उक्त विषयोंमें सर्व्वदा यत्न-वान होना चाहिये। मनुष्योंके यह अवस्था-रूपी घोड़े, अव्यक्त प्रकृति, पूर्व्वोक्त कला समूह रूप शरीर युक्त स्वभावसम्पन्न क्षणकाटि और निमिषरूपी रोमस छेदनयोग्य कृष्ण तथा शुक्ल पक्षरूपी दो नेत्र संयुक्त और मासरूपी अङ्ग-विशिष्ट होकर निरन्तर दौड़ रहे हैं। इन अव-स्थारूपी घोड़ोंको सदा प्रचण्ड वेगसे अदृश्यभा-वसे दौड़ते हुए देखकर यदि तुम्हारे नेत्र अन्धेके समान न हों तो परलोकके विषयको सुनके तुम्हारा मन धर्म्मविषयमें रत होवे।

इस लोकमें जो लोग प्रचलित धर्म्मके विष-यमें स्वेच्छाचार करते हैं और सदा डाह प्रकाश करते हुए अनिष्ट-प्रयोग किया करते हैं, वे लोग यमलोकमें यातना शरीर धारण करके बहुतसी अधर्म्मक्रियाके जरिये क्लेश भोग करते हैं। राजा सदा धर्म्मपरायण और उत्तम अधम वर्णोंका पालक होके सुकृति लोगोंके

पाने योग्य लोकोंको पाता है, वह अनेक प्रकारके शुभ कर्म करके अनेक योनियोंमें अनुगत निरवेद्य मोक्षसुख लाभ किया करता है। जो पुरुष इस लोकमें माता पिता और गुरुजनोंके बचनको टालता है, उसका शरीर छूटनेपर नरकमें भयङ्कर शरीरवाले कुत्ते मुख बाये हुए कौवे महाबली गिद्ध तथा दूसरे बहुतेरे पक्षी और कदर्थ्य कीटसमूह उसे भक्षण करते हैं। स्वयम्भूके जरिये शौच, सन्तोष, तपस्या, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान अहिंसा, सत्य, अस्तेय, व्रताचरण और अपरिग्रह, यह दस प्रकारकी मर्य्यादा निर्द्दिष्ट हुई है, जो पापात्मा पुरुष स्वेच्छापूर्व्वक उस मर्य्यादाको अतिक्रम करते हैं, वे यम भवनरूपी वनमें अवगाहन करते हुए अत्यन्त दुःखसे निवास किया करते हैं। जो मनुष्य लोभसे लोकाप्रिय मिथ्या वचन कहता है, और छलसे ठगहारी चोरी आदि नीच कार्य्योंमें रत होता है, वह नीच कर्म्म करनेवाला पापात्मा परम नरकमें गमन करके बहुत दुःख अनुभव करता है, वह दुष्टात्मा गर्म्मजलवाली वैतरनी नामी महानदीमें स्नान करते हुए तलवारके पत्तोंसे युक्त वनमें विदीर्ण शरीर होकर परशु वनमें सुलाया जाता है, फिर अत्यन्त आर्त्त होकर महा नरकमें पड़के उसमें वास करता है। "तुम ब्रह्मा आदिके स्थानोंको देखकर मैं धन्य हुआ" इत्यादि बड़ाई किया करते हो, परन्तु परम पदको नहीं देखते; शीघ्र ही जरा आवेगी, उसे नहीं समझ सकते हो, इसलिये निश्चिन्त चित्तसे क्यों बैठे हो? मोक्षमार्गमें प्रस्थान करो, सुखको दूर करनेवाला अत्यन्त दारुण महत् भय उत्पन्न होता है, इसलिये मोक्षसाधन विषयमें यत्न करो। मरने पर यमराजके शासन वशसे उनके समीप उपस्थित होगे; इससे अगाड़ीके दुःखके लिये दारुण कृच्छ्र व्रतके जरिये सरलता साधनमें प्रयत्न करो। दुःखोंके जाननेवाले निग्रहा-निग्रहमें समर्थ यमराज मूल बान्धवोंके सहित तुम्हारा जीवन हरेगा; कोई उसे निवारण करनेमें समर्थ न होगा। यमके अगाड़ी वायु प्रबल वेगसे बहेगा और वह वायु अकेले ही तुम्हें उसके निकट पहुंचावेगा, इसलिये जिससे पारलौकिक हित हो, उसहीका अनुष्ठान करो तुम्हारे प्राणको नष्ट करनेवाली वायु जो बहेगी इस समय वह कहां है। और तुम्हें महाभय उपस्थित होनेपर जो सब दिशा बिभ्रान्त होंगी वे भी इस समय कहां हैं?

हे पुत्र! जब तुम समाकुल होके गमन करोगे, उस समय तुम्हारी श्रवणेन्द्रिय निरुद्ध होगी, इसलिये तुम परम उत्कृष्ट समाधि अवलम्बन करो। प्रमाद कर्म्मोंमें लिप्त पहलेके किये हुए शुभाशुभोंको स्मरण करके तुम दुःखित न होगे, केवल आश्रयणीय समाधि अवलम्बन करो। रोगोंकी सहाय कहके मृत्यु बलपूर्व्वक जीवन क्षय होनेके समय तुम्हारे शरीरको भेद करेगी, इसलिये महत् तपस्याका अनुष्ठान करो। मनुष्य देह-गोचर भयङ्कर कामादिरूपी भेड़िये सब भांतिसे दौड़ेंगे, इसलिये पुण्यशीलताके लिये यत्न करो। अकेले अन्धकार अवलोकन करोगे और पहाड़की शिखरपर मरन-चिन्ह स्वरूप हिरण्मय वृक्षोंको देखोगे, इसलिये पुण्य करनेमें शीघ्रता करो। हे पुत्र! कुसङ्ग तथा सुहृत् समान मालूम होनेवाले शत्रुओंके देखनेसे तुम्हारी बुद्धि बिचलित न हो, इसलिये जो परम वस्तु है उसहीकी खोजमें नियुक्त रहो। जिस धनकी रक्षा करनेमें राजभय नहीं है और चोरोंसे जिसमें भय उपस्थित नहीं होता जो धन मरे हुए मनुष्योंको भी परित्याग नहीं करता, उस ही धनको उपार्ज्जन करो। निज कर्म्मके जरिये प्राप्त हुआ जो धन परलोकमें परस्परके निकट बिभक्त नहीं होता, जिसका जो यौतुक धन है, परलोकमें उसेही वह भोग करता है। हे पुत्र!

परलोकमें जो धन उपजीव्य होता है, वही धन दान करो। जिस धनका नाश नहीं है, और जो सदा रहता है, तुम स्वयं उस ही धनका उपार्ज्जन करो। महाजनभुक्त यव पिष्ट बिकार जबतक परिपाक नहीं होता उतनेही समयके बीच तुम शीघ्र ही लयको प्राप्त होगे अर्थात् भोग विषयोंको भोग करके मोच विषयमें यत्न करोगे, इस प्रकार मनन करना उचित नहीं है भोग्य विषय भोग न होतेही मृत्यु भय आके उपस्थित होता है।

जब मनुष्य सङ्कटमें पड़के अकेले ही परलोकमें जाता है, उस समय माता, पुत्र, बान्धव और परिचित प्रिय लोग कोई भी उसका अनुगमन नहीं करते। हे पुत्र! जो कुछ पहलेका शुभाशुभ कर्म्म रहता है, परलोकमें जानेवाले मनुष्यके साथ केवल वही गमन करता है। शुभाशुभ कर्म्मोंके जरिये मनुष्योंके जो कुछ सञ्चित सुवर्ण और रत्न हैं, देह नष्ट होनेके समय वे किसी कार्य्यके साधक नहीं होते। मनुष्योंके परलोक गमन करनेके समय कृत अकृत कर्म्मके साची आत्माके समान और कोई भी नहीं है साची चैतन्यके परलोकमें जानेपर मनुष्य देह-शून्य होता है, ज्ञाननेवसे हृदयाकाशमें प्रवेश कर सकनेसे ही समस्त स्पष्टरूपसे दीख पड़ता है, अग्नि, सूर्य्य और वायु इस लोकमें इस शरीरको अवलम्बन किये हुए हैं, परलोकमें वेही धर्म्मदर्शी साची होते हैं। काम, क्रोध आदि शत्रु प्रकाश्य और गूढ़भावसे जब रातदिन स्पर्श कर रहे हैं, तब तुम केवल स्वधर्म्म पालन करो, परलोकके पथमें बहुतेरे परिपन्थी अर्थात् लोहतुण्ड तथा सेङ्गिये आदि विपक्षमें विद्यमान हैं और वे सब विरूप वा भयङ्कर दंशमक्खियोंके जरिये परिपूरित हैं, इसलिये निज कर्म्मको रचामें यत्न करो; सुकृत कर्म्म परलोकमें गमन किया करता है वह वहांपर बिभक्त नहीं होता, इस लोकमें जो सब कर्म्म किये जाते हैं; परलोकमें वेही कर्म्मजनित फल भोग हुआ करते हैं। अप्सरावृन्द और महर्षि लोग जो सुख भोग करते हैं, वैसे ही सुकृतशाली मनुष्य कामगामी होकर स्वकर्म्मजनित फल भोग किया करते हैं पापरहित कृतबुद्धि और शुद्धयोनिमें उत्पन्न हुए मनुष्य इस लोकमें जिन शुभकर्म्मोंको करते हैं, परलोकमें उनहीका फल प्राप्त होता है। उनमेंसे गृहस्थ धर्म्म-सेतुके जरिये कोई कोई ब्रह्मलोक कोई वृहस्पति लोक और कोई इन्द्रलोकमें गमन करके परम गति पाते हैं। मैं तुम्हें इसी भांति सहस्रसे भी अधिक उपदेश प्रदान कर सकता हूं, किन्तु निग्रहानुग्रहमें समर्थ धर्म्म मनुष्योंको मोहित कर रखता है, तुम्हारी चौबीस बर्ष अवस्था बीती है, अब पचीसवां बर्ष प्रवृत्त हुआ है; अवस्था बीती जारही है, इसलिये धर्म्म सञ्चय करो? प्रमाद गृहवासी अन्तक जब तक इन्द्रिय सेनाकी अन्धत्व आदि दोष निबन्धन स्व-स्वविषयमें भोग हीन नहीं करता है, उतने ही समयके भीतर देह मात्रके जरिये उद्योगी होकर धर्म्मपालनमें शीघ्रता करो। तुम ही पश्चात् गमन करोगे, तुम्हीं आगे जाओगे, जब तुम आत्मज्ञान प्राप्त करोगे, तब तुम्हें शरीरसे क्या प्रयोजन है और पुत्रादिकी ही क्या आवश्यकता है। जब कि भय उपस्थित होनेसे अकेलेही परलोकमें जाना होता है, तब परलोकके हितकर केवल धर्म्म ज्ञानको ही निधिकी भांति गोपन करके अवलम्बन करो। जब कि वह असङ्गवान मृत्यु, बालक, युवा और बड़ोंके सहित मनुष्योंको अवश्य ही हरण करती है, तब धर्म्मका सहारा अवलम्बन करो।

हे पुत्र! मैंने निज दर्शन और अनुमानके अनुसार तुम्हारे योग्य यह निदर्शन कहा है, इसलिये मैंने जो कुछ बर्णन किया, तुम वैसाही आचरण करो। जो लोग निज कर्म्मके जरिये देहकी पुष्टि साधन करते हैं और जो किसी

फलकी इच्छासे दान किया करते हैं, वेही एकमात्र अज्ञान और बिपरीत ज्ञान मोहादि जनित दुःख प्रभृतिके सहित संयुक्त हुआ करते हैं। जो लोग शुभ कार्य्योंको सिद्ध करते हैं, उनका तत्त्वमसि वाक्य जनित ज्ञान अखण्ड ब्रह्माण्डमय व्याप्त होता है, अर्थात् वे सर्व्वज्ञ होते हैं, सर्व्वज्ञता ही मोक्षके निमित्त परम पुरुषार्थ प्रदर्शित करती है, इसलिये कृतघ्न पुरुषको जो उपदेश किया जाता है, वही सार्थक होता है, कृतघ्न मनुष्यको यह सब उपदेश प्रदान करनेसे बिफल होता है। ग्रामके बीच स्त्री पुत्र आदि परिवारसे घिरकर निवास करनेकी जो अभिलाषा है, वही बन्धनरूपी रसरी है, सुकृतशाली मनुष्य इस बन्धन रज्जुको काटके गमन करते हैं और पापकर्म्म करनेवाले मनुष्य उसे काटनेमें समर्थ नहीं होते।

हे पुत्र! जब तुम परलोकमें गमन करोगे, तब धन, सम्पत्ति, बन्धु-बान्धव और पुत्र-पौत्रादिसे क्या प्रयोजन है? हृदयाकाशके बीच आत्माको अन्वेषण करो, तुम्हारे पितामह प्रपितामह कहां गये हैं। जो कल्ह करना होगा, उसे आज पूरा करो और अपरान्हमें जो करना हो, उसे पूर्व्वान्हमें सिद्ध करो; मनुष्यके कर्त्तव्य कार्य्य सिद्ध हों, वा न हों मृत्यु इसके लिये प्रतीक्षा नहीं करती। मनुष्य शरीर नष्ट होनेपर स्वजन सुहृत् और बान्धव लोग उस मृत शरीरका अनुगमन करके उसे अग्निमें डालकर निवृत्त होते हैं, इसलिये तुम आलसहीन और विश्वस्त रूपसे परमपद पानेके अभिलाषी होकर पापबुद्धि निर्द्दयी नास्तिकोंका पीछे करो, जब कि लोग कालके जरिये इस प्रकारसे पीड़ित और सब भांतिसे नष्ट हो रहे हैं, तब तुम महत् धैर्य्य अवलम्बन करके सब प्रयत्नसे धर्म्माचरण करो। जो मनुष्य इस ही भांति मोक्षपथ देखनेके उपायको पूर्णरीतिसे जानता है, वह इस लोकमें सब भांतिसे स्वधर्म्माचरण करके परलोकमें सुखभोग करता है। देह नाश होनेसे मरण नहीं होता, इसे जानके जो लोग शिष्टजनोंके समादृत पथमें वर्त्तमान रहते हैं, उनका विनाश नहीं है। जो धर्म्मकी वृद्धि करते हैं, वेही पण्डित हैं और जो पुरुष धर्म्मसे च्युत होता है वह मोहग्रस्त हुआ करता है। प्रयोक्ता जैसा कर्म्म करता है, कर्म्मपथमें प्रयुक्त निज शुभाशुभ कर्म्मोंका फल उस ही भांतिसे पाता है। हीनकर्म्म करनेवाला मनुष्य निरयगामी होता है और धर्म्म करनेवाले मनुष्य सुरपुरमें जाते हैं। और स्वर्गके सोपान स्वरूप दुर्लभ मनुष्य जन्म पाके आत्माको उस ही भांतिसे समाहित करे; जिससे कि फिर भ्रष्ट होना न पड़े। जिसकी बुद्धि स्वर्गमार्गकी अनुसारिणी होकर धर्म्मकी अतिक्रम नहीं करती, उस पुत्र-पौत्र प्रभृतिके अशोचनीय मनुष्यको लोग पुण्यकर्म्मा कहा करते हैं। जिसकी बुद्धि अबाधित होकर निश्चय अवलम्बन करती है, स्वर्गमें उसे स्थानाभाव नहीं होता और उसे महत् भय भी नहीं होता। जिसने तपोवनमें जन्म लेकर उसही स्थानमें प्राणत्याग किया है, उन काम भोगसे अनभिज्ञ तपस्वियोंके धर्म्म अत्यन्त अल्प हैं और जो लोग भोग बिषयोंका त्यागके शारीरिक क्लेश आदिके जरिये तपस्याचरण करते हैं, उन्हें कुछ भी अप्राप्य नहीं है, वही फल सुझे सम्मत है।

सहस्रों माता, पिता, सैकड़ों स्त्री-पुत्र, अनागत और अतीत होते हैं, वे किसके हैं, और हम लोग ही किसके हैं। मैं अकेला हूं, मेरा कोई नहीं है, मैं भी दूसरे किसीका नहीं हूं, मैं जिसका हूं, ऐसा किसीको भी नहीं देखता और जो मेरा है, उसे भी नहीं देखता। तुम्हारे जरिये उनका कोई कार्य्य नहीं है और न उनके जरिये तुम्हारा ही कुछ कार्य्य है; उन्होंने अपने किये हुए कर्म्मोंके जरिये जन्म ग्रहण किया है, तुम भी निज कर्म्मोंके सहारे

गमन करोगे। इस लोकमें धनवान पुरुषोंके स्वजनसमूह स्वजनोंकी भांति व्यवहार करते हैं और दरिद्रोंके जीवित रहते ही उनके सब स्वजन बिनष्ट होते हैं। मनुष्य प्यारी स्त्रीके अनुरोधसे अशुभ कर्म्म सञ्चय करता है, उसहीसे इस लोक और परलोकमें क्लेश मिलता है। हे पुत्र! जब जीवोंको अपने कर्म्मोंके जरिये बिच्छिन्न देखते हो, तब मैंने जो सब कथा कही है, तुम उसहीके अनुसार आचरण करो। यह सब आलोचना करके जो लोग कर्म्मभूमिको अवलोकन करते हैं और जिन्हें परलोकमें सद्गति मिलनेकी बहुत अभिलाषा रहती है, उन्हें शुभ आचरण करना चाहिये। मास और ऋतुओंकी संज्ञा परिवर्त्तन करनेवाला खकर्म्म निष्पत्ति फलके साची सूर्य्यस्वरूप अग्नि और दिनरातरूपी काठके जरिये काल सब भूतोंको बलपूर्व्वक पका रहा है। जो धन किसीको दान नहीं किया जाता और न भोग ही किया जाता है, उस धनसे क्या प्रयोजन है? जिसके जरिये शत्रुओंको बाधित नहीं किया जाता, वैसे शास्त्रज्ञानका क्या प्रयोजन है; और जिसके जरिये जितेन्द्रिय और वशीभूत न होसके, वैसी आत्मासे ही क्या आवश्यक है?

भीष्म बोले, द्वैपायनके कहे हुए ऐसे हित-वाक्यको सुनके शुकदेव पिताको परित्याग कर मोक्षोपदेशकके निकट गये।

३२१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! दान, यज्ञ, तपस्या और गुरुसेवाके विषय यदि आपको मालूम हों, तो उसे मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, मन अनर्थयुक्त बुद्धिके जरिये पापमें निविष्ट होता है, अन्तमें निज कर्म्मोंको कलुषित करके महाक्लेशमें पतित हुआ करता है। पापशील दरिद्र लोग एक दुर्भिक्ष निवा-रित न होते ही दूसरे दुर्भिक्षसे, एक क्लेशसे न छूटते ही दूसरे क्लेशसे, एक भयके शान्त न होते ही दूसरे भयसे आविष्ट होते हैं, वे लोग मृतकसे भी अधिक अपदार्थ हैं। और श्रद्धा-शील, दान्त, शुभ कर्म्म करनेवाले धनवान लोग एक उत्सवसे दूसरे उत्सवमें स्वर्गसे स्वर्गान्तरमें और सुखसे सुखान्तरमें गमन करते हैं।

जो स्थान हिंसक जन्तु तथा हाथी आदिके जरिये दुर्गम है और जिस स्थलमें सांप वा चोर आदिका भय विद्यमान है, वहांपर दूसरेकी बात तो दूर रहे, नास्तिक लोग भी हस्तप्राप्य प्रदेशमें अग्रसर नहीं होते, जो लोग देवता, अतिथि और साधुओंको प्रिय समझते हैं और वदान्य होकर दक्षिणा दान करते हैं, वेही बुद्धिमान मनुष्योंके मङ्गलास्पद पथमें निवास किया करते हैं। धान्यके बीच पुलाक अर्थात् तुच्छ धान्य और पक्षियोंमें जैसे पूत्यण्ड अर्थात् अत्यन्त क्षुद्र पतङ्ग बिशेष गणनीय नहीं हैं, वैसे ही जिनकी धर्म्मविषयमें श्रद्धा नहीं है, वे मनुष्योंके बीच नहीं गिने जाते, जो पुरुष जैसा कर्म्म करता है, उसके अत्यन्त दौड़नेपर भी वह कर्म्म उसके साथ दौड़ता है और कृतकर्म्मा मनुष्यके सोते रहनेपर भी कर्म्म उसके साथ शयन करता है, स्थित रहनेपर भी पाप उसके निकट निवास करता है, दौड़नेपर भी उसके सङ्ग दौड़ता है। जो पुरुष कर्म्म करता है, उस कृतकर्म्मा पुरुषको छायाकी भांति पाप उसका सङ्ग नहीं छोड़ता। जिसके जरिये जिस भांतिसे जो जो कर्म्म पहले किये जाते हैं, उत्तरकालमें जीव अपने किये हुए उन्हीं कर्म्मोंको भोग किया करता है। समान कर्म्म विक्षेप बिधान और परिरक्षायुक्त, इन सबको काल सब प्रका-रसे आकर्षण करता है, जैसे फूल फल अपने समयको अतिक्रम नहीं करते, पहलेके किये हुए कर्म्म भी वैसे ही हैं। मान, अपमान, लाभ, हानि, क्षय, अक्षय, ये सब प्रकृत और

निवृत्त होते हैं, सब ही पद पदमें नष्ट हुआ करते हैं।

जीव गर्भशय्या ग्रहण करते ही पूर्व्वदेह सम्बन्धीय अपने किये हुए सुख दुःखको भोग करता है। बालक, युवा अथवा वृद्ध होकर जो शुभाशुभ कर्म्म करता है, जन्म जन्म उस ही अवस्थामें उन पुण्य-पापोंको भोग किया करता है। सहस्र गऊके बीच जैसे बछड़ा अपनी माताका अनुसरण करता है, वैसे ही पहलेके किये हुए कर्म्म कर्त्ताका अनुगमन किया करते हैं। जैसे मैले वस्त्र जलसे साफ होते हैं, वैसे ही जो लोग उपवासके जरिये शरीरको सन्तप्त करते हैं उन्हें बहुत समयके लिये अनन्त सुख प्राप्त होता है। हे महाबुद्धिमान्! जिसके पाप धर्म्माचरणसे धोये गये हैं, उनके बहुत समय-तक सेवित तपस्याके जरिये सब मनोरथ पूर्ण रीतिसे सिद्ध हुआ करते हैं। जैसे आकाशमें पक्षियोंके और जलमें मछलियोंके पद नहीं दीखते, पुण्य करनेवाले लोगोंकी गति भी वैसी ही है। दूसरी कथा कहनेकी आवश्यकता नहीं है, क्यों कि बहुत वाक्य व्यय करनेसे व्यतिक्रम होजाता है, सार वचन यही है, कि अपने अनुरूप मनोहर हितका अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये।

३२२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! महातपस्वी शुकदेव किस प्रकार वेदव्याससे उत्पन्न हुए थे और किस प्रकार परम सिद्धि लाभ की थी; आप मेरे निकट उसे ही वर्णन करिये। तपस्वी वेदव्यासने कौनसी स्त्रीके जरिये शुकदेवको उत्पन्न किया था, शुकदेवकी माता कौन है और किस प्रकार उस महात्माका उत्तम जन्म हुआ था, मैं उसे नहीं जानता। और बालक होनेपर भी इस लोकमें जो अन्य किसी दूसरे पुरुषसे सम्भव नहीं होता, वैसे सूक्ष्म ज्ञानमें किस प्रकार उनकी बुद्धि तत्पर हुई थी। हे महाबुद्धिमान्! इसे मैं बिस्तारपूर्व्वक सुननेकी इच्छा करता हूं, इस अत्यन्त उत्तम अमृत समान विषयको सुनके मुझे किसी भांति तृप्ति नहीं होती है। हे पितामह! इसलिये महानुभाव शुकदेवका माहात्म्य आत्मयोग और बिज्ञानके बिषयको आप मेरे समीप बिस्तारपूर्व्वक वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे पाण्डु-नन्दन! ऋषि लोग अवस्थासूचक वर्ष, जरा आदिके क्लेश कदम्बकी परिपक्कता वित्त अथवा बन्धुजनोंके सहारे धर्म्मोपार्ज्जन नहीं करते। उनके बीच जिन लोगोंने गुरुमुखसे छहों अङ्गके सहित समस्त वेद अध्ययन किये हैं, हमारे मतमें वेही महान् हैं, तुम मुझसे जो कुछ पूछते हो, उन सबकाही मूल तपस्या है, इन्द्रियोंको संयम करनेसे ही वह तपस्या होती है, अन्यथा किसी प्रकारसे भी उसकी सम्भावना नहीं होती। मनुष्य इन्द्रियोंमें आसक्त होनेसे दोषभागी होता है, और उन इन्द्रियोंको संयम कर सकनेसे ही सिद्धि लाभ किया करता है। हे तात! सहस्रों अश्वमेध और सैकड़ों बाजपेय यज्ञके फल इन्द्रिय-संयम स्वरूप योगके एक अंशके समान भी नहीं हैं। अब मैं अकृतात्मा पुरुषोंसे दुर्ज्ञेय शुकदेवके जन्म योग फल और श्रेष्ठगतिके बिषय तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं, सुनो। पहले समयमें कर्णिकाके बनसे परिपूरित सुमेरु पर्व्वतकी शिखरपर भगवान् भूतनाथ महादेव भयङ्कर भूतोंसे घिर कर बिहार करते थे, शैलराज-पुत्री भवानी भी वहां पर निवास करती थीं। उस समय कृष्णद्वैपायनने वहां पर दिव्य तपस्या की थी। हे कुरुसत्तम! योग-धर्म्म परायण व्यासने योगबलसे आत्मामें आविष्ट करके पुत्रके ही निमित्त वह तपस्या की थी। हे राजन्! अग्नि, भूमि, जल, वायु और आकाशके समान

मेरा पुत्र धैर्य्यशाली हो, उनका ऐसाही अभिप्राय था। उन्होंने अत्यन्त वृहत् तपस्या अवलम्बन करके इस ही भांति सङ्कल्प और योगके जरिये अकृतात्म-मनुष्योंसे दुष्प्राप्य देवेश्वरके निकट वह मांगाथा। वह अनेक रूपसे युक्त उमापति महादेवकी आराधना करते हुए एक सौ वर्ष तक वायु पीके रहे थे। उस स्थानमें समस्त ब्रह्मर्षि, राजर्षि, लोकपाल, साध्य, वसु, आदित्य, रुद्रगण, सूर्य्य, चन्द्रमा, इन्द्र तथा वायुगण, समुद्र और समस्त नदियें, दोनों अश्विनीकुमार सब देवता, गन्धर्व्व, नारद और पर्व्वत मुनि, गन्धर्व्वराज विश्वावसु, सिद्ध और अप्सरावृन्द उस महादेवकी उपासना करती थीं। जैसे चन्द्रमा चन्द्रिकाके जरिये शोभायमान होता है, उस स्थानमें रुद्रदेव कर्णिकाकी कुसुममयी मनोहारिणी माला पहरके उस ही भांति शोभायुक्त हुए थे।

अमरणधर्म्मा महर्षि कृष्ण द्वैपायनने उस देव और देवर्षियोंसे परिपूरित दिव्य रमणीय वनमें पुत्रके निमित्त परम योग अवलम्बन किया था। उस समय उनकी प्राणवायु निर्व्वल न हुई और किसी प्रकारकी ग्लानि भी उत्पन्न नहीं हुई। उनका वैसा भावस्वर्ग, मर्त्त्य पाताल, इन तीनों लोकोंमें अत्यन्त अद्भुत मालूम हुआ था। उस योगयुक्त अत्यन्त तेजस्वी द्वैपायनका तेजस्वी अग्निशिखा सदृश जटामण्डल प्रज्वलित होते दीख पड़ा था। भगवान मार्कण्डेयने इस विषयको मेरे समीप कहा था। वह सदा मेरे समीप देवताओंके सब चरित्र कहते थे। हे तात! अबतक भी महात्मा कृष्णद्वैपायनकी तपस्याके जरिये प्रदीप्त जटा अग्निवर्णा रूपसे प्रकाशित हैं। हे भारत! उनकी ऐसी भक्ति और तपस्यासे महेश्वर प्रसन्न होके प्रकट हुए। भगवान त्रिलोचन उस समय हंसके बोले, हे द्वैपायन! तुम जैसे पुत्रकी कामना करते हो, तुम्हारे वैसा ही पुत्र होगा। जैसे अग्नि, वायु और आकाश स्वतः शुद्ध हैं, तुम्हारा सुन्दर महान् पुत्र भी उस ही प्रकार शुद्ध होगा। तुम्हारा पुत्र तद्भावभावी अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूं, ऐसे ही आशय विशिष्ट होगा और केवल ब्रह्म भावनामात्र ही न करके तद्बुद्धि अर्थात् परब्रह्ममें ही निश्चय बुद्धि निवेश करेगा, तदात्मा अर्थात उसहीमें चित्त समर्पण करेगा, तदपाश्रय अर्थात् उसहीमें स्थिर रहेगा तथा निज तेजके सहारे तीनों लोकोंको परिपूरित करके यश लाभ करेगा।

३२३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, सत्यवती पुत्र महादेवसे वह उत्तम वर पाके अग्नि उत्पन्न करनेकी अभिलाषासे दो अरणी ग्रहण करके मथने लगे। हे राजन्! अनन्तर भगवान ऋषि निज तेजप्रभावसे परम रूपवती घृताची नाम अप्सराको देखा। हे युधिष्ठिर! उस वनके बीच भगवान् व्यासदेव अप्सराको देखके सहसा कामसे मोहित हुए। हे महाराज! वह घृताची भी उस समय व्यासदेवको कामाकुलचित्त देखकर शुकी होके उनके निकट उपस्थित हुई। वह उस अप्सराको रूपान्तरके जरिये छिपी हुई देखके सर्व्वावयवव्यापी शरीरज कामके अनुगत हुए। महामुनि वेदव्यास महत् यत्नके जरिये हृदयस्थित कामवेगको निग्रह करनेके लिये यत्न करके विकृत मनको नियमित करनेमें समर्थ न हुए। उनके अन्तःकरणमें कामभावका उद्रेक होने पर घृताचीको सुन्दरताईने उसे हरण किया था; अग्नि उत्पन्न करनेमें मन लगाके अत्यन्त प्रयत्नसे कामवेग शान्त करनेमें उद्यत हुए, तौभी सहसा अरणीके बीच उनका वीर्य्य स्खलित हुआ। द्विजसत्तम ब्रह्मर्षि वेदव्यास अविशङ्कित चित्तसे पहलेकी भांति अरणी मथने लगे। हे महाराज! उस अरणीके बीच

शुकदेवने जन्म लिया, इस ही निमित्त वह महायोगी परमर्षि अरणी गर्भसे उत्पन्न होने पर शुक्रके रकारको परित्याग कर शुक नामसे विख्यात हुए। जैसे अध्वरमें समिद्ध अग्नि हव्य ढोती हुई सुशोभित होती है, वैसे ही शुकदेव अपने तेजसे प्रज्वलित होके उत्पन्न हुए। हे कुरुकुल-धुरन्धर! वह पिताके परम उत्कृष्ट रूप और वर्ण धारण करके उस समय धूमरहित अग्निकी भांति प्रकाशित हुए।

हे जननाथ! नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गाने मूर्त्तिमती होकर सुमेरु पर्व्वतके ऊपर आगमन कर निज जलसे उन्हें स्नान कराया। हे राजेन्द्र! महानुभव शुकके निमित्त आकाशसे पृथ्वीपर दण्ड और कृष्ण मृगचर्म्म गिरा गन्धर्व्व लोग बार बार गाने और अप्सरा नाचनेमें प्रवृत्त हुईं तथा महाशब्दसे युक्त देवताओंके नगाड़े बजने लगे। गन्धर्व्वराज विश्वावसु, तुम्बुरु, नारद और हाहा हूहू नाम दोनों गन्धर्व्व उस शुकदेवकी स्तुति करने लगे। इन्द्र आदि सब लोकपाल, देवता, वृन्द, देवर्षि और महर्षि लोग वहां उपस्थित हुए वायु स्वर्गीं फलोंकी वर्षा करने लगे। स्थावर जङ्गम समस्त जगत् आनन्दित हुआ। महानुभाव महातेजस्वी महादेवने देवीके सहित स्वयं प्रीतिपूर्व्वक विधिके अनुसार उत्पन्न होते ही मुनिपुत्रका उपनयन संस्कार करके उसे अपना शिष्य किया। हे राजन्! देवराज इन्द्रने प्रीतिपूर्व्वक उन्हें दिव्य और अद्भुत दर्शन कमण्डलु तथा देवासन आदि प्रदान किये। हे भरतकुल तिलक! हंस शतपत्र अर्थात् दार्व्वाघाट नाम पक्षी विशेष, सारस, शुक और स्वर्णचातक आदि सहस्रों पक्षी उनकी प्रदक्षिणा करने लगे। अनन्तर महातेजस्वी अरणीसे उत्पन्न हुए मेधावी शुकदेव दिव्य जन्म पाके उस ही स्थानमें व्रतचारी और सावधान होकर निवास करने लगे। हे महाराज! रहस्य और संग्रहके सहित जैसे समस्त वेद उनके पिताके निकट प्रकाशित हुआ था, वैसे ही उत्पन्न होते ही सब वेद उनके समीप उपस्थित हुए। उन्होंने धर्म्मकी चिन्ता कर वेद और वेदाङ्गोंके भाष्यकी जाननेकी इच्छा करके बृहस्पतिको उपाध्याय रूपसे वरण किया। शुकदेवने निखिल रहस्य और संग्रहके सहित सब वेद सारे इतिहास और राज शास्त्रोंको पढ़के गुरुदक्षिणा दान कर समावृत्त अर्थात् गुरुकुलसे प्रतिनिवृत्त हुए। उस महामुनिने ब्रह्मचारी और समाहित होकर उग्र तपस्या आरम्भ की। महा तपस्वी शुकदेव बालक अवस्थामें ही ज्ञान और तपस्याके कारण देवता तथा ऋषियोंके मन्त्रणीय वा माननीय हुए। हे नरनाथ! मोक्ष धर्म्मदर्शी उस शुकदेवकी बुद्धि किसी प्रकारसे भी गार्हस्थ्यमूलक तीनों आश्रमोंमें अनुरक्त नहीं हुई।

३२४ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, शुकदेव मोक्ष धर्म्मकी उपादेयता जानके पिताके निकट गये, उस कल्याणकी इच्छा करनेवाले मुनिने विनययुक्त हो पिताको प्रणाम करके कहा, हे भगवन्! आप मोक्ष-धर्म्म वर्णन करनेमें अत्यन्त विज्ञ हैं। हे प्रभु! इसलिये जिस प्रकार मेरे मनमें शान्तिका सम्बन्ध हो, आप उसका उपाय वर्णन करिये। महर्षि वेदव्यास पुत्रका वचन सुनके उससे बोले, हे पुत्र! तुम मेरे समीप मोक्षशास्त्र और विविध धर्म्मशास्त्र अध्ययन करो।

हे भारत! धार्म्मिकप्रवर शुकदेवने पिताकी आज्ञानुसार निखिल योग और कपिलप्रोक्त सब शास्त्र सीखे। जब वेदव्यासने ब्रह्म तुल्य पराक्रमयुक्त विशारद पुत्रको ब्राह्मी श्रीसे संयुक्त जाना, तब उससे बोले, "तुम मिथिलाराज जनकके समीप जाओ; वह तुमसे निखिल मोक्षशास्त्रका अर्थ कहेंगे।" हे राजन्! शुक-

देवने पिताकी आज्ञा पाके मोक्षपरायण जनकके निकट धर्म्मनिष्ठा पूछनेके लिये मिथिला नगरमें गये। जानेके समय पिताने पुत्रसे यह वचन कहा, कि तुम अन्तरिक्षचर प्रभावके जरिये मत जाओ, विस्मययुक्त न होकर मानुषगम्य मार्गसे गमन करो। तुम सुखकी खोज न करके सरल भावसे गमन करना, किसी विषयका विशेष अनुसन्धान न करना, क्योंकि जो लोग विशेष खोज करनेवाले हैं, वेही विषयोंमें आसक्त होते हैं। उस यजमान नरनाथके निकट तुम अहंकार न करना, तुम उनके वशीभूत होके रहना; तब वह तुम्हारे सन्देहको दूर करेंगे। वह मोक्षशास्त्र विशारद धर्म्मज्ञ राजा मेरे यजमान हैं, इसलिये वह जैसा कहेंगे, तुम निःशङ्क चित्तसे वैसा ही करना।

धर्म्मात्मा मुनि पिताका ऐसा वचन सुन मिथिला-नगरमें गये। उन्होंने आकाशमार्गसे गमन करनेमें समर्थ होनेपर भी पैदल ही समुद्रके सहित पृथ्वीको अतिक्रम किया। पहाड़, नदी, तीर्थ अनेक सर्पोंसे परिपूरित अटवी तथा तालावोंको अतिक्रम करके धीरे धीरे इलावृतवर्ष, हरिवर्ष और हैमवत-वर्ष परित्याग करके भारत वर्षमें उपस्थित हुए। वह महामुनि चीन, हून आदि विशेष जातिके जरिये सेवित विविध देशोंको देखते हुए इस आर्य्यावर्त्त देशमें आये! जैसे आकाशगामी सूर्य्य अन्तरिक्षमें विचरता है, वैसे ही वह पिताके वचनके अनुसार उस ही विषयकी चिन्ता करते हुए अविश्रान्त चित्तसे गमन करने लगे। उन्होंने विविध समृद्धिशाली गांव, नगर और विचित्र रत्नोंको तुच्छ समझके देख कर भी उस ओर ध्यान न दिया; मार्गमें चलते चलते रमणीय बगीचा, देवालय और पवित्र तीर्थोंको अतिक्रम किया। वह थोड़े ही समयमें महानुभाव धर्म्मराज जनकके रक्षित विदेह राज्यमें उपस्थित हुए। वहां अनेक अन्न, रस आदि भोजनकी सामग्रियोंसे पूरित सब गांव, समृद्ध पल्ली तथा अनेक गावोंसे युक्त पल्लियोंको देखते हुए शालि धान्य और यव तृणसे युक्त हंस सारस सेवित, सैकड़ों शोभाशालिनी कमलिनियोंसे अलंकृत समृद्धिवान् लोगोंसे युक्त विदेहदेशको नांघके रमणीय और समृद्धिवान् मिथिलाके उपवनमें उपस्थित हुए। मिथिला नगर हाथी घोड़ों और नर नारियोंसे परिपूरित होने पर भी इन्द्रिय-विजयी शुकदेव उसे अनादरके सहित देखते हुए गमन करने लगे। पिताने उन्हें जो उपदेश दिया था, मन ही मन उस ही प्रश्नभारको ढोते और मोक्ष विषयकी चिन्ता करते हुए वह प्रसन्न चित्त आत्माराम मिथिला राजधानीमें पहुंचे, वह राजधानीके द्वारपर आके द्वारपालोंसे पूछे जानेपर कुछ देरतक ध्यानपरायण और योग अवलम्बन करके खड़े रहे; फिर उन लोगोंको विदित होके राजपुरमें प्रवेश किया समृद्धिवान लोगोंसे युक्त राजपथमें पहुंचके धीरे धीरे राजस्थानके निकटवर्त्ती होकर उसमें प्रवेश किया, राजभवनमें प्रवेश करते ही द्वारपालोंने कठोर-वाक्यसे उन्हें भीतर जानेके लिये निषेध किया। शुकदेव उस समय क्रोध रहित होकर वहां ही खड़े रहे, धूपके क्लेश, मार्गको थकावट और भूख प्यासके श्रमसे वह दुःखी वा ग्लानियुक्त न हुए; और धूपकी गर्म्मीसे भी हटके निवास न किया; द्वारपालोंके बीच एक पुरुष सुकदेवको मध्यान्हकालके सूर्य्यकी भांति स्थित देखकर दुःखी हुआ। अनन्तर उस द्वारपालने हाथ जोड़के विधिपूर्व्वक सम्मान करके उन्हें प्रणाम कर राजभवनकी पहली कक्षामें लेगया। हे तात! छाया और धूपको समान जाननेवाले महातेजस्वी शुकदेव उस प्रथम कक्षामें बैठके मोक्षकी चिन्ता करने लगे। मुहूर्त्तभरके बीच राजमन्त्री आके उन्हें दूसरी कक्षामें लिवा ले गया। वहां अन्तःपुरके समीप रमणीय ताला-

वसे युक्त, फूले हुए वृक्षोंसे शोभित, चैत्ररथके समान सुन्दर विस्तीर्ण प्रमदावनमें शुकदेवको प्रवेशित करके उन्हें आसन देनेके लिये स्त्रियोंको आज्ञा देकर मन्त्री वहांसे निकल आया। अनन्तर उत्तम वेषवाली, ऊंचे नितम्ब देखनेमें प्रिय, सूच्म लाल अम्बर पहरनेवाली, तपाये हुए सुवर्णके आभूषणोंसे युक्त, बोलनेमें प्रवीण, नृत्यगीतिमें निपुण विचारके बोलनेवाली अप्सराओंकी भांति रूपशालिनी कामकलामें निपुण, भावज्ञ और सब विषयोंको पूर्णरीतिसे जाननेवाली पचास तरुणी बारवनिता उनके निकट उपस्थित हुईं। उन स्त्रियोंने उन्हें पाद्य अर्घ देकर परम सम्मानके सहित उनकी पूजा की और यथा समयपर उत्तम स्वादयुक्त अन्नदान करके उन्हें तृप्त किया। हे भारत! उनके भोजन कर चुकनेपर उन बार बार बनिताओंने एक एक करके उन्हें प्रमदावन दिखाया। वे सब हंसती खेलती और गाती हुई उस उदार प्रकृतिवाले शुकदेवकी सेवा करने लगी। शुद्धबुद्धि शङ्कारहित, स्वकर्मकारी क्रोध जीतनेवाले, इन्द्रियोंको वशमें करनेवाले अरणीसे उत्पन्न शुकदेव उससे हर्षित वा कुपित न हुए। उन बारवनिताओंने उन्हें देवयोग्य रत्नभूषित बहुमूल्य वस्त्रोंसे युक्त दिव्य शय्या और आसन प्रदान किया। शुकदेव मुनि पैर धोकर सन्ध्योपासना समाप्त करके मोक्षविषयकी चिन्ता करते हुए पवित्र आसनपर बैठे। उन्होंने पूर्व रात्रिमें ध्यानपरायण रहके मध्यरात्रि यथा न्यायसे निद्रामें बितायो, फिर मुहूर्त्तकालके अनन्तर उठके शौचकार्य्य समाप्त कर स्त्रियोंके बीच घिरकर ध्यान करने लगे। हे भारत! कृष्णद्वैपायननन्दन धैर्य्यसे च्युत न हुए, शुकदेव इस ही भांति विधिपूर्व्वक उस राजभवनमें दिन और रात्रि व्यतीत करने लगे।

३२५ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे भारत! अनन्तर राजा जनक मन्त्रियोंके सहित पुरोहित और सब अन्तःपुरवासी लोगोंको आगे करके विविध रत्न और आसनोंके साथ सिरपर अर्घ ग्रहण करके गुरुपुत्रके निकट उपस्थित हुए। उन्होंने उन पुरोहितोंके जरिये गृहीत परम पूजित अनेक रत्नोंसे भूषित बहुमूल्य वस्त्रसे युक्त सबसे उत्तम आसनको हाथसे ग्रहण करके गुरुपुत्र शुकदेवको दिया। पृथ्वीपति जनकने उस आसनपर बैठे हुए शुकदेवको शास्त्रके अनुसार पूजा की; पहले खड़ाऊं फिर अर्घ देकर गऊ दान किया। शुकदेवने भी यथा विधिसे मन्त्रके अनुसार पूजा प्रतिग्रह की। द्विज सत्तम महातेजस्वी शुकदेवने राजा जनकसे पूजा प्रतिग्रह और गोदान ग्रहण कर राजाका सम्मान करके उनका कुशल पूछा।

हे राजेन्द्र! जब शुकदेवने सेवकोंके सहित राजाका कुशल पूछा तब उदार प्रकृति राजा हाथ जोड़के खड़े रहे और उनकी आज्ञा पाके अनुचरोंके सहित पृथ्वीपर बैठगये, फिर राजाने व्यासपुत्रसे कुशल और अनामय प्रश्न करके आनेका प्रयोजन पूछा।

शुकदेव बोले, हे महाराज! आपका मङ्गल हो, मेरे पिताने कहा है, कि "जनक नाम विख्यात् विदेहराज मेरे यजमान हैं" वह मोक्षधर्म्मविषयके विशेषज्ञ हैं। यदि तुम्हारे अन्तःकरणमें मोक्षविषयमें कुछ संशय हो, तो शीघ्र ही उनके निकट जाओ। प्रवृत्ति और निवृत्ति विषयमें तुम्हें जो कुछ सन्देह है, वह "उसे छुड़ा देंगे।" हे धार्म्मिक प्रवर! इसही कारण मैं पिताकी आज्ञानुसार मोक्षकी चर्चा पूछनेके लिये आपके निकट आया हूं; इसलिये मेरे समीप उक्त विषयको आप यथावत् वर्णन करिये, इस लोकमें ब्राह्मणको क्या करना चाहिये, मोक्षके विषय कैसे हैं, और और ज्ञान अथवा तपस्याके जरिये किस प्रकार मोक्ष होती है।

जनक बोले, हे तात! इस लोकमें जन्म प्रभृति ब्राह्मणोंके जो कर्त्तव्य हैं, उसे सुनो। ब्राह्मण उपनयनके अनन्तर वेदपरायण होवे, तपस्या गुरुसेवा और ब्रह्मचर्य्यके जरिये असूयारहित होके देवता और पितरोंसे अऋणी होवे। सदा वेद पढ़ते हुए गुरुदक्षिणा देकर उनकी आज्ञासे गृहपर लौट आवे; लौटनेपर गार्हस्थ धर्म्म अवलम्बन करके निज स्त्रीमें रत होकर वास करे, किसीकी असूया न करे और यथा न्यायसे अग्निमें आहुति दे। फिर पुत्र और पौत्र उत्पन्न करनेके अनन्तर पूर्व्वोक्त अग्निकी पूजा करके अतिथिप्रिय होकर वाणप्रस्थ आश्रममें निवास करे। वह धर्म्म जाननेवाला ब्राह्मण वनके बीच विधिपूर्व्वक आत्माको अग्नि स्वरूप जानके सुख दुःखसे रहित विरागी होकर सन्न्यास आश्रममें निवास करे।

शुकदेव बोले, हे प्रजानाथ! सुख दुःख रहित अन्तःकरणमें यदि शाश्वत ज्ञान और विज्ञान अर्थात् शास्त्रज बुद्धि तथा अनुभव उत्पन्न हो, तो क्या गार्हस्थ आदि आश्रमोंमें अवश्यही वास करना होगा। इसी ही मैं पूछता हूं आप मेरे निकट इस ही विषयको वेदार्थके अनुसार कहिये।

जनक बोले, ज्ञान तथा विज्ञानके विना मोक्षलाभ नहीं होता और गुरुपदेशके विना ज्ञान प्राप्त होना सम्भव नहीं है। गुरु ज्ञानरूपी नौकाके जरिये शिष्यको संसारके पार उतारता है, इस ही लिये गुरुको प्लावयिता और ज्ञानको प्लव कहा जाता है। ज्ञानसे कृतकृत्य और उत्तीर्ण होकर उन दोनोंको परित्याग करे, लोक और कर्म्म नष्ट न हों, इस ही लिये पहलेके आचार्य्योंके आचरित चारो आश्रमोंका अनुसार अनुष्ठान करना होगा। इसी प्रकारसे योगके अनुसार अनेक जन्मोंके किये हुए शुभाशुभ कर्म्मोंको परित्याग करनेसे, मोक्ष प्राप्त होती है। यह जीव संसारमें बहुत बार जन्म लेकर शोधित बुद्धिके जरिये चित्तशुद्धि लाभ करनेसे प्रथम आश्रममें ही मोक्षभाजन होसकता है। ब्रह्मचर्य्य आश्रममें ही जिसकी चित्तशुद्धि होती है, उस कृतकृत्य विपश्चित पुरुषको अन्य तीनों आश्रमोंसे क्या प्रयोजन है। राजस और तामस दोषोंको सदाही परित्याग करे और सात्विक पथका सहारा करके आपही अपनेको अवलोकन करे, सब भूतोंमें अनुगत आत्माको और आत्मामें अनुगत सब भूतोंको देखते हुए जलके बीच हंस आदिकी भांति निर्लिप्त रहे। जैसे भूचर जन्तु नीचे पर्व्वतसे ऊंचे पहाड़पर चढ़नेके समय नीचे मार्गका अनुसरण करके जाते हैं, पक्षी उस प्रकार गमन नहीं करते, वैसेही मुक्त पुरुष देह छोड़नेपर फिर नहीं जन्मते; वे सुख दुःख आदि द्वन्द्वसे रहित और शान्तिलाभ करके परलोकमें परम सुख भोग करते हैं। हे तात! इस विषयमें पहले समयके ययाति राजाको कही हुई गाथाको मोक्षशास्त्रके जाननेवाले ब्राह्मण लोग धारण किया करते हैं, उसेही कहता हूं सुनो।

चिन्मात्र ज्योति केवल हृदयाधिष्ठानमें निवास करती है, अन्यत्र उसका सहारा नहीं है और उसका सब जीवोंमें ही समभाव है। जिसका चित्त स्थिर हुआ है, वह स्वयं ही उसे देखता है। जिससे दूसरे लोग भीत नहीं होते और जो दूसरोंसे नहीं डरता तथा जिसे इच्छा वा द्वेष नहीं है, वही ब्रह्मभाव लाभ करता है, जब जीव मन वचन और कर्म्मके जरिये सब प्राणियोंके विषयमें पापकी इच्छा नहीं करता, तब वह ब्रह्मभाव लाभ करनेमें समर्थ होता है; मोहिनी ईर्षाको त्यागके कामना और मोहहीन मनके सहित आत्माको संयुक्त करनेसे ब्रह्मभाव प्राप्त होता है। जब यह जीव सब भूतोंमें सुनने और देखनेसे विषयमें समता ज्ञान करके सुख दुःख आदि द्वन्द्वोंको सहता है, तब वह ब्रह्मभाव लाभ करता है। जब यह स्तुति,

निन्दा, सुवर्ण, लोहा, सुख, दुःख, सर्दी, गर्मी, अर्थ, अनर्थ, प्रिय, अप्रिय, जीने और मरनेको समभावसे देखता है, तब ब्रह्मभाव लाभ करनेमें समर्थ होता है जैसे कछुवा अपने अङ्गोंको पसारके फिर उसे समेट लेता है, वैसेही सन्न्यासियोंको मनके जरिये इन्द्रियोंको संयम करना उचित है, जैसे अन्धकारसे छिपा हुआ गृह दियेके जरिये दीखता है, वैसे ही ज्ञान-दीपके जरिये लोग आत्माको देखनेमें समर्थ होसकते हैं।

हे बुद्धिमत् प्रवर! तुममें इन सब भावोंको देखता हूं, मैंने जो कहा। उसके अतिरिक्त अन्य जो कुछ जानना होता है, उसे तुम यथार्थ रीतिसे जानते हो। हे ब्रह्मर्षि! तुमने पिताकी कृपा तथा पिताके समीप शिक्षा पाके विषयाभिलाष परित्याग की है, यह मुझे मालूम है। हे महामुनि उन्हींकी कृपासे मुझे यह दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ है, उसहीसे मैं तुम्हारे तत्त्वको जानता हूं। मुझसे बढ़के तुम्हें अधिक विज्ञान श्रेष्ठ गति और परम ऐश्वर्य हुआ है, परन्तु तुम उसे समझ नहीं सकते हो विज्ञान उत्पन्न होनेपर भी तुम बाल्यभाव, संशय अथवा अविमोक्ष जनित भयसे उसकी गति मालूम करनेमें समर्थ नहीं हुए हो। मेरे समान पुरुषके जरिये सन्देह दूर होनेपर तुम विशुद्ध व्यवहारके सहारे हृदयकी ग्रन्थिको छुड़ाके परमगति पाओगे। हे ब्रह्मन्! तुममें विज्ञान उत्पन्न हुआ है, बुद्धि स्थिर हुई है, तुमने विषय वासनाको परित्याग किया है, किन्तु बिना व्यवसायके उस परम पदको न पाओगे। सुख दुःखमें तुम्हें विशेष नहीं है, तुम्हारी बुद्धि विषयोंमें लोलुप नहीं है, नृत्य गीत आदि देखने सुननेमें उत्सुक नहीं है और उसे देखनेपर भी तुम्हें अनुराग नहीं उत्पन्न होता; बन्धुजनोंके ऊपर तुम्हारा कुछ अनुबन्ध नहीं है, भयजनक विषयोंमें भी तुम्हें भय नहीं है। हे महाभाग! मैं तुम्हें लोष्ट्र, पत्थर और सुवर्णमें समदर्शी देखता हूं। मैं तथा दूसरे जो सब मनीषी पुरुष हैं, सब कोई तुम्हें उस अक्षय और अनामय परम पथमें आरोहण करके निवास करते हुए देख रहे हैं। हे ब्रह्मन्! इस लोकमें ब्राह्मणको जो प्रयोजन है और मोक्षका जैसा स्वरूप है, उसहीमें तुम विद्यमान हो, दूसरा और क्या पूछना है।

३२६ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, शुद्धबुद्धि शुकदेवने राजर्षि जनकसे ऐसे वचन सुनके आत्म निश्चय करके आप ही अपनेको अवलम्बन और स्वयं ही अपना दर्शन करते हुए कृतकृत्य, सुखी, शान्त और मौनावलम्बी होकर हिमालय पहाड़के ऊपर जानेकी इच्छासे उत्तरकी ओर वायुकी भांति गमन किया। इतने ही समयमें देवर्षि नारद सिद्ध चारणोंसे सेवित हिमशैलको देखनेके निमित्त वहांपर उतरे। हिमालय अप्सराओंसे परिपूरित, सहस्रों किन्नरोंके प्रशान्त बाजोंके जरिये निनादित था, भृङ्गराज वृक्षोंपर सुशोभित थे; कारण्डव, खञ्जन, विचित्र चकोर, सैकड़ों कुहक ध्वनिसे युक्त चित्त वर्णके मोर, राजहंस और परम हर्षयुक्त कोकिलोंसे परिपूर्ण था। पक्षिराज गरुड़ जिसपर सदा निवास करते हैं, इन्द्र आदि चारों लोकपाल और ऋषियोंके सहित देवता लोग लोकको हितकामनासे वहां सदा इकट्ठे हुआ करते हैं। महानुभाव विष्णुने जिस स्थानमें पुत्रके निमित्त तपस्या की थी, उस ही स्थानमें पार्वती पुत्र कुमारने देवताओंको उद्देश्य करके एक शक्ति छोड़ी थी, वह शक्ति तीनों लोकोंको अवज्ञा करके पृथ्वीपर गिरी थी। उस समय कार्त्तिकेयने उस ही स्थानमें शक्ति छोड़के यह वचन कहा, कि तीनों लोकके बीच जो कोई मुझसे अधिक बलवान हो, मुझसे बढ़के ब्राह्मण लोग जिसे

अधिक प्रिय हो और ब्राह्मणोंकी आज्ञा पालन करनेके विषयमें जो अद्वितीय वीर्य्यवान हो, वह इस शक्तिको उठावे अथवा चलावे। कार्त्तिकेयका ऐसा वचन सुनके "इस शक्तिको कौन उठावेगा" ऐसा सोचकर सब लोग व्यथित हुए, अनन्तर भगवान् विष्णुने असुर और राक्षसोंके सहित देवताओंको चक्षुलेन्द्रिय तथा सम्भ्रान्तचित्त देखा; फिर उस विषयमें क्या करना चाहिये, ऐसी चिन्ता करके कुमारने जिस शक्तिको चलाया था, उसको कुछ भी विवेचना न करके उन्होंने उस अग्निपुत्रकी ओर देखा। विशुद्धात्मा पुरुषोत्तमने उस समय उस प्रज्वलित शक्तिको उठाकर बायें हाथसे चलाया। भगवान् विष्णुके जरिये उस शक्तिके छूटनेपर पहाड़, वन और महारण्यके सहित सारी पृथ्वी कांपने लगी। भगवान उस शक्तिको उठानेमें समर्थ होनेपर भी उस समय केवल उसे चलाया और स्कन्दराजकी धर्षणा की, इस ही निमित्त उसकी रक्षा की भगवान उस शक्तिको चलाकर प्रह्लादसे बोले, कि कुमारका बल देखो दूसरा कोई इस शक्तिको उठानेमें समर्थ नहीं है। हिरण्यकशिपुपुत्र प्रह्लादने भगवानका वचन न समझा और शक्ति उठानेका निश्चय करके उस ही समय उसे ग्रहण किया; परन्तु विचलित न कर सका। वह उस समय चिल्लाके पहाड़पर मूर्च्छित और विह्वल होके गिर पड़ा। उस ही स्थानमें शैलराजके पार्श्वभागमें उत्तर ओर जाके वृषभध्वज महादेव अति कठोर तपस्या करते थे, उनका आश्रम प्रकाशमान अग्निसे चारों ओरसे परिपूरित रहता था। उसका नाम आदित्य पर्व्वत है, पुण्यहीन पुरुष कदापि उसे अभिभव नहीं कर सकते यक्ष, राक्षस और दानव लोग वहां जानेमें समर्थ नहीं हैं, उसकी दश योजनकी लम्बाई है और वह अग्नि ज्वालासे परिपूरित था। धीमान् महादेवके दिव्य परिमाणसे सहस्र वर्षतक वहांपर खड़े रहनेपर भगवान् अग्नि उनके सब विघ्नोंको नाश करते हुए वहां स्वयं स्थित रहते थे। महादेवने देवताओंको सन्ताप देते हुए वहांपर अत्यन्त महत् तपस्या की थी। पराशरपुत्र महातपस्वी व्यासदेव उस ही शैलराजकी पूर्व्वदिशाको अवलम्बन करके विविक्त पर्व्वतपर शिष्योंको वेद पढ़ाते थे। सुमन्त, महाभाग वैशम्पायन, महाप्राज्ञ जैमिनि और तपस्वीप्रवर पैल नाम शिष्योंसे घिरे हुए महातपस्वी वेदव्यास जिस स्थानमें निवास करते थे, आकाशमण्डल स्थित सूर्य्यके समान विशुद्धात्मा अरणीसे उत्पन्न शुकदेवने पिताके उस ही रमणीय आश्रम स्थानको देखा। अनन्तर व्यासदेवने सूर्य्यके समान तेजस्वी, जलती हुई अग्निके समान वृक्ष, पहाड़ और विषयोंमें अनासक्त योगयुक्त महानुभाव पुत्रको धनुषके रोदेसे छूटे बाणकी भांति आते हुए देखा। अरणीसे उत्पन्न शुकदेवने पिताके समीप पहुंचके उनके दोनों चरणोंको ग्रहण किया और वह महामुनि पिताके चारों शिष्योंसे यथा उचित मिले। अनन्तर जनक राजके सङ्ग उनकी जो बार्त्ता हुई थी, उसे प्रसन्नचित्तसे पिताके समीप आदिसे अन्ततक वर्णन किया। वीर्य्यवान पराशरपुत्र महामुनि वेदव्यास हिमालयके ऊपर शिष्यगण और पुत्रको पढ़ाते हुए इस ही भांति निवास करते थे।

अनन्तर किसी समय वेदाध्ययन सम्पन्न शान्तचित्त और जितेन्द्रिय शिष्यवृन्द उन्हें घेरके स्थित थे, वे लोग साङ्ग वेदाध्ययन समाप्त करके तपस्या करते थे; उस समय उन शिष्योंने हाथ जोड़के गुरु व्यासदेवके निकट प्रार्थना की।

शिष्यवृन्द बोले, आपने जो हमपर कृपा की है, उसहीसे हम महातेजस्वी और यशस्वी हुए हैं, इस समय हमें एक ही विषयकी अभिलाष है, आपको उसके निमित्त अनुग्रह करना होगा। ब्रह्मर्षि व्यासदेव उन लोगोंका ऐसा

बचन सुनके बोले, हे तात ! मुझे तुम लोगोंका जो कुछ प्रियकार्य्य करना होगा, उसे कहो। हे राजन् ! शिष्योंने गुरुका ऐसा वचन सुनके प्रसन्नचित्तसे हाथ जोड़ शिर झुकाकर उन्हें प्रणामकर सबने मिलके यह उत्तम बचन कहा। हे सुनिसत्तम ! उपाध्यायके प्रसन्न होनेसे हम लोग धन्य हुए। आप हम लोगोंको यह वर दीजिये, कि इस लोकमें अब आपका छठवां शिष्य कीर्त्ति लाभ न कर सके ; आप इस ही प्रकार हमारे ऊपर प्रसन्न होइये ; हम सब ब्रह्मर्षिसे इस ही बरकी अभिलाषा करते हैं। हम चार आपके शिष्य हैं और गुरुपुत्र पांचवां है, हम पांच पुरुषोंमें ही सब वेद प्रतिष्ठित रहें, यही हमारा अभिलषित वर है।

वेदार्थके तत्त्वज्ञ परलोकार्थ चिन्तक पराशरपुत्र बुद्धिमान् धर्म्मात्मा व्यासदेव शिष्योंके वचनको सुनके उनसे धर्म्मयुक्त कल्याणदायक वचन बोले। जो ब्रह्मलोकमें बास करनेकी आकांक्षा करें, वे वेदशुश्रुषु ब्राह्मणको वेदाध्ययन करावें, तुम लोगोंके जरिये वेदका खूब प्रचार होवे, तुम लोग वेदको विस्तार करो। जो पुरुष शिष्य नहीं हैं, व्रत नहीं करता और जिसकी बुद्धि शुद्धि नहीं हुई है, उसे वेद न पढ़ाना, यह सब शिष्यके गुणको यथार्थ रूपसे जानना चाहिये। जिसके चरित्रकी परीक्षा नहीं हुई है, उस पुरुषको विद्या दान न करे, जिस प्रकार अग्निमें तपाने, काटने घिसनेसे सुवर्णकी परीक्षा होती है, वैसे ही कुल, शील और गुणोंको देखकर शिष्योंकी परीक्षा करे। तुम लोग शिष्योंको नियोगानर्ह महाभय जनक बिषयोंमें नियुक्त न करना, सभी लोग दुर्गम शास्त्रसागरसे पार हों, सभी कल्याणका सुख देखें। ब्राह्मणको अगाड़ी करके चारों बर्णोंको ही वेद सुनावे, वेद पढ़ना अत्यन्त महत् कार्य्य कहा गया है, देवताओंकी स्तुतिके निमित्त स्वायम्भू ब्रह्माने वेदोंको बनाया है।

जो पुरुष मोह बशसे वेद जाननेवाले ब्राह्मणोंकी निन्दा करता है, वह उस ही निमित्त निःसन्देह पराभूत होता है। जो पुरुष अधर्म्मके अनुसार पूछता है और जो अधर्म्मपूर्व्वक उत्तर देता है ; उनके बीच एक दूसरेका विद्वेषभाजन होता और परलोकमें गमन करता है। यह सब तुम्हारे समीप वेदपाठकी विधि कही गई, शिष्योंका उपकार करना होगा, तुम्हारे हृदयमें ऐसी धारणा बनी रहे।

३२७ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, महातेजस्वी व्यासशिष्योंने गुरुका ऐसा बचन सुनके प्रसन्नचित्तसे परस्पर आलिङ्गन किया और कहने लगे। हे भगवन् ! हमें आपने जो आज्ञा दी है, वह वर्त्तमान और भविष्यत्कालमें अत्यन्त हितकर है, वह हमारे अन्तःकरणमें दृढ़रूपसे स्थित हुई ; हम इसही आज्ञाके अनुसार आचरण करेंगे। उन वाक्यविशारद शिष्योंने अत्यन्त प्रसन्नचित्तसे परस्पर इस ही प्रकार बार्त्तालाप करके फिर गुरुसे निवेदन किया कि, हे महामुनि ! यदि आपकी सम्मति हो, तो वेदोंको विस्तारित करनेके लिये हम लोग यहांसे पृथ्वीतल पर गमन करनेकी इच्छा करते हैं। पराशरपुत्र निग्रहानुग्रहमें समर्थ व्यासदेवने शिष्योंका वचन सुनके धर्म्मार्थसे युक्त हितकर बचनसे उत्तर दिया कि, हे शिष्यवृन्द ! यदि तुम लोगोंको ऐसी अभिलाष हुई हो, तो मनुष्यलोक अथवा देवलोक जहांपर तुम्हारी इच्छा हो, वहां जाओ, तुम लोग सावधान होके रहना, वेदमें बहुत छल है, प्रमत्त होकर उसे भूल मत जाना। अनन्तर उन लोगोंने सत्यवादी गुरुकी आज्ञा पाके उनकी प्रदक्षिणाकी और शिर झुकाकर उन्हें प्रणाम करके वहांसे चले। उन ऋषियोंने पृथ्वीमण्डलपर पहुंचके ब्राह्मण, क्षत्रिय और

और पितृयान नाम दो मार्ग हैं, सात्विक उपासक लोग पुनरावृत्ति रहित जिस मार्गसे गमन करते हैं, उसका नाम देवयान है, और धूमादि पथके जरिये जिस पुनरावृत्तिप्रद स्थानमें गमन किया जाता है, उसे तामस पितृयान कहते हैं। परलोकमें गमन करनेके लिये ये दोही मार्ग हैं, इनके जरिये द्युलोक और भूलोकमें जीवोंका गमनागमन हुआ करता है। पृथ्वी और आकाशमण्डलमें जिस स्थान पर वायु गमन करता है, वह वायुके सञ्चारका स्थान सात प्रकारका है इसलिये उन सात स्थानोंके विषयको विस्तारपूर्वक सुनो। देह पिण्ड और ब्रह्माण्डके अभेद निबन्धनसे शरीरमें भी पांच प्रकारको वायु निवास करती है, शरीरको अवलम्बन करके जो सब इन्द्रियें हैं, और अधिदैव साध्यगणोंकी अधिकार करके जो सब महाबल महाभूत हैं, उन्होंके समान साम दुर्ज्जय वायुकी उत्पत्ति होती है। समानसे उदान, उदानसे व्यान, व्यानसे अपान और अपानसे प्राण उत्पन्न होता है। दुर्द्धर्ष शत्रु तापन प्राण अनपत्य है, अर्थात् प्राणका कार्य्यान्तर नहीं है, उसके पृथक् पृथक् कर्म्मोंको ज्योंका त्यों कहता हूं। वायु प्राणियोंकी पृथक् पृथक् चेष्टाको सब भांतिसे निर्व्वाह करता है, और प्राणियोंके प्राणका कारण होनेसे प्राण नामसे अभिहित होता है, तथा जो वायु धूमज और उष्मज अभ्रको प्रथम पथमें चालित करता है। उसे प्रवह वायु कहा जाता है। आकाशमें स्नेहगुणयुक्त जल बरसनेके समय जो वायु स्नेह क्रमसे विद्युत्वको प्राप्त होके अत्यन्त द्युतिशाली होता है, वह शब्दकारी श्वसन आवह नामक द्वितीय वायु स्थानीय होकर होता है, और जो वायु सोम आदि प्रकाशमान पदार्थोंका सदा उदयकार्य्य निर्व्वाह करता है, मनीषी लोग जिसे शरीर स्थित उदान वायु कहा करते हैं, जो वायु चारों समुद्रोंके जलको धारण कर रहा है, जो वायु समस्त जल उठाके जीमूतगणको देनेके निमित्त लाता है, और जलके सहित जीमूतोंको संयोजित करके बादलोंको प्रदान करता है, उस वायुका नाम उद्वह है, यह तीसरा वायु अत्यन्त बृहत् है। और जो वायु बादलोंको ढोकर अनेक प्रकारसे बिभिन्न करता है, तथा जल बर्षा आरम्भ किया करता है, उस वारि पूर्ण और वारिहीन वायुको घनाघन कहा जाता है। इकट्ठे होने पर भी सब बादल जिसके जरिये पृथक् पृथक् होजाते हैं, शब्दमान वेणुकी भांति शब्दायमान वह वायु नद नामसे प्रसिद्ध हुआ करती है। उक्त वायु प्रजापालनके निमित्त संहत और जो स्तनवत् रिक्त होके भी मेघत्व अर्थात् सेचन कारित्वको प्राप्त होती है, जलकी भांति नष्ट नहीं होता। जो वायु आकाश मार्गमें व्योमयानोंको चलाती है, वह पर्व्वतको मर्द्दन करनेमें समर्थ सम्वह संज्ञक वायु चतुर्थ रूपसे गिनी जाती है। इकट्ठे हुए समस्त बादल वेगवान रुक्ष और नागोंको प्रभञ्जन करनेवाली वायुसे उग्र होकर बलाहक अर्थात् बलके जरिये गमन करता है, इस व्युत्पत्ति लभ्य अभिधानको प्राप्त होता है, तथा जिससे दारुण उत्पात धूमकेतु और सम्वर्त्त मेघका सञ्चार हुआ करता है, जो आकाश मण्डलमें गर्ज्जते हुए बादल बिशिष्ट होकर निवास करता है, वह बिवह नाम महा बलवान वायु पञ्चम रूपसे निर्द्दिष्ट है। जिसके वेगबलसे समस्त दिव्य जल नीचे न गिरके आकाशमार्गके ऊपरके हिस्सेमें निवास करता है और आकाश गङ्गाका पवित्र जल जिससे विष्टब्ध हुआ करता है, सूर्य्य सहस्र किरणधारी होनेपर भी दूरसे जिसके प्रतिघातके कारण एक किरणकी भांति मालूम होके पृथ्वीको प्रकाशित करता है, चन्द्रमा क्षीण होके भी जिसके बलसे फिर मण्डलाकारसे पूर्ण होता है। हे जापक प्रवर! वह परिवह

नाम वायु षष्टमरूपसे गिनी जाती है । जो वायु प्रलयकालमें सब प्राणियोंके प्राणको संहार करती है, मृत्यु तथा वैवस्वत अर्थात् चौदह यमके अन्तर्गत मरण और सूर्य्य पुत्र यम, ये दोनों जिसके पथका अनुसरण किया करते हैं, हे अध्यात्म चिन्तक पुत्र ! ध्यानाभ्यासमें अनुरक्त मनुष्योंके लिये जो अमृत रूपसे कल्पित होती है, उस बाह्याभ्यन्तर विषयोंसे उपरत बुद्धि वृत्तिके सहारे उसे अवलोकन करो । दक्ष प्रजापतिके दस हजार पुत्र वेगके कारण जिसके निकटवर्त्ती होकर ब्रह्माण्ड भेदके दिग्‌दिगन्तमें गमन किया है, जिसके जरिये जीव उपसृष्ट होकर फिर निवृत्त नहीं होते, वह परा नाम वायु सबसे श्रेष्ठ और सबसे दुरतिक्रमणीय है । इस ही प्रकार आदिके खण्डन शून्य अदीना परिचितिकी पुत्र परम अद्भुत वायु सर्व्वत्र गमन और समस्त वस्तुओंको धारण करते हुए सदा बह रही है । उस प्रवहमान वायुके जरिये जो यह उत्तम पर्व्वत सहसा कम्पित हुआ, यही अत्यन्त आश्चर्य्यका विषय है । हे तात ! यह वेद सर्व्वव्यापी विष्णुकी निश्वास-वायु है, यह जब वेगपूर्व्वक समीरित होकर सहसा ऊंचे स्वरसे पाठ किया जाता है, तब स्थावर जङ्गमात्मक जगत् व्यथित हुआ करता है । मूल पुरुषका निश्वास यदि सहसा उत्थित होकर कदाचित जगत्‌को संहार करे ; इसहीसे सब कोई व्यथित होते हैं,—इसलिये वेद जाननेवाले पुरुष प्रबल वायु बहनेके समय वेद नहीं पढ़ते ; वेदरूप वायु वेगपूर्व्वक उच्चारित होनेपर बाह्यवायु भयजनक होती है । पराशर पुत्र प्रभु व्यासदेवने यह सब वचन कहके बोले, 'हे पुत्र ! अध्ययन करो'—ऐसा कहके उस समय आकाश गङ्गामें स्नान करनेके लिये गमन किया ।

३२८ अध्याय समाप्त ।

भीष्म बोले, इतने ही समयके बीच महर्षि नारद स्वाध्याय-रत शुकदेवसे वेदका समस्त अर्थ पूछनेकी अभिलाषा करके आकाश मार्गसे उनके समीप उपस्थित हुए । शुकदेवने देव-ऋषि नारदको आया हुआ देखके अर्घ दान करके वेदोक्त विधिके अनुसार उनकी पूजा की । अनन्तर नारद मुनि आनन्दित होके प्रसन्नचित्तसे बोले, हे तात धार्म्मिक प्रवर ! कहो, तुम्हें कैसे कल्याणसे संयोजित करूं ? हे भारत ! शुकदेवने नारद मुनिका वचन सुनके उत्तर दिया, इस लोकमें जो हितकर हो, आप मुझे उस ही कल्याणसे सम्पन्न करिये ।

नारद मुनि बोले, पहले समयमें आत्मानुशीलन परायण तत्त्वजिज्ञासु ऋषियोंके निकट भगवान् सनत्कुमारने यह कथा कही थी, कि विद्याके समान नेत्र नहीं है, सत्यके समान तपस्या नहीं है, रागके समान दुःख नहीं है, और त्यागके समान दूसरा सुख नहीं है । पाप कर्म्मोंसे सदा निवृत्त रहना ही पुण्यशीलता है, सद्व्यवहार और सदाचार ही अत्यन्त उत्तम कल्याण है । असुखकर मनुष्य जन्म पाके जो पुरुष विषयासक्त होता है, वह मुग्ध हुआ करता है, विषयासक्त पुरुष कदाचित दुःख मोचन करनेमें समर्थ नहीं होता, वह केवल दुःखका ही लक्षणमात्र है । विषयासक्त मनुष्यकी बुद्धि मोह जालसे जड़ित होकर विचलित होती है । जो मनुष्य मोह जालमें छिपा रहता है, वह इस लोक और परलोकमें दुःख भोग करता है । जो लोग कल्याणकी इच्छा करें, उन्हें चाहिये, कि सर्व्व प्रयत्नसे काम और क्रोधको निग्रह करें, क्यों कि काम और क्रोध कल्याणको नष्ट करनेके लिये उद्यत हुआ करते हैं । क्रोधसे सदा तपस्याकी रक्षा करे, मत्सरसे लक्ष्मीको बचावे, मानापमानसे विद्याकी रक्षा करे और प्रमादसे आत्म-रक्षा करनी चाहिये । अनृशंसता ही परम धर्म्म है,

क्षमा ही परम बल है, आत्मज्ञान ही परम ज्ञान है, और सत्यसे श्रेष्ठ अन्य कुछ भी नहीं है। सत्य कहना ही कल्याणकारी है, और हित बचन कहे; जो प्राणियोंके लिये अत्यन्त हितकर है, मेरे मतमें वही सत्य है। सब कार्य्योंके त्यागी, आशारहित और निष्परिग्रह होकर जिन्होंने सब विषयोंको परित्याग किया है, वेही विद्वान् तथा वेही पण्डित हैं। इस लोकमें जो लोग अपनी वशीभूत इन्द्रियोंके जरिये इन्द्रिय विषयोंको सम्भोग करते हैं, और जो सब विषयोंमें आसक्ति रहित, शान्त-चित्त, निर्व्विकार और समाहित होते हैं, और आत्मभूत देहेन्द्रियोंके सहित उपस्थित रहके स्वतन्त्र भावसे विद्यमान रहते हैं, तथा देह आदिके सहित तदात्म रहित होकर केवल स्वरूप होते हैं, वे थोड़े ही समयमें मुक्त होकर परम कल्याण प्राप्त करते हैं।

हे मुनि! जिसका जीवोंके सहित सदा दर्शन, स्पर्श और सम्भाषण नहीं होता, वह परम कल्याण लाभ करता है। किसी जीवको हिंसा न करे, सबके सङ्ग मित्रताचरण करे, यह मनुष्य जन्म पाके किसीके सङ्ग शत्रुता न करे। चित्त बिजयी आत्मज्ञ लोगोंकी अकिञ्चनता, सन्तोष और निराशाल ही परम कल्याण है, ऐसा प्राचीन लोग कहा करते हैं। हे तात! परिग्रह परित्याग कर जितेन्द्रिय होके इस लोक और परलोकमें शोक रहित स्थानमें निवास करो। जिन लोगोंके भोग बस्तु नहीं हैं, वे शोक नहीं करते; इसलिये अपनी जो कुछ भोग्यबस्तु हो, उसे परित्याग करो। हे प्रिय दर्शन! भोग्यबस्तुओंके त्यागनेसे तुम पाप तापसे मुक्त होगे। जो लोग अजित बिषयोंको जय करनेकी इच्छा करें, उन्हें तपस्यामें रत, दान्त, मौनब्रती संयतचित्त और सब आसक्ति-योंसे बिमुक्त होना उचित है। जो लोग ब्राह्मण गुणोंमें आसक्त और सदा एकचर्य्यारत होता है, वह थोड़े ही समयके बीच परम सुख लाभ करता है। द्वन्द्वाराम प्राणियोंके बीच जो अकेला मौनी होकर क्रीड़ा करता है, उसे प्रज्ञान-तृप्त जानना चाहिये। जो ज्ञानसे तृप्त होता है, वह कदाचित् शोक नहीं करता। शुभ कर्म्मके जरिये देवत्व प्राप्त होता है, शुभा-शुभ मिश्रित कर्म्मके जरिये मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ करता है, और केवल अशुभ कर्म्मोंके जरिये अधम जन्म अर्थात् तिर्य्यग् योनिमें जन्म होता है। इस संसारमें जीव मृत्यु और जराके दुःखसे सदा पीड़ित होकर परिणामको प्राप्त होता है, उसे तुम क्यों नहीं अनुभव करते हो; अहित विषयोंमें हितज्ञ, अनित्यज्ञ बस्तुमें ध्रुव ज्ञान सम्पन्न और अनर्थ बिषयमें अर्थज्ञ होकर तुम क्यों नहीं प्रबुद्ध होते हो? जैसे कोषकार बहुतसे आत्मज सूत्रके जरिये बंधकर मोह वशसे अपनेको नहीं जान सकता, तुम भी उस ही प्रकार अपनेको बांधके जाननेमें अस-मर्थ होरहे हो; इस संसारमें परिग्रहका कोई प्रयोजन नहीं है, क्यों कि परिग्रहयुक्त पुरुष ही दोषवान हुआ करते हैं, जैसे कोष-कार कोटनिज परिग्रह निबन्धनसे बद्ध होता है। जैसे तालाबके कीचड़में फंसके जङ्गली हाथी बिशीर्ण होते हैं, वैसे ही स्त्री, पुत्र, कुटुम्बी लोगोंमें आसक्त जीव अवसन्न हुआ करते हैं। जैसे बड़े जालके सहारे मछलियें खिंच कर स्थलमें लाने पर दुःखी होती हैं, वैसे ही स्नेह-जालके जरिये आकर्षित जीवोंको अत्यन्त दुःखित देखो। कुटम्ब, पुत्र, स्त्री, शरीर और धन सञ्चय आदि जो कुछ रहता है, परलोकमें जानेपर वह सब न रहेगा, अपना सुकृत और दुष्कृत कर्म्ममात्र ही स्थायी होगा। सब बस्तु परित्याग कर अवश्य होके जब तुम्हें गमन करना होगा, तब तुम क्यों अनर्थमें आसक्त होकर अपने प्रयोजनका अनु-ष्ठान करनेमें बिरत होरहे हो। बिश्रान्ति

रहित आलम्बनहीन, पाथेय वर्ज्जित, अदेशिक अन्धकारसे परिपूरित दुर्गम मार्गमें तुम अकेले किस प्रकारसे गमन करोगे? तुम्हारे प्रस्थान करनेपर कोई भी पश्चात् न जायगा, तुम्हारे गमन करनेपर केवल सुकृत और दुष्कृत कर्म्म तुम्हारा अनुगमन करेंगे। विद्या, कर्म्म, शौचाचार और बहुत बृहत् ज्ञान प्रयोजनका अनुसरण नहीं करते, परन्तु जिसका प्रयोजन सिद्ध हुआ है, वैसा पुरुष मुक्त होता है। ग्रामवासी लोगोंका अनुराग ही यह बन्धन-रसरी है, सुकृतशाली मनुष्य इस बन्धन-रसरीको काटके गमन करते हैं और दुष्कर्म्मी पुरुष उसे नहीं काट सकते। रूप जिसका किनारा, मन स्रोत स्पर्श द्वीप, रस लहर, गन्ध कीचड़, शब्द जल, क्षमा नौका चलानेका दण्ड और जिसका धर्म्म नौका आकर्षित करनेकी रसरी है; वह सत्यमयी स्वर्गमार्ग दुरावहा त्यागरूपी वायुपथगामिनी शीघ्रतासे गमन करनेवाली नौकाश्री नदीसे पार होगा। धर्म्म अधर्म्मको परित्याग करो और सत्य तथा मिथ्याको छोड़ो, सत्यानृत दोनोंको छोडके जिसके जरिये त्याग करते हो, उसे भी परित्याग करो सङ्कल्पहीनतासे धर्म्मको परित्याग करो और अलिप्सा निवन्धनसे अधर्म्मको छोड़ो; बुद्धिके सहारे सत्य और मिथ्याको परित्याग करो और परमार्थ निश्चय निबन्धनसे बुद्धिको त्यागो। हड्डी, स्थूण, स्नायुयुक्त मांस, रुधिर लिपटे हुए चर्म्मावनद्ध दुर्गन्धि, मूत्र-पुरीषसे पूरित जरा-शोकसे युक्त रोगका स्थान, आतुर रजोगुण प्रधान इस अनित्य भूतावास शरीरको परित्याग करो।

यह स्थावर जङ्गमात्मक समस्त संसार और महत् तत्त्व अर्थात् बुद्धि महाभूतमय वे पांचो महाभूत, पञ्चप्राण और पञ्च इन्द्रिय तथा सत्त्व, रज, तम, ये तीनों गुण वशीभूत होकर देह त्यागनेके अनन्तर परलोकगामी जीव अव्यक्तसंज्ञक सप्तदश राशिरूपसे निर्णीत होता है। व्यक्त अव्यक्त संज्ञक शब्द स्पर्श आदि इन्द्रियोंके विषय और मन्तव्य, बोधव्य तथा अहङ्कर्त्तव्यके सहित मिलके व्यक्तमय चौबीस गुण हुआ करते हैं, जो इन सब गुणोंसे संयुक्त होता है उसका नाम पुरुष है। त्रिवर्ग, सुख, दुःख, जीवन, इन सबको जो यथार्थरूपसे जानता है, वही उत्पत्ति और लय किस प्रकारसे होती है, उसे जान सकता है। जानने योग्य विषयोंमें जो कुछ जानना होता है, उसे पारम्पर्य्यक्रमसे जानना उचित है। इन्द्रियोंके जरिये जिन जिन विषयोंका ज्ञान होता है; उन्हीं विषयोंको व्यक्त कहा जाता है और अतिन्द्रिय विषयोंको अव्यक्त जानना चाहिये। जीव सदा इन्द्रियोंके जरिये धारावाहिक क्रमसे तृप्त होता है। लोगोंमें आत्माको वितत और आत्मामें लोगोंको वितत अवलोकन करे, सब अवस्थामें सदा सर्व्व-भूतदर्शी परावर द्रष्टाकी ज्ञानमूलक शक्ति उसे नहीं देखती। अशुभ कर्म्मोंके जरिये सब भूतोंका संयोग साधित नहीं होता; ज्ञानके जरिये जिन्होंने विविध मोहज क्लेशोंको अतिक्रम किया है, लोकमें बुद्धि प्रकाशके जरिये उससे लोकाचार हिंसित नहीं होता। आत्मामें अधिष्ठित अनादि निधन अव्यय जीवको गोलोपायवित् भगवान अकर्त्ता और अमूर्त्त कहते हैं, जो लोग अपने किये हुए कर्म्मोंके जरिये सदा दुःखित होते हैं, वे दुःखको मिटानेके लिये अनेक प्रकारसे जीवहिंसा किया करते हैं। अनन्तर वे फिर नये नये दूसरे प्रकारके बहुतेरे कार्य्य आरम्भ करते हैं, आतुर पुरुषके अपथ्य भोजनकी भांति वे पुनर्व्वार उसहीके जरिये दुःखित हुआ करते हैं मोहसे अन्धे मनुष्य सदा दुःखकर विषयोंमें सुख ज्ञान करते हैं, इसीसे वे सदा अपने किये हुए कर्म्मोंके जरिये मथने योग्य वस्तुकी भांति मथित और बद्ध हुआ करते हैं, अनन्तर वे लोग कर्म्मोंके उदयसे इस लोकमें निज योनिसे बद्ध होते हैं और बद्ध होकर

बहुत दुःख सहते हुए चक्रकी भांति संसारमें घूमा करते हैं। तुम कर्म्मोंसे निवृत्त होके बन्धनसे छूटे हो, इसलिये सर्व्ववित और सर्व्वजित होके भावरहित होजाओ। तपोबलसे संयमके हेतु इन्द्रियमात्रसे उत्पन्न बन्धनको अतिक्रम करके बहुतोंने बाधा रहित सुखोदय युक्त सिद्धि प्राप्त की है।

३२८ अध्याय समाप्त।

नारद मुनि बोले, मनुष्य अशोक होने वा शोकनाशके निमित्त शान्तिकर तथा कल्याण-स्वरूप शास्त्रको सुनकर ज्ञान लाभ करता है और उस ही ज्ञानको पाके सुखी होता है। सहस्रों शोकके विषय और सैकड़ों भयजनक कार्य्य प्रतिदिन मूढ़ मनुष्योंको घेरते हैं, पण्डितोंके निकट वे प्रविष्ट नहीं हो सकते; इसलिये अनिष्ट नाशके लिये मेरे समीप एक इतिहास सुनो। यदि बुद्धि वशमें रहे, तो शोक नष्ट होता है, अल्प बुद्धिवाले मनुष्य अनिष्टके संयोग और इष्ट वियोगसे मानस-दुःखोंमें आक्रान्त हुआ करते हैं। विषयोंके अतीत होनेपर उनके गुणोंकी चिन्ता करे, जो पुरुष उसमें समादर करता है, वह स्नेह-बन्धनसे नहीं छूटता जिस विषयमें अनुराग उत्पन्न हो, उसमें दोषदर्शी होवे, अनिष्टकी बढ़ती हुए देखके मनुष्य उस ही समय विरक्त होवे। जो पुरुष अतीत विषयोंकी अनुशोचना करता है, उसमें धर्म्म, अर्थ और यश कुछ भी नहीं रहता, इसलिये जो नहीं है, उसमें नि[illegible]त्त न होवे, उस विषयकी चिन्ता करनेसे वह कभी प्रत्यावृत्त न होगा, जैसे सब भूत गुणोंसे युक्त होते हैं, वैसे ही वियुक्त हुआ करते हैं, सब विषय एक ही पुरुषके शोकास्पद नहीं होते। जो लोग मृत वा अतीत लोगोंके लिये शोक करते हैं, वे दुःखके जरिये दुःख लाभ करके दो प्रकारके अनर्थमें फंसते हैं। लोकके बीच विस्तार अवलोकन करके ज्ञानवान पुरुष आंसू नहीं बहाते; सम्यक्दर्शी मनुष्योंके किसी विषयमें भी आंसू नहीं गिरते। शारीरिक वा मानसिक दुःखके अभिघात उपस्थित होनेपर जिसमें यत्न नहीं किया जा सकता; उस विषयमें चिन्ता करनी अनुचित है। दुःखके विषयकी चिन्ता न करनी ही दुःख-नाशकी महौषधि है। दुःखकी चिन्ता करनेसे दुःख दूर नहीं होता, बल्कि अत्यन्त बर्द्धित होता है। बुद्धिसे मानस दुःख और औषधिके जरिये शारीरिक दुःख दूर करे, विज्ञानकी यही सामर्थ्य है; इसलिये बालकके सदृश समान न होवे रूप, यौवन, जीवन, धनसञ्चय, आरोग्य और प्रिय सहवास, ये सभी अनित्य हैं, इसलिये पण्डित लोग उनकी आकांक्षा नहीं करते। साधारण लोगोंको जो दुःख हुआ करता है, एकबारही उसके लिये शोक करना उचित नहीं है। यदि दुःखका उपक्रम दीख पड़े, तो उसके लिये शोक न करके उसके प्रतिकारकी चेष्टा करे। इस जीवनमें सुखकी अपेक्षा निःसन्देह दुःख ही अधिक है। इन्द्रिय विषयोंमें मोह वशसे स्नेह प्रकाश करना ही मरणके समान अप्रिय है।

जो मनुष्य सुख दुःख दोनो ही परित्याग करता है, वह अत्यन्त सुख स्वरूप ब्रह्मभाव लाभ करनेमें समर्थ होता है, पण्डित लोग उसके लिये शोक नहीं करते। सब अर्थोंके त्यागनेसे दुःख होता है, उसकी रक्षा करनेमें भी कोई सुख नहीं है। अर्थ उपार्ज्जन करनेमें भी बहुत दुःख सहना होता है; इसलिये अर्थ नाशके विषयकी चिन्ता न करे, साधारण मनुष्य पृथक् पृथक् रूपसे विशेष विशेष धनकी अवस्था प्राप्ति पूर्व्वक तृप्त न होकर विध्वंस लाभ करते हैं और पण्डित लोग सन्तोष लाभ किया करते हैं, सब विषयोंका ही अन्त होता है, उन्नति होनेसे ही पतन होता है, संयोग होनेसे वियोग उपस्थित हुआ करता है और उत्पन्न होनेसे

अवश्य मरना होता है। प्यासका अन्त नहीं है तुष्टि ही परम सुख है; इसलिये पण्डित लोग सन्तोषको ही परम धन समझते हैं, गमनशील अवस्था निमिष भर भी नहीं ठहरती, जब कि अपना शरीर ही अनित्य है, तब कौन नित्य-विषयका अनुशीलन करेगा। ज्ञानी लोग सत्य-यकी अवलम्बन करके प्राणियोंकी सत्ताका विषय अनुशीलन करके परम गति दर्शन करते हुए मनके अतीत वस्तुओंके निमित्त शोक नहीं करते।

मनुष्यके काम भोगसे तृप्त न होकर विषय सञ्चय करते रहनेपर मृत्यु इस प्रकार उसे ग्रहण करके चल देती है, जैसे बाघ हरिनको उठा ले जाता है। जिससे दुःख दूर हो, वैसा उपाय अवलोकन करे, शोक रहित होकर कार्य्यारम्भ करे, मनुष्य मुक्त होनेसे ही दुःख रहित होता हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धमें उपभोगके अतिरिक्त और कुछ भी सुख नहीं देखा जाता। जैसे प्राणियोंका पहले संयोग वशसे दुःख नहीं होता, वैसे ही प्रकृतिस्थ पुरु-षोंके विप्रयोगमें भी दुःख न करे। धीरजके सहारे शिश्न और उदरकी रक्षा करे, नेत्रके जरिये हाथ और पांवकी रक्षा करे, मनके जरिये आंख तथा कानकी रक्षा करे और विद्याके सहारे मन तथा बचनकी रक्षा करनी चाहिये; परिचित वा अपरिचित लोगोंमें प्रणय प्रतिसंहार करके अनुद्धत होकर जो पुरुष बिचरता है, वही सुखी और वही पण्डित है। जो आत्मामें अनुरक्त होकर निरपेक्ष और निर्लोभभावसे बैठा रहता है और आत्माकी सहाय करके बिचरता है, वही सुखी होता है।

३३० अध्याय समाप्त।

नारद मुनि बोले, जब मनुष्योंकी सुख-दुःखमें बिपर्य्यास अर्थात् सुखमें दुःखबुद्धि और दुःखमें सुखबोध होता है, तब प्रज्ञा सुनीति अथवा पौरुष उसका परित्राण नहीं कर सकती, स्वभावके अनुसार यत्न करे, जो यत्न करता है, वह अवसन्न नहीं होता; प्रियशरीरका जरा मरण रोगसे उद्धार करे। दृढ़ धनुर्द्धरोंके जरिये प्रयुक्त चोखे बाणोंकी भांति शारीरिक और मानसिक रोग शरीरको क्षुब्ध करते हैं। प्यासके कारण व्यथित और शयुक्त जीनेकी इच्छा करनेवाले अवश मनुष्योंके विनाशके निमित्त शरीर अपकृष्ट होजाता है। जैसे नदियोंके स्रोत सदा बहते रहते हैं, कदाचित निवृत्त नहीं होते, वैसे ही रात और दिन मनुष्योंको परमायुकी ग्रहण करते हुए बार बार गमन करते हैं। शुक्ल और कृष्णपक्ष दोनोंके ये अत्यन्त पौर्व्वापर्य्यसे उत्पन्न हुए जीवोंको जराग्रस्त करते हैं, निमिषभर नहीं ठहरते हैं। यह अजर आदित्य जो बार बार अस्त होके फिर उदय होता है, वही प्राणियोंके सुखदुःखकी जीर्णता करता है। रात्रि मनुष्योंके अदृष्टपूर्व्व अपरिशङ्कित इष्टानिष्ट भावोंको आदान करके अस्त हुआ करती है। पुरुषका कर्म्म यदि पराधीन न हो, तो जो पुरुष जिस वस्तुकी इच्छा करें, कामनाके अनुसार वह उसे प्राप्त कर सकें, संयमशील दक्ष और बुद्धिमान मनुष्य सब धर्म्मोंसे रहित होनेसे निष्फल होते दीख पड़ते हैं और दूसरे निर्गुण अधम पुरुष मूर्ख तथा आशाहीन होके भी सब काम्यवस्तुओंको भोगते हुए दीख पड़ते हैं।

कोई पुरुष सदा जीवहिंसा करनेमें उद्यत और लोगोंको ठगनेमें अनुरक्त रहके सुखसे समय बिता रहे हैं और किसी पुरुषके कुछ चेष्टा न करके बैठे रहनेपर भी लक्ष्मी उनके निकट उपस्थित होती है, तथा कोई मनुष्य अपने कर्म्मके अनुसार पाने योग्य अर्थको भी नहीं पाते हैं; पुरुषके स्वभावके अनुसार अपराध अवलोकन करो। अन्यत्र उत्पन्न हुआ शुक्र अन्यत्र गमन करता है वही शुक्र योनिमें पड़नेसे गर्भ होता है,

कभी नहीं भी होता, उसकी उपलब्धि आमकी बौरके भांति जानी जाती है। कोई मनुष्य पुत्रकी कामना करते हुए सदा पुत्रोत्पत्तिके निमित्त सावधान रहते हैं, तौभी उनके सन्तान नहीं होती और किसी किसीके विषधर सर्पकी भांति गर्भसे व्याकुल होनेपर भी उनके आयुष्मान पुत्र उत्पन्न होता है। सन्तानकी इच्छा करनेवाले मनुष्य देवपूजा और तपस्या करके दीनभावसे दश महीना बिताते हैं, परन्तु उनका पुत्र उत्पन्न होके अन्तमें कुलाङ्गार होजाता है। दूसरे पिताके सञ्चित बहुतसे धन धान्यकी पाके कुशलपूर्व्वक सम्वर्द्धित होते हैं। स्त्री पुरुषोंके परस्पर अभिप्रायके अनुसार मैथुनके समागम समयमें गर्भ उपद्रवकी भांति आविष्ट होके योनिलाभ करता है। प्राणरोध होनेपर भी जीव उस ही समय स्वर्ग नरकके बीज भूत मांस श्लेष्मसे युक्त स्थूल शरीरान्तरको प्राप्त होता है, मरनेके अनन्तर सदा ही शरीरान्तरके सहित सम्बन्ध हुआ करता है, देहबन्धका कभी विच्छेद नहीं होता। जैसे जलमें नौकाको डूबती हुई देखके चढ़नेवालोंकी सहायताके लिये दूसरी नौका आके उपस्थित होती है, वैसे ही परिणामशील शरीरकोविनष्ट होते देखके जीवके अवलम्बके निमित्त कर्म्मफल उस ही समय देहान्तरकी संयोजना कर देते हैं। सङ्गतिक्रमसे जठरमें पड़े हुए रेतविन्दुको किस प्रकार यत्नके जरिये तुम जीवित गर्भ रूपसे देख रहे हो। जिस जठरमें पड़के खाने पीनेकी सब वस्तु जीर्ण होती हैं, उस उदरमें अन्नकी भांति गर्भ क्यों नहीं जीर्ण होता? गर्भमें मूत्र और मलकी भांति स्वभावसेही रुकी रहती है, गर्भ धारण करने वा छोड़नेमें कोई अचेतन न कर्त्ता नहीं है। उदरमें उत्पन्न गर्भस्राव हुआ करता है, और उस गर्भस्राव निवन्धनसे बहुतोंकी मृत्यु भी होजाती है।

इस योनि सम्बन्ध निबन्धनसे जो लोग बीज छोड़ते हैं, वे पुत्र कन्याके बीच किसी एक सन्तानको पाते हैं और फिर इन्द्रयोगसे संयुक्त होते हैं। अनादि प्रवाह सम्बन्धसे देहकी आयुनष्ट होते रहनेपर गर्भवास, जन्म, बाल्य, कौमार पौगण्ड, यौवन, स्थविरता, जरा, प्राणरोध और नाश इन दो अवस्थाओंके बीच सातवीं दशा स्थविरता अर्थात् पुत्र दारा कुटुम्ब आदिको पालन करनेके लिये व्याकुलता और नवीं दशा प्राणरोध ये दोनों अवस्था पञ्चभूतोंमें ही प्राप्त हुआ करती है; आत्माका इसके सङ्ग कुछ भी संसर्ग नहीं है। मनुष्योंके अभ्युदयके विषयमें कुछ उपाय नहीं है, इसमें सन्देह विरह है, क्यों कि व्याधके जरिये क्षुद्र हरिनोंकी भांति, ये व्याधिसे सदा दिक हुआ करते हैं। व्याधिसे पीड़ित होकर जिसे बहुत साधन परित्याग करना होता है, चिकित्सक लोग यत्नवान होके भी उनके मनके क्लेशको दूर नहीं कर सकते। निपुण वैद्य जो कि चिकित्सा कार्य्यमें दक्ष होके औषध सञ्चय कर रखते हैं, वे भी व्याधके जरिये प्रपीड़ित हरिनकी भांति मृत्युसे आक्रान्त होते हैं। वे लोग कषाय रस और विविध घृत सेवन करके भी मतवाले हाथीके जरिये टूटे हुए वृक्षकी भांति जरा जीर्ण दीख पड़ते हैं।

इस पृथ्वीमण्डल पर रोगसे आर्त्त मृग पक्षी, श्वापद और दरिद्र मनुष्योंकी कौन चिकित्सा किया करता है; ये सब प्रायःपीड़ित नहीं होते। जैसे प्रबल पशु निर्व्वल पशुओंको आक्रमण करते हैं, वैसे ही सब रोग घोर दुराधर्ष उग्र तेजस्वी राजाओंको आक्रमण करके आदान किया करता है। इस ही भांति दुःखसे पीड़ित मोहशोकसे युक्त सब लोग स्रोतमें छोड़ी हुई वस्तुकी भांति बलवान कालके जरिये हृत होरहे हैं। स्वभावकी निग्रह करनेमें नियुक्त होकर देहधारी लोग बहुतसे धन राज्य वा तपस्याके जरिये कदाचित स्वभावको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं होते। अभ्युदयका फल

उदय होने पर सभी सर्व्वकामी होते हैं, मृत वा जीर्ण नहीं होते और अप्रिय दर्शन नहीं करते सब ही लोगोंके ऊपर ऊपर गमन करनेकी इच्छा करते हैं, और शक्तिके अनुसार यत्न किया करते हैं, परन्तु वह घटना नहीं होती; अप्रमत्त, शठ, शूर और विक्रमी मनुष्य ऐश्वर्य्य-मदसे मत्त और मद्यमदसे मतवाले मनुष्योंकी सब भांतिसे उपासना किया करते हैं। किसी किसी पुरुषके क्लेश असमीचित होकर निवृत्त होते हैं, और कोई कोई मनुष्य प्रकृत रूपसे सब क्लेशोंको भोग किया करते हैं। कर्म्म-फल भोगनेके विषयमें महत् फलकी विषमता देखी जाती है, कोई कोई पालकी उठाते हैं, कोई पालकीमें चढ़के चलते हैं। समृद्धिकाम मनुष्योंके बीच जिनके रथ घोड़े आदि अग्रसर होते हैं, वे स्वतन्त्र हैं। कोई कोई मनुष्य सौ स्त्रियोंसे युक्त होते और उनके यहां अन्य प्रकारकी सेकड़ों स्त्रियां भी वर्त्तमान रहती हैं, स्त्री पुरुष दोनोंके संसर्गसे जो सब जीव सन्तुष्ट होते हैं, उनके बीच मनुष्य लोग एक एक करके जिस स्थानमें गमन करते हैं, वह स्थानस्वतन्त्र है, यह अवलोकन करो; इस विषयमें मोह मत करो। धर्म्म और अधर्म्मको त्यागो सत्य और मिथ्या दोनोंको परित्याग करो, जिसके जरिये त्याग करते हैं, उसे भी त्याग दो। हे ऋषिसत्तम! देवताओंने जिसके सहारे मर्त्य लोकको त्यागके स्वर्गमें गमन किया है, तुम्हारे समीप मैंने उस ही परम गुप्त विषयको कहा है।

परम बुद्धिमान् धीर शुकदेव नारद मुनिका वचन सुनके उसे अनुशीलन करते हुए निश्चय लाभ न कर सके। उनने बिचारा, कि पुत्र-स्त्री आदिके प्रतिपालनमें महान् क्लेश और विद्याभासमें अत्यन्त परिश्रम है, इसलिये जिसमें अधिक क्लेश न हो और महोन्नति हो, ऐसा नित्य स्थान कौनसा है? अनन्तर धर्म्मके परा-वरज्ञ शुकदेवने मुहूर्त्त भर तक अपने उपायके निश्चय करनेमें प्रवृत रहके निःश्रेयस सम्बन्धिनी परम गति ही निर्णय की, मैं जिस प्रकार फिर इस योनि सङ्कुल-सागरमें न लौटूं, असंश्लिष्ट अर्थात् सर्व्व उपाधिसे छूटकर किस प्रकार उस परम धाममें गमन करूंगा, जिस स्थानमें जानेसे फिर लौटना नहीं पड़ता सर्व्व सङ्ग परित्याग करके मनही मन उस ही उपायको निश्चय करते हुए मैं उस परम भावको आकांक्षा करता हूं। जिस स्थानमें मेरी आत्मा शान्ति-लाभ करेगी और मैं जिस स्थानमें अक्षय अव्यय और शाश्वतभावसे निवास करनेमें समर्थ हूंगा। उस ही स्थानमें गमन करूंगा, योगके बिना वह परम गति नहीं मिल सकती, और बुद्ध पुरुषका कर्म्मके जरिये देहबन्ध कदापि साधित नहीं होता। इसलिये गृह-स्वरूप देह परित्यागके योग अवलम्बन करते हुए वायुस्व-रूप तेजोमय सूर्य्यमण्डलके बीच प्रवेश करूंगा। इस सूर्य्य मण्डलका मेघमण्डलकी भांति नाश नहीं होता और जैसे चन्द्रमा देवताओंके जरिये कम्पित होके पृथ्वीमें पतित होता है, तथा फिर आकाशमें चढ़ता है, सूर्य्य वैसा नहीं है; चन्द्रमण्डल क्षीण होके फिर परिपूर्ण होता है, इस ही प्रकार ह्रास वृद्धिको मालूम करके मैं उसको आकांक्षा नहीं करता। सूर्य्य सदा तीक्ष्ण किरणोंके जरिये सब लोगोंको सन्तापित करता है और सदा अक्षयमण्डल रहके सब पदार्थोंसे तेज आकर्षण किया करता है। इस ही कारणसे दीप्त तेजशाली आदित्यमण्डलमें गमन करनेकी मेरी रुचि होती है। इस शरीरको छोड़के दुर्द्धर्ष होकर मैं निशङ्कचित्तसे सूर्य्यके स्थानमें वास करूंगा। ऋषियोंके सहित मैं अत्यन्त दुःसह सूर्य्यतेजमें प्रविष्ट हूंगा। नाग, पर्व्वत, उर्व्वी, दिशा, आकाश, देव, दानव, गन्धर्व्व, पिशाच, सर्प, राक्षस और लोकके बीच जो सब जीव हैं, उन सबकी

ही आमन्त्रण करता हूं। मैं सूर्य्यमण्डलमें निःसन्देह प्रवेश करूंगा। ऋषियोंके सहित सब देवता मेरे योगबलको अवलम्बन करें।

अनन्तर शुकदेव लोक विख्यात नारद महर्षिसे अनुमति मांगके उनकी आज्ञासे पिताके निकट गये। शुकदेवने महानुभाव कृष्णद्वैपायनमुनिको प्रणाम किया और प्रदक्षिण करके अपना अभिलषित विषय पूछा। महात्मा व्यासदेव शुकदेवका ऐसा वचन सुनके प्रसन्न होकर उनसे बोले, हे पुत्र! तुम इस समय उतनी देरतक निवास करो, जबतक कि तुम्हें देखके मेरे दोनों नेत्र प्रसन्न हों। शुकदेवने निरपेक्ष निःस्नेह और संशयरहित होकर मोक्ष विषयको सदा विचारते हुए गमन करनेमें मन लगाया। वह मुनिसत्तम पिताको परित्याग करके सिद्धोंसे सेवित कैलाशपर्व्वतके ऊपर जानेमें प्रवृत्त हुए।

२३१ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे भारत! द्वैपायनपुत्र शुकदेव पहाड़के शिखरपर चढ़के निर्जन तृणरहित समतल स्थलमें बैठे। उस क्रमयोगके जाननेवाले शुकदेवने चरण प्रभृति समस्त शरीरसे, शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार बुद्धिको धारण किया। अनन्तर सूर्य्यके उदय होते न होते विद्वान् व्यासपुत्र पूर्व्वकी ओर मुंह करके हाथ-पांव स्थिर कर बिनीतभावसे बैठ रहे। बुद्धिमान व्यासपुत्रने जिस स्थानमें योग करनेका उपक्रम किया, वहांपर पक्षियोंका संघात, शब्द वा उत्कट दर्शन योग्य विषय कुछ भी न था। उन्होंने उस समय सर्व्वसङ्गसे मुक्त आत्माका दर्शन किया। शुकदेव आत्मदर्शन करनेके अनन्तर हंसने लगे। मोक्षमार्गकी प्राप्तिके लिये उन्होंने फिर योग अवलम्बन करके महायोगीश्वर होकर आकाश अतिक्रम करनेका उपक्रम किया। अनन्तर वह देवर्षि नारदको प्रदक्षिण करके उस परमर्षिसे निज योगका विषय निवेदन करने लगे।

शुकदेव बोले, हे तपोधन! मैंने पथ देखा और उस ही मार्गमें गमन करनेमें प्रवृत्त हुआ हूं। हे महातेजस्वी! आपकी स्वस्ति होवे, मैं आपकी कृपासे अभिलषित स्थानमें गमन करूंगा।

भीष्म बोले, द्वैपायन पुत्र शुकदेवने नारद मुनिकी आज्ञा पाके उन्हें प्रणाम करके फिर योग अवलम्बन करते हुए आकाशमें आवेश किया। श्रीमान् शुकदेव आकाश चर और निश्चित वायुभूत होकर कैलास पर्व्वतके ऊपरसे उठके आकाशमें गमन करने लगे। बिनता पुत्रके समान तेजस्वी, मन और वायुके तुल्य वेगशाली उस द्विजवरने जब आकाश मार्गमें गमन किया, उस समय सब कोई उन्हें देखने लगे। अनन्तर अग्नि और सूर्य्यके समान तेजसे युक्त शुकदेव सर्व्वात्मता निश्चयके जरिये तीनों लोकोंका विचार करते हुए दीर्घ पथको अवलम्बन करके गमन करने लगे। उनके अव्यग्र और अकुतोभय होकर एकाग्रचित्तसे गमन करते रहने पर जङ्गम जीव उनका दर्शन करने लगे। देवताओंने निज शक्तिके अनुसार न्यायपूर्व्वक उनकी पूजा करते हुए फूलोंकी वर्षासे उन्हें परिपूरित किया। गन्धर्व्व और अप्सरावृन्द उन्हें देखके विस्मित हुए तथा सम्यक सिद्ध ऋषि लोग भी उन्हें देखके अत्यन्त विस्मययुक्त होरहे। तपस्याके सहारे सिद्धि लाभ करके यह कौन पुरुष आकाशमें बिचरता है? सूर्य्यकी ओर दृष्टि करके निज शरीरके अधोभागको न देखकर हम लोगोंके नेत्रके आनन्दको बढ़ा रहा है, सिद्धगणोंके इस प्रकार वितर्क करते रहने पर तीनों लोकमें बिख्यात् परम धार्म्मिक शुकदेव पूर्व्वकी ओर वाग्यत होके तथा सूर्य्यकी तरफ दृष्टि करके और शब्दसे

जरिये मानो अखिल आकाश मण्डलको परिपूरित करते हुए गमन करने लगे। हे राजन्! पञ्चचूड़ा आदि अप्सराओंने अत्यन्त उत्फुल्ल नेत्र और सम्भ्रान्तचित्त होकर सहसा उन्हें आकाश मार्गसे गमन करते हुए देखके अत्यन्त बिस्मित हुईं और सोचने लगीं, कि यह कौन देवता श्रेष्ठगति अवलम्बन करके निष्पृह और निश्चित विमुक्तकी भांति इस स्थानमें आगमन कर रहा है। अनन्तर उर्व्वशी और पूर्व्वचित्ति अप्सरा जिस स्थानमें सदा निवास किया करती हैं, शुकदेव उस मलयपर्व्वतकी ओर गमन करने लगे। वे दोनों उस ब्रह्मर्षिपुत्रके प्रभावको देखकर अत्यन्त बिस्मित होकर कहने लगीं, कैसा आश्चर्य्य है! वेदाभ्यासमें रत ब्राह्मणकी कैसा ज्ञान समाधान हुआ है। ये पितृसेवासे थोड़े ही समयके बीच परम श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करके चन्द्रमाकी भांति आकाश मण्डलमें विचर रहे हैं, ये पितृभक्त, दृढ़ तपस्वी और पिताके प्रियपुत्र हैं, इसलिये उस अनन्यचित्त पिताके जरिये किस प्रकारसे बिसर्ज्जित हुए। परम धर्म्मज्ञ शुकदेवने उर्व्वशीका बचन सुनकर उसके बचनमें ध्यान देके सब ओर देखा। वह उस समय आकाशमण्डल, पहाड़, बन और महारण्यके सहित पृथ्वीतल, तलाब और नदियोंको देखने लगे। अनन्तर चारों ओरसे देवता लोग बहुमान करके हाथ जोड़के द्वैपायनपुत्रको देखने लगे, परम धर्म्मज्ञ शुकदेव उस समय उन देवताओंसे यह बचन बोले, कि पिता यदि शुक कहके आवाहन करते हुए मेरा अनुगमन करें, तो आप सब कोई उन्हें स्थिर करके उत्तर देना। मेरे ऊपर स्नेहवशसे आप लोग मेरे इस बचनको प्रतिपालन करना। शुकदेवका बचन सुनके बनके सहित सब दिशा, नदी, समुद्र और पहाड़ोंने चारों ओरसे उन्हें उत्तर दिया। हे विप्रवर! आपने जो आज्ञा की, हम लोग उसे स्वीकार करते हैं, जब महर्षि आपकी बात पूछेंगे, तो हम लोग उन्हें प्रत्युत्तर देंगे।

३३२ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, महातपस्वी ब्रह्मर्षि शुकदेव ऐसा कहके चार प्रकारके दोष अर्थात् मोक्षप्रतिबन्धक धर्म्मज्ञान वैराग्य और ऐश्वर्य्य मदको त्यागके सिद्धिमार्गमें प्रस्थान किया। बुद्धिमान शुकदेवने आठ प्रकारके पुर्य्यष्टक संज्ञक लिङ्ग शरीर परित्याग करके पांच प्रकारके रज अर्थात् शब्द स्पर्श आदि पांचों बिषयोंके प्रवर्त्तक बासनालय रजोगुणको परित्याग किया, अनन्तर सत्त्व अर्थात् शुद्धिके जरिये सर्व्वत्याग करके, जिसके सहारे सर्व्वत्याग करते हो, उसे भी परित्याग करो, नारद मुनिके इस उपदेशके अनुसार सतोगुणको भी परित्याग किया, वह मानो अद्भुत मालूम हुआ। अनन्तर वह प्रज्वलित धूमरहित अग्निकी भांति नित्य निर्गुण लिङ्गवर्ज्जित आदित्यान्तर्य्यामी परब्रह्ममें प्रतिष्ठित हुए। उस महापुरुषके उपरम समयमें जगत्के दुर्भाग्य सूचक उल्कापात, दिशादाह और भूमिकम्प होने लगा, वह भी अद्भुत मालूम हुआ। वृक्षोंकी शाखा और पर्व्वतोंकी शिखर टूट टूट गिर पड़ीं। हिमालय पहाड़ निर्घात् शब्दके जरिये मानो बिदीर्ण हुआ। सहस्र किरणधारी सूर्य्य प्रकाशित न हुए। अग्नि देव भी प्रज्वलित न रहे; तालाब, नदी और समुद्र क्षुब्ध हुए। देवराज इन्द्र उस समय सुगन्धित जल बरसाने लगे। दिव्य सुगन्धियुक्त पवित्र वायु बहने लगी।

हे भारत! जिस समय शुकदेव मुनि हिमशैलसे सूर्य्यमण्डलकी ओर जारहे थे, उस समय उन्होंने उत्तर दिशाको अवलम्बन करके हिमवान और मेरुसे उत्पन्न श्वेत और पीतवर्ण सुवर्ण तथा रौप्यमय तिर्य्यग् वा ऊपरके

हिस्से में प्रथम सौ योजन लम्ब मनोहर दिव्य दो शृङ्गोंको संश्लिष्ट देखा था। जब वह अविश्व-ङ्कचित्तकर वहांसे ऊपरको उठे, तब सहसा वे दोनों शृङ्ग अलग अलग होके दीख पड़े। हे महाराज! वे उस समय अद्भुत रूपसे मालूम हुए थे। वह उस पहाड़की दोनों शिखरों परसे सहसा चले गये, उक्त गिरिराजने उनको गतिको न रोका, अनन्तर आकाश मण्डलमें देवताओंका अत्यन्त महान् शब्द प्रकट हुआ था। हे भारत! शुकदेवके अतिक्रान्त और शैल शृंगोंके द्विधा होनेपर शैलवासी गन्धर्व्व और ऋषियोंका "धन्य धन्य" शब्द सुनाई देने लगा। हे महाराज! उस कालमें गमन करनेके समय शुकदेव सुनि देवता, गन्धर्व्व ऋषि, यक्ष, राक्षस और विद्याधरोंसे पूजित हुए थे। आकाश मण्डल सब प्रकारसे दिव्य फूलोंके जरिये परिपूरित हुआ था। अनन्तर धर्म्मात्मा शुकदेवने ऊपरको ओर गमन करते हुए फूलोंसे युक्त वन और रमणीय मन्दाकिनी नदीको देखा। इस नदीमें अप्सरावृन्द शून्याकारसे शुकदेवको देखकर वस्त्र रहित होके क्रीड़ा करनेमें ही अनुरक्त थीं। शुकदेवको प्रशान्त जानके पिता व्यासदेवने स्नेहयुक्त होके उत्तम गति अवलम्बन कर पुत्रके पश्चात् गमन करते हुए उसका अनुसरण किया इधर शुकदेवने वायु लोकके ऊर्द्ध भागमें आकाश गतिको अवलम्बन करके निज प्रभाव प्रदर्शित करते हुए ब्रह्मत्व लाभ किया। महा तपस्वी व्यासदेव दूसरी भांतिके महायोग युक्त गति अवलम्बन करके उठे और निमिष भरके बीच उस स्थान पर आके उपस्थित हुए, जहांसे शुकदेवने गमन किया था। वहां देखा कि शुकदेवने पर्व्वतकी शिखरको द्विधा करके गमन किया है; उस समय ऋषियोंने उनके पुत्रके उस कार्य्यको उनके समीप वर्णन किया। अनन्तर पिता व्यासदेव ऊंचे स्वरसे "शुक" इस दीर्घ शब्दके जरिये तीनों लोकोंको अनुनादित करते हुए रोने लगे। धर्म्मात्मा शुकदेव उस समय सर्व्वमुख और सर्व्वात्मा हुए थे; इसलिये उन्होंने 'भो' शब्दके जरिये अनुनाद करते हुए प्रत्युत्तर दिया। तिसके अनन्तर स्थावर जङ्गमात्मक समस्त जगत् एकाक्षरनाद 'भो' इस शब्दको ऊंचे स्वरसे उच्चारण करके प्रत्युत्तर दिया। तभीसे अबतक उच्चारण किये हुए पृथक् पृथक् शब्दके अनुसार शुकके निमित्त सभी प्रत्युत्तर दिया करते हैं। शुकदेवने उस समय शब्द आदि विषयोंको परित्याग करते हुए निज प्रभाव प्रदर्शित किया और अन्तर्हित होकर परमपद पाया।

व्यासदेव अत्यन्त तेजशाली पुत्रको उस महिमाको देखकर उसहीको सदा चिन्ता करते हुए पहाड़की शिखर पर बैठ रहे। अनन्तर मन्दाकिनीके किनारे जो सब अप्सरा क्रीड़ा कर रही थीं, वे सब उस मुनिसत्तमको देखके अत्यन्त भयभीत और लज्जित हुईं, कोई जलमें ही बैठ रही, कोई गुल्म लताको आड़में खड़ी होगई, किसी किसीने शीघ्रताके सहित पहरनेका वस्त्र ग्रहण किया। उसे देखके महर्षिने निज पुत्रको मुक्तता तथा अपनी सक्तता जानके प्रसन्न और लज्जित हुए। इतने ही समयमें देव गन्धर्व्वोंसे घिरे हुए महर्षियोंसे पूजित भगवान पिनाकपाणि महादेव उनके सम्मुख प्रकट हुए। महादेव उस पुत्र-शोकसे दुःखी द्वैपायन मुनिको धीरज देके बोले, कि पहले तुमने मेरे समीप अग्नि, भूमि, जल, वायु और आकाशके सदृश वीर्य्यवान पुत्र मांगा था, तुम्हारे वैसे ही लक्षणोंसे युक्त पुत्र उत्पन्न होके तपस्यासे सम्वर्द्धित हुआ और मेरी कृपासे ब्रह्म तेजमय तथा पवित्र हुआ था। हे विप्रर्षि! उसने अजितेन्द्रिय देवताओंसे भी दुष्प्राप्य परम गति पाई है, इसलिये तुम उसके लिये क्यों शोक करते हो; जब तक सब पर्व्वत विद्यमान रहेंगे, जब

तक समुद्र वर्त्तमान रहेगा, तवतक पुत्रके सहित तुम्हारी अक्षयकीर्त्ति होगी। हे महामुनि! मेरी कृपासे तुम इसलोकमें सब प्रकारसे अनपायिनी निज पुत्रकी सदृशी छाया देख सकोगे।

हे भारत! महामुनि द्वैपायन स्वयं भगवान रुद्रदेवसे अनुनीत होके पुत्रकी छाया देखके परम हर्षके सहित वहांसे लौटे। हे भरत श्रेष्ठ! तुमने मुझसे जो पूछा था, यह मैंने उस ही शुकदेवके जन्म वृत्तान्तको विस्तारके सहित कहा है। हे राजन्! पहले समयमें देवर्षि नारद और महायोगी व्यासदेवने कथा प्रसङ्गसे मेरे निकट इस विषयको वर्णन किया था। जो लोग शमपरायण होके इस मोक्षधर्मसे युक्त पवित्र इतिहासको धारणा करेंगे, वे परमपद प्राप्त करनेमें समर्थ होंगे।

३३२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वाणप्रस्थ और सन्न्यासी, इनके बीच जो लोग सिद्धि अवलम्बनकी अभिलाष करें, उन्हें कौनसे देवताकी पूजा करनी चाहिये। किसकी कृपासे उन्हें अनावृत्तिफलक स्वर्ग मिलेगा और किस प्रकार परम कल्याण प्राप्त होगा। देव और पितर कर्म्ममें कौन सी विधिके अनुसार आहुति देनी होगी, मुक्त होनेपर किस स्थानमें जाना होगा। मोक्ष किस प्रकार होती है, स्वर्गमें जाकर ऐसा कौनसा कार्य्य करे, जिसके जरिये वहांसे फिर च्युत होना न पड़े। देवताओंका देवता कौन है। पितरोंका पिता कौन है, और उससे भी श्रेष्ठ और कौन है; आप मेरे समीप उसे ही वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे अनघ! तुम प्रश्नवित् होकर इस समय मुझसे जिस गूढ़ प्रश्नका विषय पूछते हो, यह देवताओंके अनुग्रह वा ज्ञानागमके बिना सौ वर्षमें भी निर्णय करके नहीं कहा जा सकता। हे शत्रुनाशन महाराज! इस कठिन आख्यानकी भी तुम्हारे समीप व्याख्या करना मुझे उचित बोध होता है। प्राचीन लोग इस विषयमें नारद और नरनारायण ऋषिके सम्वादयुक्त प्राचीन इतिहासको कहा करते हैं।

हे महाराज! पहले समयमें स्वायम्भुव मन्वन्तरके सत्ययुगमें विश्वात्मा सनातन नारायण चार मूर्त्ति धारण करके धर्म्मात्मज रूपसे प्रकट हुए, मेरे समीप पिताने इस विषयको कहा था, कि नर-नारायण, हरि तथा कृष्ण इस चतुर्व्यूह स्वायम्भुभावसे उत्पन्न हुए, तिसमेंसे अव्यय नर और नारायणने बदरिकाश्रमको अवलम्बन करके शकटके समान पर प्रेरणीय मायामय शरीरसे निवास करते हुए तपस्या की थी। उस लोकप्रसिद्ध शरीरस्वरूप शकटको आठ प्रकारकी अविद्या चक्रकी भांति ढोया करती है, वह पञ्चभूतोंसे युक्त और मनोरम है। जिस शकटमें अधिष्ठित होकर आदि पुरुष लोकनाथ नरनारायण तपस्यासे कृश और धमनि-सन्ततिके जरिये आवृत्त होकर देवताओंके भी दुर्निरीक्ष्य हुए थे। वे जिसके ऊपर कृपा करते थे, वह उनकी अनुमतिके अनुसार अन्तर्य्यामीके जरिये प्रेरित होकर निश्चय ही उन दोनोंका दर्शन करनेमें समर्थ होता था। उस ही समय महामेरु पर्व्वतकी शिखरसे उतरकर महर्षि नारद गन्धमादन पर्व्वत पर्य्यन्त सब लोकोंमें भ्रमण कर रहे थे।

हे महाराज! शीघ्रगामी देवर्षि नारद नर नारायण ऋषिके ब्रह्म यज्ञादिके समय उस बदरिकाश्रममें उपस्थित हुए, देव, असुर, गन्धर्व्व, किन्नर और महोरगोंके सहित समस्त लोक जिसमें प्रतिष्ठित है, क्या यह उसहीका निवास स्थान है। ऐसा सोचके उनके मनमें बहुत ही कौतूहल उत्पन्न हुआ। पहले जो मूर्त्ति केवल एक ही थी, अब वह धर्म्म-बुद्धिके

लिये चार प्रकार होकर धर्म्म आदिके जरिये विशेष रूपसे वर्णित हुई है। कैसा आश्चर्य है! नर-नारायण, कृष्ण और हरि, इन चारोंके जरिये इस समय धर्म्म अनुगृहीत हुआ है। कृष्ण तथा हरि किसी कारणान्तर निबन्धनसे धर्म्म प्रधान होकर स्थिति करते हैं, और ये दोनों तपोनिष्ठ होरहे हैं। ये परम तेजस्वी सब भूतोंके पिता और यशस्वी देवता हैं, इसलिये इनका उपासना कर्म्म क्या है? ये दोनों महाबुद्धिमान कौनसे देवता तथा पितर लोगके बीच किसकी पूजा करेंगे। महर्षि नारद मन-ही मन ऐसीही चिन्ता करते हुए नारायणमें भक्ति वशसे उस समय सहसा उन दोनों महात्माओंके सम्मुख प्रकट हुए। नर-नारायणने देव और पितृकार्य्यकी पूरा करके नारदकी ओर देखा और देखते ही शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार उनकी पूजा की। भगवान् नारद ऋषि अपूर्व्व विधि विस्तर और महत् आश्चर्य्य अवलोकन करके उनके निकट बैठे। वह प्रसन्न अन्तःकरणसे महादेव नारायणको देखके उन्हें नमस्कार करके यह वचन बोले।

नारद मुनि बोले, हे देव! समस्त पुराणके सहित साङ्गोपाङ्ग सब वेदोंके बीच तुम अज, नित्य, धाता और अनुत्तम अमृत रूपसे सम्मत तथा वर्णित होते हो; भूत-भविष्यत और यह समस्त जगत् तुममें प्रतिष्ठित है। गार्हस्थ्यमूलक चारों आश्रमवाले अनेक मूर्त्तियोंके अवलम्बसे तुम्हारी पूजा किया करते हैं। तुम समस्त जगत्के पिता, माता और शाश्वत गुरु हो; इस समय तुम कौनसे देवता तथा किस पिताकी पूजा करते हो, इसे मैं जाननेकी इच्छा करता हूं।

श्रीभगवान बोले, हे ब्रह्मन्! यह आत्मगुह्य सनातन विषय अवक्तव्य होनेपर भी तुम्हारी भक्तिमत्तासे कहनाउचित समभके तुम्हारेसमीप यथार्थ रूपसे वर्णन करता हूं। जो दुर्लक्ष्य, अविज्ञेय अव्यक्त अचल और शाश्वत है; जो इन्द्रियविषयों और सब भूतोंसे रहित है; वही जीवोंका अन्तरात्मा और क्षेत्रज्ञ रूपसे वर्णित होता है, वही त्रिगुणातीत पुरुष रूपसे कल्पित हुआ करता है। हे द्विज सत्तम! उसहीसे त्रिगुणात्मक अव्यक्तकी उत्पत्ति होती है; जो व्यक्त न होनेपर भी व्यक्त भावसे निवास करता है, वही अव्यया अर्थात् अपरिणामवती प्रकृति है। जो सत्ता स्वयं अव्यक्ता अर्थात् घट पट आदि व्यक्त पदार्थोंमें सत्स्वरूपसे विद्यमान होरही है, वही प्रकृति है; उसे ही हम दोनोंकी उत्पत्तिका कारण जानो और जो सदसदात्मक अर्थात् निष्कल भावसे सत् असत् कार्य्योंके कारण है, उसको कल्पनाके अधिष्ठानत्व निबन्धनसे तदात्मक है, उसी ही हम देव और पितर कल्पना करके पूजा करते हैं। हे द्विज! उससे बढ़के परम देव तथा परम पिता दूसरा कोई भी नहीं है, वही हम लोगोंको आत्मा है, इस ही लिये उसकी हम पूजा किया करते हैं। हे ब्रह्मन्! उसहीसे यह लोकभाविनी मर्य्यादा प्रसिद्ध हुई है, 'देव और पितृ कर्म्म करना चाहिये' यही उसकी आज्ञा है। ब्रह्मा, स्थाणु मनु, दक्ष, भृगु धर्म्म, यम, मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, परमेष्ठी, विवस्वान, सोम, कर्द्दम, क्रोध, अर्व्वाक और क्रीत, ये इक्कीस प्रजापति उससे उत्पन्न हुए हैं और ये सभी उस परम देवताकी सनातनी मर्य्यादाका सम्मान् किया करते हैं। उसके उद्देश्यसे देव और पितृ कर्म्म सदा करना योग्य है,—इसे यथार्थ जानके उत्तम द्विज लोग उसकी कृपासे आत्मज्ञान पाते हैं। स्वर्गबासी शरीरधारी जीव भी उसे नमस्कार करते हैं और वे लोग उसकी कृपासे तदादिष्ट गति पाते हैं। जो लोग पञ्चप्राण, मन, बुद्धि तथा दशों इन्द्रिय इन सत्तरहों गुण और कर्म्मसे रहित हैं, यह निश्चय है, कि वे पन्द्रह कला अर्थात् स्थूल शरीर परित्याग

करके मुक्त हुआ करते हैं। हे ब्रह्मन्! मुक्त मनुष्योंकी गति चेत्रज्ञ है, वह सब गुणोंसे युक्त और निर्गुण रूपसे कहा जाता है और ज्ञान-योगके सहारे दीख पड़ता है। हम दोनों उसहीसे उत्पन्न हुए हैं, ऐसा जानके उसी सनातन आत्माकी पूजा किया करते हैं। वेद तथा अनेक मत समाश्रित सब आश्रमवाले भक्तिपूर्व्वक उसकी पूजा करते हैं और वह शीघ्र ही उन लोगोंको सद्गति प्रदान करता है। इस लोकमें जो लोग सद्भावसे युक्त होकर ऐकान्तिकी भक्ति करते हैं, वे परिणाममें उसमें ही प्रवेश किया करते हैं। हे नारद! यह गुप्त वृत्तान्त तुम्हारे समीप कहा गया। हे विप्रर्षि! मेरे ऊपर भक्ति और प्रीति करनेसे तुमने सहजमें इसे सुना है।

३३४ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, द्विपदोंमें श्रेष्ठ महर्षि नारद पुरुषोत्तम नारायणका ऐसा वचन सुनके सब लोकोंके हितके अवलम्बन द्विपदोंमें वरिष्ट नारायणसे फिर वच्यमाण रीतिसे यह वचन कहने लगे।

नारद मुनि बोले, हे लोकनाथ! आपने सायम्भू होकर भी जिस निमित्त धर्म्मके स्थानमें चार रूपसे जन्म ग्रहण किया, उस लोक हितकर कार्य्यको सिद्ध करिये। अब मैं आपकी आद्या प्रकृतिका दर्शन करनेके लिये गमन करता हूं, मैं सदा गुरुजनोंकी पूजा किया करता हूं, पहिले कभी दूसरेके गूढ़ विषयको प्रकाश नहीं किया, वेदोंको भली भांति पढ़ा है और उत्तम रीतिसे तपस्या की है, तथा कदाचित् मिथ्या वचन नहीं कहा है। हाथ, पांव, उदर और उपस्थ, इन चारोंको शास्त्रके अनुसार संयत किया है। मैं सदा शत्रु-मित्रमें समदर्शी होकर उस आदिदेवके निकट शरणागत हुआ हूं और सदा एकान्त भावसे उसकी ही प्रार्थना किया करता हूं। इन सब कार्य्योंसे परिशुद्ध-सत्त्व होके भी मैं किस निमित्त अन्त रहित ईश्वरका दर्शन करनेमें असमर्थ होरहा हूं। नित्य धर्म्मको पालन करनेवाले नारायणने विधातृपुत्र नारदका ऐसा वचन सुनके यत्नके सहित उनका विधिपूर्व्वक सम्मान करके गमन करनेके लिये आज्ञा दी।

अनन्तर नारद मुनि उस प्राचीन नारायण ऋषिकी पूजा करके उनके समीपसे विदा हुए और योगयुक्त होकर अकाशमें उठे और सहसा सुमेरु पर्व्वतके ऊपर आके उपस्थित हुए। उन्होंने उस गिरिशृङ्गके निर्ज्जन स्थानपर पहुंचके मुहूर्त्त भर वहां निवास किया। वहां स्थित होके वायुकोनकी ओर देखते देखते नीचे कहे हुए अद्भुत पदार्थको देखा, क्षीरोदधिके उत्तरतरफ श्वेत नामसे विख्यात् जो विशाल द्वीप है, वह सुमेरु पर्व्वतके मूल स्थानसे बत्तीस हजार योजन ऊंचा है, यह कवियोंके जरिये निश्चितरूपसे वर्णित हुआ है। वहांपर स्थूल शरीरकी आसक्तिसे रहित, शब्द आदि विषय योगसे हीन, निश्चेष्ट, परमात्माके ध्यानमें रत शुद्धसत्त्व प्रधान पुरुष निवास करते हैं। वे सब पापोंसे रहित हैं और तेजस्विता निबन्धनसे पापी मनुष्योंके नेत्रको मोषण किया करते हैं, वे वज्रके समान हड्डी और शरीर सम्पन्न हैं। मान अपमानको समान जाननेवाले दिव्य रूप-शाली और योगप्रभावजनित बलसे युक्त हैं। उनके मस्तक छत्रके समान हैं, उनका शब्द बादल गर्ज्जनेके समान है, वृषण और बाहु पीनत्व रहित है, चरण सैकड़ों नाड़ी और रेखाओंसे युक्त हैं, उनके श्वेतवर्णके साठ दांत हैं अर्थात् जगत्‌रूपी चनाचर्व्वण करनेमें समर्थ और सम्वत्सरसे युक्त हैं, अष्टदंष्ट्रा अर्थात् दिशाओंकी भांति सबके आश्रयभूत हैं, सूर्य्यके जरिये प्रकट हुए महीना, ऋतु, सम्वत्सरात्मक महा-

कालमय विश्वचक्रकी पायसकी भांति विहन करते हैं। जिससे सब लोग उत्पन्न हुए हैं और जिससे जगत्की उत्पत्ति हुई है, सब वेद, धर्म्म, शान्त स्वभाववाले मुनि और देवता लोग जिसके वशमें स्थित हैं; उन लोगोंने भक्तिके जरिये उसही देवको हृदयमें व्यक्त किया है।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतसत्तम! वे श्वेत-द्वीप निवासी पुरुष किस प्रकार निरिन्द्रिय निराहार, निश्चेष्ट और परमात्म-ध्यान-परायण हुए थे तथा उन लोगोंकी उत्तम गति किस प्रकारकी है; जो सब मनुष्य इस लोकमें मुक्त होते हैं, उनका जैसा लक्षण है, श्वेत द्वीपवासी पुरुषोंका भी वैसा ही लक्षण है; इसलिये इस विषयमें मुझे अत्यन्त ही कौतूहल उत्पन्न हुआ है, आप मेरा सन्देह दूर करिये। आपहीको सब कथा आश्रय करती हैं, हम भी आपका आश्रय कर रहे हैं।

भीष्म बोले, हे राजन्! यह वृत्तान्त बहुत विस्तीर्ण है मैंने अपने पिताके निकट इसे सुना था। तुम्हारे समीप जो कहना होगा, वह सब कथाके बीच साररूपसे सम्मत हुआ है। पहले समयमें उपरिचर नाम पृथिवीके स्वामी एक राजा थे, वह देवराजके सखा और नारायणके भक्तरूपसे विख्यात् थे। वह धार्म्मिक सदा पितृभक्त और निरालस थे, इसीसे नारायणके वरप्रभावसे उन्होंने साम्राज्य पाया था। वह सब भूतोंके अहिंसक सत्यपरायण राजा प्रथम पञ्चरात्र अर्थात् पांच प्रकार ज्ञान-विधिके अनुसार सूर्य्यमुखनिःसृत भगवान विष्णुकी पूजा की, अनन्तर शेष बची हुई वस्तुओंसे पितरोंकी तृप्तिका विधान किया, पितरोंके तर्पणके अनन्तर बची हुई सामग्रीके जरिये ब्राह्मणोंको स्वविभागकर आश्रितोंको भोजन कराके सबके पीछे बचे हुए अन्नका स्वयं भोजन करते थे। वह आदि मध्य और अन्त रहित लोककर्त्ता अविनाशी देवोंके देव जनार्दनके विषयमें सब प्रकारसे भक्तिमान थे। वह शत्रुनाशन राजा नारायणमें अत्यन्त भक्ति करता था, इसीसे देवराज उसे अपने साथ एक ही आसनपर बैठाते थे। निज राज्य, धन, स्त्री और वाहन आदि जो कुछ था, उस राजाने भगवानके उद्देशसे उन सब वस्तुओंको समर्पण किया था।

हे राजन्! वह राजा सावधान होकर काम्य और नैमित्तिक यज्ञीय कार्य्योंको सात्वत विधिके अनुसार निबाहता था। पञ्चरात्र अर्थात् पांच प्रकारके ज्ञान सम्पन्न मुख्य मुख्य महानुभाव ब्राह्मण उसके स्थानमें भगवत् प्रोक्त उपहारके सहित उत्तम भोज्य-सामग्रियोंको भोजन करते थे, उस शत्रुनाशन राजाके धर्म्मानुसार राज्यशासन करते रहनेपर उसका वचन कदापि मिथ्या नहीं हुआ और मन भी कभी किसी दोषके जरिये दूषित नहीं हुआ। उसने शरीरके जरिये अणुमात्र भी पाप कार्य्य नहीं किया। चित्र-शिखण्डि नाम जो सप्तऋषि विख्यात् हैं, उन सबने एकवाक्य होकर महागिरि सुमेरुके ऊपर जिस श्रेष्ठ शास्त्रको बनाया वह सात मुखके जरिये बाहर होके अत्यन्त उत्तम लोक धर्म्म रूपसे विख्यात् हुआ है। मरीचि अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और महातेजस्वी वसिष्ठ, ये सात, पुरुष चित्र-शिखण्डि नामसे महत् अहङ्कार आदि मूर्त्ति धारण करके सप्त प्रकृति रूपसे विख्यात् हैं। स्वायम्भुव मनु आठवें हैं, ये मूल प्रकृति कहाते हैं, इन सबने लोकोंको धारण किया है और इन्हींसे शास्त्र प्रकट हुए हैं। एकाग्रचित्त, दांत 'संयममें रत' वर्त्तमान, भूत, भविष्यत, सत्य धर्म्म परायण इन मुनियोंने यही श्रेष्ठ है, यही ब्रह्म है, यही अनुत्तम हितकर है, मनही मन ऐसा विचार करके सब लोकों और शास्त्रोंको बनाया है। उस शास्त्रमें धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष विषय वर्णित है। द्युलोक और भूलोकमें विख्यात् विविध मर्य्यादा भी स्थापित हुई है।

प्रागुक्त उत्पन्न हुए सब लोग उन ऋषियोंके सहित दिव्य परिमाणसे सहस्र वर्ष पर्य्यन्त तपस्याके जरिये सर्व्वभूत संयोगी नारायण हरिकी आराधना करके उनके सहारे अनुशासित हुए थे। उस समय सब लोकोंकी हितकामनासे सरस्वती देवीने उन ऋषियोंके अन्तःकरणमें प्रवेश किया था।

अनन्तर उन तपोवित् द्विजातियोंने शब्द, अर्थ और हेतु विषयमें इस प्रथम सृष्टिके लिये मर्य्यादा प्रवर्त्तन किया। जिस स्थानमें कारुणिक नारायण निवास करते थे, पहले ऋषियोंने वहांपर ओंकारस्वर पूजित उस शास्त्रको उन्हें सुनाया। तब अनिर्द्दिष्ट शरीरगामी अदृश्य पुरुषोत्तम भगवान प्रसन्न होकर उन ऋषियोंसे बोले, सब लोकके धर्म्म जिससे प्रवृत्त हो, उस ही प्रकारसे यह अत्यन्त उत्तम सात हजार श्लोकरहित हुई हैं। ये लोकमें प्रवृत्ति और निवृत्ति हेतुसे ऋक्, यजु, साम, अथर्व्व तथा आङ्गिरस वेदके जरिये सेवित होंगी। मैंने प्रमाणके अनुसार दयासे ब्रह्मा और क्रोधसे रुद्रको उत्पन्न किया है, तुम लोग तथा समस्त प्रकृति सूर्य्य, चन्द्रमा, वायु, भूमि, जल, अग्नि नक्षत्रसमूह अथवा भूत शब्दसे जो कुछ मालूम होता है, उसके सहित ब्रह्मवादी लोग यथार्थ रूपसे निज निज अधिकारमें वर्त्तमान रहेंगे। प्रमाणके अनुसार यह शास्त्र ही सबसे श्रेष्ठ होगा और मेरी यह आज्ञा सबको ही प्रमाणित होगी। स्वायम्भुव मनु स्वयं इस शास्त्रसे धर्म्म वर्णन करेंगे। उशना और बृहस्पति जब उत्पन्न होंगे, तब वे दोनों तुम लोगोंकी बुद्धिके सहारे उद्धृत इस शास्त्रके प्रवक्ता होंगे।

हे द्विजसत्तम ऋषिवृन्द! स्वायम्भुव मनु प्रणीत धर्म्मशास्त्र, शुक्राचार्य्य कृत और बृहस्पतिके बनाये हुए शास्त्रोंका सर्व्वत्र लोकमें प्रचार होने पर प्रजापालन वसु बृहस्पतिके निकट तुम लोगोंके बनाये हुए इस शास्त्रको पावेगा। वह सदभिप्रायशाली राजा मेरा भक्त होगा, वह लोकके बीच उस ही शास्त्रके अनुसार सब कार्य्योंको निबाहेगा। सब शास्त्रोंके बीच लोकमें यही सबसे उत्तम है, यह अर्थ और धर्म्म जनक तथा श्रेष्ठ रहस्यरूप गिना जावेगा। इस शास्त्रके प्रवर्त्तन हेतुसे तुम लोग प्रजावन्त होगे, प्रजापाल वसु राजा इस शास्त्रके प्रभावसे महान् और श्रीसंयुक्त होगा। उक्त राजाके इस लोकसे गमन करने पर यह शास्त्र अन्तर्हित होगा, यह सब वृत्तान्त मैंने तुम लोगोंके समीप वर्णन किया।

अदृश्य पुरुषोत्तमने इतनी बात कहके उन ऋषियोंको त्यागके किसी अनिर्द्दिष्ट दिशाकी ओर प्रस्थान किया। अनन्तर सर्व्वलोकार्थ चिन्तक वे पितर लोग ऊपर कहे हुए धर्म्म योनि सनातन शास्त्रका लोकमें प्रचार करने लगे। प्रथम कल्पित-युगमें अङ्गिरासे बृहस्पति उत्पन्न हुए, उनके समीप सांग उपनिषत् शास्त्र स्थापित करके सर्व्व धर्म्म प्रवर्त्तक सब लोकोंको धारणकरनेमें समर्थ सप्तर्षियोंने तपस्या करनेका निश्चय करके यथाभिलषित देशमें गमन किया।

३३५ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, अनन्तर महाकल्पके बीतनेपर जब अंगिराके पुत्र बृहस्पति उत्पन्न होके देवताओंके पुरोहित हुए, उस समय देवताओंने निर्वृत्ति लाभ की। हे राजन्! बृहत्, ब्रह्म और महत, ये सब शब्द एक ही पर्य्यायवाची हैं, इसलिये बृहत्व, ब्रह्मत्व और महत्व गुणसे युक्त उस पुत्रका नाम बृहस्पति हुआ। वह थोड़े ही समयमें अत्यन्त विद्वान होगये। राजा उपरिचर वसु उनके प्रधान शिष्य थे, उन्होंने उनके समीप चित्रशिखण्डिज शास्त्रको पूरी रीतिसे पढ़ा, राजा उपरिचर वसु पहले देवबिधिके

अनुसार शुद्धसत्त्व होकर इन्द्रके सुरलोक पालन करनेकी भांति अखण्ड भूमण्डलको पालन किया था। उस महानुभाव राजाने अश्वमेध नाम महत् यज्ञका अनुष्ठान किया। उपाध्याय बृहस्पति उस यज्ञमें होताका कार्य्य निर्व्वाह करनेके लिये व्रत हुए। प्रजापतिके पुत्र महर्षि एकत, द्वित और त्रित, ये तीन पुरुष सदस्य हुए थे। अनन्तर धनुषाख्य, रैभ्य, अर्व्वावसु, मेधातिथिऋषि, महर्षि ताण्ड्य, शान्ति ऋषि, महाभाग वेदशिरा, ऋषिश्रेष्ठ कपिल शालिहोत्र-पिता, आद्य, कठ, तैत्तिरि, वैशम्पायन, पूर्व्वज कण्व और देवहोत्र ये सोलह ऋषि उस यज्ञमें दीक्षित हुए थे। हे राजन्! उस महायज्ञमें सब यज्ञकी सामग्री इकट्ठी की गई थी, उक्त यज्ञमें पशुहिंसा नहीं हुई थी, राजा यजमान होकर अत्यन्त श्रद्धावान था। वह अहिंस्र, पवित्र, अक्षुद्र और निराशी होकर सब कार्य्योंमें संस्तुत हुआ था। आरण्यक स्थानीभूत सब भाग उसमें कल्पित हुए थे। अनन्तर देवोंके देव भगवान्ने अन्य पुरुषोंके लिये अदृश्य होकर केवल राजाके ऊपर प्रसन्नता निबन्धनसे उसे स्वयं दर्शन दिया और निज यज्ञभाग पुरोडासको आघ्राण करके स्वयं ग्रहण किया। भगवान् हरिमेधा नारायणके अदृश्य होकर यज्ञभाग ग्रहण करनेसे बृहस्पति क्रुद्ध होकर स्रुवा उठाके वेगपूर्व्वक दौड़े। वह स्रुवासे आकाशमें आघात करते हुए क्रोधवश होकर आंसू बहाने लगे, और उपरिचर राजासे बोले, यह उत्थित यज्ञभाग मेरे सम्मुखमें निःसन्देह स्वयं नारायणको ग्रहण करना होगा।

युधिष्ठिर बोले, इस यज्ञमें उत्थित सब यज्ञभाग साक्षात् देवताओंके जरिये प्राप्त हुआ था, परन्तु सर्व्वभूत संयोगी हरि किस निमित्त नेत्र गोचर न हुए?

भीष्म बोले, अनन्तर भूमिपाल उपरिवसु और दूसरे सदस्यगण क्रोधयुक्त बृहस्पति मुनिको प्रसन्नकरके सबने असम्भ्रान्त होकर उनसे कहा, कि आपको क्रोध करना उचित नहीं है। आपने जो क्रोध प्रकाश किया, वह सत्ययुगका धर्म्म नहीं है। हे बृहस्पति! जिसका यज्ञभाग उठ गया है, वह देवता क्रोधी नहीं है। आप अथवा हम लोग उसे देखनेमें समर्थ नहीं हैं। वह जिसके ऊपर कृपा करे, वही उसका दर्शन करनेमें समर्थ होसकता है। अनन्तर एकत, द्वित, त्रित और चित्रशिखण्डिगण उनसे बोले, कि हम प्रजापति ब्रह्माके मानस पुत्ररूपसे विख्यात् हैं; और किसी समय हम लोगोंने निःश्रेयस लाभके निमित्त उत्तर दिशामें गमन किया, वहां सहस्र वर्षतक क्लेश सहके श्रेष्ठ तपस्याचरण करते हुए स्थिर होकर काष्ठकी भांति एक चरणसे खड़े रहे। हमने जिस स्थानमें महादारुण तपस्या की थी, वह स्थान क्षीरोदसागरके किनारे सुमेरुके उत्तर तरफ है। हम वरदाता वरण्य देवोंके देव सनातन नारायणका किस प्रकार दर्शन करेंगे, किस उपायसे नारायण देवको अवलोकन करनेमें समर्थ होंगे, इस ही प्रकार चिन्ता करते हुए, जब व्रत समाप्त होनेपर, स्नान किया, उस समय प्रहर्षणकारी अशरीरिणी वाणी कोमल और गम्भीर स्वरसे सुन पड़ी,—हे विप्रवृन्द! तुम लोगोंने प्रसन्न अन्तःकरणसे उत्तम रीतिसे तपस्या की है, तुम लोग भक्त हो और किस प्रकार नारायणका दर्शन करोगे, उस विषयके जिज्ञासु हुए हो, इसलिये क्षीरसागरके उत्तर भागमें महाप्रभावयुक्त श्वेतद्वीप है, वहांपर चन्द्रमाके समान तेजसे युक्त नारायणमें रत मनुष्य एकान्त भावसे पुरुषोत्तममें भक्ति करके निवास करते हैं, श्वेतद्वीप निवासी सब पुरुष अतिन्द्रिय, निराहार, अनिस्पन्द, अत्यन्त भक्तिनिष्ठ और परमात्माके ध्यानमें रत हैं, वे लोग सनातन देव सहस्रार्चि

नारायणमें प्रवेश किया करते हैं। हे मुनिवृन्द! इसलिये तुम लोग वहां ही जाओ, उस स्थानमें हमारा स्वरूप प्रकाशित है।

अनन्तर हम लोग उस अशरीरिणी वाणीको सुनके यथा-प्रसिद्ध मार्गको अवलम्बन करके उस देशमें गये। जब हम लोग नारायणका ध्यान करते हुए उनके दर्शनकी इच्छासे श्वेत महाद्वीपमें पहुंचे, तब वह हम लोगोंके दृष्टिगोचर हुए और नयनगोचर होते ही उस ही समय अन्तर्द्धान होगये। उनके तेजोप्रभावसे हम लोगोंकी दर्शनेन्द्रिय आच्छन्न होगईं, इससे फिर हम उस पुरुषको न देख सके; किन्तु उनके दक्षिण दर्शन निबन्धनसे हम लोगोंमें विज्ञान उत्पन्न हुआ। जिन्होंने तपस्या नहीं की है, वे लोग सहसा उसे नहीं देख सकते, इससे हम लोगोंने एक सौ वर्षतक उस समयके अनुसार महत् तपस्या करके व्रत समाप्त होनेपर शुभाचार पुरुषोंको देखा; वे लोग चन्द्रमाके समान श्वेतवर्ण, सब लक्षणोंसे युक्त होके सदा हाथ जोड़के उर्द्धमुख अथवा कोई कोई पूर्व्व ओर मुख करके जप कर रहे हैं। वे महात्मा लोग जो जपकरते थे, उसका नाम मानस जप है, वैसी एकाग्रचित्तता निबन्धनसे नारायण प्रसन्न होते हैं, हे मुनिवर! युग क्षयके समय सूर्य्यकी जैसी प्रभा होती है, उनमेंसे हर एककी वैसी ही प्रभा थी। हमने विचारा, कि वह द्वीप केवल तेजका आधार है। उस द्वीपके निवासी मनुष्योंके बीच सभी महातेजस्वी थे, कोई एक दूसरेसे अधिक तेजस्वी न दीख पड़े।

हे वृहस्पति! अनन्तर हमने फिर युगपत समुदित सहस्र सूर्य्यकी प्रभाकी सहसा निरीक्षण किया। अनन्तर वे समस्त मनुष्य एकत्रित होकर प्रसन्नचित्तसे हाथ जोड़कर शीघ्रताके सहित वेगपूर्व्वक दौड़के उनके निकट गये। वे सब कोई 'नम' केवल यही वचन बोलने लगे। हम लोग उस समय "नमोनम" यह विपुल ध्वनि सुनने लगे। अनन्तर उन मनुष्योंने उस देवकी पूजाका उपहार लाके उपस्थित किया; हम लोगोंके नेत्रकी ज्योति और इन्द्रियोंके अवसन्न होनेसे कुछ भी न दीख पड़ा। एक मात्र विततरूपसे उच्चारित शब्द ही हमें सुनाई देने लगा। हे पुण्डरीकाक्ष! तुम्हारी जय हो, हे विश्वभावन! तुम्हें नमस्कार है, हे हृषीकेश महापुरुष! हे पूर्व्वज! तुम्हें नमस्कार है। शिक्षाचर युक्त इस ही शब्दको हम लोग सुनने लगे। उस समय सर्व्वगन्धवह पवित्र वायु-दिव्य पुष्पों और कर्म्मयोग्य औषधियोंसे युक्त होकर बहने लगा। उन अत्यन्त निष्ठायुक्त पञ्चकालज्ञ परम भक्तिमान मनुष्योंने वचन, मन, कर्म्मके जरिये नारायणकी पूजा की। उन लोगोंने जिस प्रकार वचन उच्चारण किया, बोध होता है, उस हीके अनुसार वहां पर नारायण प्रकट हुए, परन्तु हम लोग उनकी मायासे मोहित होकर उन्हें देखनेमें समर्थ न हुए। हे अङ्गिरस प्रवर! वायुके सम्यक् निवृत्त और पूजाका उपहार प्रतिपादित होनेपर हम लोगोंका चित्त चिन्तासे व्याकुल हुआ। उन शुद्धयोनि सहस्र मनुष्योंके बीच किसीने मन अथवा दर्शनके सहारे हम लोगोंका सम्मान नहीं किया। एक भावसे युक्त शान्त मुनियोंने प्रह्मत्वका अनुष्ठान करते हुए हम लोगोंके विषयमें कोई भाव प्रकाशित न किया। अन्तमें जब हम लोग अत्यन्त थक गये और तपस्याके जरिये कर्षित हुए, तब आकाशसे कोई अशरीर भूत हमसे नीचे कहा हुआ वचन बोला, अदृश्य पुरुष बोला, ये जो सब इन्द्रियोंसे रहित श्वेत-वर्ण पुरुष दीखते हैं, इन द्विज श्रेष्ठोंके दीख पड़नेसे ही देवेश हरिका दर्शन होता है। हे मुनिवृन्द! तुम लोग जिस स्थानसे आये थे, शीघ्र ही वहां चले जाओ; भक्तिहीन मनुष्य किसी भांति उस देवका दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होते। हे द्विजसत्तम! बहुत समयतक

अत्यन्त भक्तिनिष्ठ होने पर प्रभा-मण्डलके सहारे उस दुर्दृश्य भगवानका तुम लोग दर्शन करनेमें समर्थ होगे; इसलिये तुम लोगोंको महत् कार्य्य करना होगा। हे विप्रवृन्द! इसके अनन्तर सत्ययुगके बीतने और विपर्य्यस्त होने-पर वैवस्वत मन्वन्तरमें त्रेतायुगके प्रारम्भ समय देवताओंकी कार्य्य-सिद्धिके निमित्त तुम लोग सहाय होगे। अनन्तर हम लोग उस अमृत समान अद्भुत वचनको सुनके उनकी कृपासे शीघ्र ही अनुभिलषित स्थानमें चले आये। इस प्रकारकी कठोर तपस्या और हव्य कव्य प्रदान करने पर भी जब हम लोग ही उस देवका दर्शन न कर सके, तब तुम किस प्रकारसे उसके दर्शन करनेमें समर्थ होगे। विश्वस्रष्टा हव्य-कव्य भोक्ता महत् भूत अनादि-निधन अव्यक्त नारायण देव दानवोंसे पूजित हैं, इस-लिये उनका दर्शन करनेके लिये पुण्यपुञ्जकी आवश्यकता है। उदार बुद्धि बृहस्पतिने इस ही प्रकार एकतके वचन तथा द्वितके मतानुसार सदस्योंसे अनुनीत होकर यज्ञको समाप्त करके देवताओंकी पूजा की। राजा उपरिचर वसु यज्ञ समाप्त होनेपर प्रजापालन करने लगे। अनन्तर उन्होंने ब्रह्मशापद्वारा स्वर्गसे भ्रष्ट होकर पृथ्वीतलमें प्रवेश किया था। हे नृपश्रेष्ठ! वह सत्य-धर्मयुक्त सदा धर्मानुरागी राजा भूमिके अन्तर्गत होनेपर भी नारायण-परायण होकर नारायण मन्त्रको जपते हुए उनकी कृपासे फिर स्वर्गमें गये। उन्होंने नारायणमें निष्ठानिबन्धनके कारण पृथ्वीतलसे थोड़े ही समयके बीच ब्रह्मलोकमें जाकर परम पद पाया।

३३६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, यदि महात्मा राजा उपरि-वसु परम भागवत थे, तब किस लिये वह स्वर्गसे भ्रष्ट होकर पृथ्वीतलमें प्रविष्ट हुए।

भीष्म बोले, हे भारत! इस विषयमें प्राचीन लोग ऋषिवृन्द और देवताओंके सम्वादयुक्त इस प्राचीन इतिहासको कहा करते हैं। यज्ञ करना होगा, अज शब्दसे बकरा जानना चाहिये, अन्य पशु नहीं; यही वैदिकी मर्य्यादा है।

ऋषिवृन्द बोले, यज्ञके समय 'बीजके जरिये त्याग करें' यही वैदिकी श्रुति है। बीजहीका नाम अज है, इससे बकरा मारना उचित नहीं है। हे देववृन्द! यज्ञमें पशुवध करना साधुओंका धर्म्म नहीं है, यह सत्ययुग सबसे श्रेष्ठ है, इसलिये इसमें किस प्रकार पशुहिंसा होसकती है।

भीष्म बोले, इस ही प्रकार देवताओंके सङ्ग ऋषियोंका विवाद होते रहने पर आकाशचर नृपश्रेष्ठ समग्रबल वाहनसे युक्त श्रीमान् राजा उपरिचर वसु उस स्थानमें उपस्थित हुए। द्विजातिवृन्द उस आकाशगामी वसुको सहसा गमन करते हुए देखके देवताओंसे बोले, यही राजा हम लोगोंके सन्देहको दूर करेगा, महात्मा वसने विधिपूर्व्वक यज्ञ किया है, यह दानपतिश्रेष्ठ और सर्व्वभूतोंके हितप्रिय है, इसलिये यह किस प्रकार अन्यथा बचन कहेगा। देवताओं और ऋषियोंने ऐसा ही विचारके सहसा उस वसुराजके निकट जाके पूछा, हे राजन्! अज अथवा औषधि इन दोनोंमेंसे किस वस्तुके सहारे यज्ञ करना चाहिये। आपका बचन हम लोगोंके समीप प्रमाण स्वरूपसे माना जायगा। राजा उपरिचर वसु हाथ जोड़के उन लोगोंसे बोले, हे द्विजोत्तम-गण! आप लोगोंके बीच किसका क्या मत है, उसे सत्य कहिये।

ऋषिवृन्द बोले, हे नराधिप! धान्यके जरिये यज्ञ करना चाहिये, यह हम लोगोंका पक्ष है, और देवताओंका पशुके जरिये ही यज्ञ करना मत है। हे राजन्! इन दोनों मतोंके बीच आपको जो सम्मत हो, उसे हम लोगोंके समीप प्रकट करिये।

भीष्म बोले, उपरिचर वसुने देवताओंका मत जानके उनके पक्षको अवलम्बन करके बकरेसे ही यज्ञ करना उचित है, ऐसा ही वचन कहा। अनन्तर सूर्य्यके समान तेजस्वी सब मुनियोंने क्रुद्ध होकर देव-पक्षपाती विमानमें स्थित वसुसे कहा, हे राजन्! तुमने जिस कारणसे देवताओंका पक्ष ग्रहण किया है, उस ही निमित्त स्वर्गसे गिरो और आजसे तुम्हारी आकाश-गति विनष्ट हुई। हमारे शापसे तुम पृथ्वीतल भेद करके उसमें प्रवेश करोगे।

हे राजन् उस समय उस ही मुहूर्त्तमें राजा उपरिचर वसुने नीचे गिरके भूविवरमें प्रवेश किया, परन्तु नारायणकी आज्ञांवशसे स्मृति शक्तिको परित्याग नहीं किया। इधर देवता लोग इकट्ठे होकर उक्त उपरिचर वसुके शाप विमोचन करनेके निमित्त अव्यग्र भावसे चिन्ता करने लगे; यह उक्त राजाके सुकृतका फल है। 'यह महानुभाव राजा हमारे लिये शापग्रस्त हुआ है। हे देववृन्द! इसलिये हम लोगोंको इकट्ठे होके इसका प्रत्युपकार करना चाहिये।' देवता लोग इस विषयमें उद्योगी हो मनही मन निश्चय करके प्रसन्नचित्तसे उपरिचर वसुसे बोले, हे राजन्! तुम ब्राह्मण और देवताओंमें भक्ति किया करते हो, इसलिये सुरासुरगुरु हरि तुमपर अत्यन्त प्रसन्न होकर शाप विमोचन करेंगे। हे नृपवर! महानुभाव ब्राह्मणोंका अवश्य सम्मान करना योग्य है, उन लोगोंके तपोबलसे तुम्हें अवश्य उत्तम फल प्राप्त होगा। हे नृपसत्तम! जब कि तुम सहसा आकाशसे भ्रष्ट होके भूतलमें गिरे हो, तब हमलोग तुम्हारे ऊपर एक अनुग्रह करेंगे। हे निष्पाप! तुम शाप वशसे जबतक भूमिके छिद्रमें वास करोगे, तबतक हमारे अनुष्ठान निबन्धनसे समाहित ब्राह्मणोंके सहारे यज्ञ-समयमें उत्तम रीतिसे होमकी वसु धारा पाओगे; ग्लानि तुम्हें स्पर्श न कर सकेगी। हे राजेन्द्र! भूविवरमें निवास करनेके समय तुम्हें भूख प्यास न लगेगी, वसुधारा पान करनेसे तुम तेजपुञ्जके जरिये परिपूरित होगे। हमारे वर-प्रभावसे भगवान् प्रसन्न होकर तुम्हें ब्रह्मलोकमें ले जांयगे। उन देवताओंने इस ही प्रकार राजाको वरदान करके निज निज स्थानपर गमन किया और महा तपस्वी ऋषियोंने भी निजाश्रमको प्रस्थान किया।

हे भारत! अनन्तर उपरिचर वसुने विष्वक्सेन भगवान्‌की पूजा की और सदा नारायण मुखोच्चारित मन्त्रका जप करने लगे। वह भूविवरमें वास करके भी पञ्च महाकालसे पञ्च यज्ञके जरिये सुरपति हरिको पूजा करते थे। अनन्तर भगवान नारायण उस अनन्यभक्त, जित चित्त हरिपरायण राजाकी भक्तिसे प्रसन्न हुए, वरदाता भगवान विष्णु उस समय निकटवर्त्ती महावेगशाली विहङ्गवर प्रियपात्र गरुड़से बोले, हे महाभाग खगेश्वर! मेरे वचनके अनुसार अवलोकन करो। संशितव्रत धर्मात्मा वसु नाम सम्राट् ब्राह्मणोंके कोपसे पृथ्वीतलमें प्रविष्ट हुआ है। हे खगवर! अब ब्राह्मण लोग उसके जरिये सम्मानित हुए हैं, इसलिये तुम मेरी आज्ञाके अनुसार उस भूववरमें छिपे हुए राजाके निकट गमन करो। हे गरुत्मन्! तुम उस अधश्चर राजाको शीघ्र ही नभश्चर करो। अनन्तर वायुके समान वेगशाली गरुड़ने दोनो पङ्ख फटकारते हुए जिस स्थानमें वसुराज निवास करते थे, उस पृथ्वीविवरमें प्रवेश किया विनता पुत्र गरुड़ सहसा उसे उठाके शीघ्र ही आकाशमें उड़े और उन्हें आकाशमें परित्याग किया, उस ही मुहूर्त्तसे वह राजा फिर उपरिचर हुआ और उसने सशरीर ब्रह्म लोकमें गमन किया। हे कुन्तीनन्दन! इस ही प्रकार वाक्य दोषनिबन्धनसे वह महात्मा वसु ब्रह्म शापसे अधोगतिको प्राप्त हुए थे, देवताओंकी आज्ञानुसार वह केवल परम पुरुष हरिकी

आराधना करके थोड़ेही समयके बीच द्विजश्रापसे कूटके ब्रह्म लोकमें गये।

भीष्म बोले, हे नृपवर! जिस प्रकार मनुष्यगण उत्पन्न हुए थे वह सब तुम्हारे समीप मैंने वर्णन किया। महर्षि नारदने जिस प्रकार श्वेत द्वीपमें गमन किया था, वह सब तुम्हारे समीप कहता हूं, एकाग्रचित्त होकर सुनो।

३३७ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, भगवान् महर्षि नारदने श्वेत महाद्वीपमें पहुंचके उन सफेदवर्ण चन्द्रमा समान मनुष्योंको देखा और सिर नीचा करके उन लोगोंको पूजा की; फिर उनके जरिये मनहीमन पूजित होकर नारायणका दर्शन करनेके अभिलाषी होकर जपपरायण और समस्त कृच्छ्रसाध्य व्रत करते हुए स्थित रहे। वह विप्रवर एकाग्रचित्त समाहित और ऊर्द्ध बाहु होकर निर्गुण और गुणात्मक विश्वात्माकी स्तुति करने लगे।

नारद मुनि बोले, हे देवोंकेदेव! तुम जीवोंके अन्तर्य्यामी हो, इससे तुम्हें प्रणाम है, तुम सर्व्वव्यापकत्व-निबन्धनसे निष्क्रिय हो; असङ्गत्व हेतुसे निर्गुण हो, उदासीन बोधरूप होनेसे लोकसाक्षी हो, देहद्वयके प्रकाशक जीव हो, इसीसे क्षेत्रज्ञ कहाते हो; शरीर और जीवेशसे ज्यायान होनेसे पुरुषोत्तम हो, देशकाल तथा यथार्थ में परिच्छेद रहित होनेसे अनन्त हो। स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीरके जलानेवाले होनेसे पुरुष हो, समष्ठि स्थूल शरीर आदिके दाहक हो, इसलिये महा पुरुष कहाते हो, अन्नमयादि पुरुषोंके बीच उत्तम अर्थात् सत्य ज्ञान और आनन्द स्वरूप होनेसे पुरुषोत्तम हो सत्त्व, रज और तमोरूप तथा त्रिगुण; तीनों गुणोंके सङ्घात रूप होनेसे प्रधान हो। तुम अमृत अर्थात् सुधा स्वरूप हो और अमृताख्य अर्थात् देवरूपी हो; अनन्ताख्य अर्थात् शेषनाग स्वरूप हो, तुम अव्याकृतात्मा होनेसे व्योम हो; अनादि होनेसे सनातन हो; कार्य्य और कारण रूपसे व्यक्त तथा अव्यक्त हो, ऋतधाम अर्थात् सत्यप्रकाश हो; आदिदेव नारायण और कर्म्म फलदाता हो, इसही कारण वसुप्रद कहाते हो; तुम दक्ष आदि प्रजापति स्वरूप हो, मोक्षोपदेशक सनकादि सुप्रति स्वरूप हो, अश्वत्थ प्रभृति वनस्पति स्वरूप हो। तुम महा प्रजापति अर्थात् चतुर्मुख स्वरूप हो। तुम ब्रह्मादि जीव रूपसे पशुओंके पति हो, इसलिये ऊर्ज्जस्पति कहाते हो। वाक्यके प्रवर्त्तक होनेसे वाचस्पति हो। तुम जगत्पति अर्थात् इन्द्र स्वरूप हो, मनस्पति अर्थात् सूत्रात्मा हो, दिवस्पति सूर्य्य स्वरूप हो, मरुत्पति प्राणवायु स्वरूप हो, जलपति वरुण स्वरूप हो, तुम्हीं पृथ्वीपति राजा हो, दिक्पति इन्द्र आदि दिक्पाल स्वरूप हो; अर्थात् महाप्रलयकालमें जगत्के आधार होनेके पूर्व्वनिवास हो; अप्रकाश्य हो; इसलिये गुह्य कहाते हो; ब्रह्माको वेद प्रदान किया है इसलिये ब्रह्म पुरोहित हो; ब्राह्मण शरीर साध्य यज्ञ और अध्ययनादि स्वरूप हो, इस निमित्त ब्रह्मकायिक कहाते हो, महाराजिक नामक देवगण विशेष और चतुर्म्महाराजिक, महाभासुर, सप्त महाभाग अर्थात् सप्त संख्यक महत् यज्ञभाग स्वरूप हो। तुम यमगण हो इसलिये याम्य कहाते हो; तुम चित्तगुप्तादिरूप होनेसे महायाम्य कहे जाते हो; यमपत्नीमें आसक्त होनेसे संज्ञासंज्ञ हो; तुम तुषित और महातुषित देवगण स्वरूप हो; मृत्यु स्वरूप होनेसे प्रतर्द्दन कहाते हो; मृत्युकी सहायताके जरिये कल्पित काम रोगादि स्वरूप हो, इसीसे परिनिर्म्मित कहाते हो; तदन्य श्रम अर्थात् आरोग्य स्वरूप होनेसे अपरिनिर्म्मित हो; कामादि ग्रस्त न होनेसे वशवर्त्ती हो; श्रमादिमान हो, इसलिये अपरिनिन्दित कहाते

हो ; सर्व्व-जातीय रूपोंमें अनन्त हो, इसीसे अपरिमित कहाते हो ; तुम शास्य होनेसे वश-वर्त्ती हो, और शास्ता हो, इसलिये अवशवर्त्ती कहाते हो। तुम अग्निहोत्र आदि यज्ञ, ब्रह्म-यज्ञ आदि महायज्ञ, यज्ञ सम्भव ऋत्विक आदि यज्ञयोनिविद, यज्ञगर्भ अग्नि और यज्ञ हृदय अर्थात् यज्ञादि उपासना स्वरूप हो। तुम यज्ञ स्तुत, यज्ञभाग हर पञ्च यज्ञ हो और अहो-रात्र, मास, ऋतु, अयन और सम्वत्सर इस पञ्च-काल कर्त्तृत्वरूपसे जो गीतामें प्रसिद्ध है, तुम उनके पति हो, इसलिये पञ्चकाल कर्त्तृपति कहाते हो ; पञ्चरात्र नाम आगमगम्य होनेसे तुम पञ्चरात्रिक हो। तुम अकुण्ठित हो, इसही निमित्त वैकुण्ठ कहाते हो ; किसीके निकट पराजित न होनेसे अपराजित हो। तुम मान-सोपाधिक हो, इससे मानसिक कहाते हो और नामसे विदित रहनेसे तुम्हारे नाम नामक हो, तुम ब्रह्माके भी प्रभु हो, इसीसे परस्वामी कहाते हो ; तुमने वेद व्रत समाप्त किया है, इससे तुम्हारा नाम सुस्नात है। तुम विदण्ड-धारी हो, इसीसे हंस और परमहंस नाम है ; दण्डादि हीन होनेसे महाहंस कहाते हो, तुम परम याज्ञिक सांख्ययोग और सांख्य मूर्त्तिस्व-रूप हो। तुम जीवमात्रमें शयन कर रहे हो ; इसीसे अमृतेशय नाम है; हृदयमें शयन करनेसे हिरण्येशय हो, इन्द्रियोंमें शयन करनेसे देवे-शय कहाते हो, समुद्रके जलमें शयन किया करते हो, इसलिये कुशेशय हो, वेदके बीच निवास करते हो, इससे ब्रह्मेशय नाम है, ब्रह्मा-ण्डमें विद्यमान हो, इसीसे पद्मेशय कहाते हो, तुम विश्व संसारके ईश्वर होनेसे विश्वेश्वर कहाते हो ; भक्तोंको पालन करनेके लिये सब दिशाओंमें तुम्हारी सब सेना गमन करनेमें समर्थ हैं ; इसहीसे तुम्हारा नाम विश्वक्सेन है। जगत्में सत्त्व रूपसे तुम्हारा सम्बन्ध है। इसीसे तुम जगदन्वय हो, तुम ही जगत्की प्रकृति हो ; अग्नि तुम्हारा ही मुख स्वरूप है, तुम्हीं वाड़वामुख अग्नि स्वरूप हो, तुम्हीं आहुति और सारथि अग्निरूप हो, तुमही वषट्-कार तुम्हीं ओंकार, तुम ही जप हो ; तुम ही मन और चन्द्रमा हो, तुम ही आविन्नणके जरिये संस्कृत यज्ञीय हवि स्वरूप हो। तुम ही सूर्य्य तुम्हीं दिग्गज, तुम्हीं दिग्भानु और तुम ही विदिग्भानु हो। तुमही हयशिरा, तुम्हीं तैत्ति-रीय उपनिषद्में पठित प्रथम त्रिसुपर्णा मन्त्र अर्थात् आदित्यदैवत जगत्कर्त्ता हो, इस ही लिये प्रथम त्रिसौपर्ण्य कहाते हो, तुमने ब्राह्मण आदि वर्णोंको धारण किया है, इसीसे तुम्हारा नाम वर्णधर है। तुम गार्हपत्य, दक्षिण, आव-हनीय, सभ्य और आवसथ्य—पञ्चाग्नि स्वरूप हो। नाचिकेत नाम अग्निको तीन बार जिसने चयन किया है, तुम वही त्रिनाचिकेत-संज्ञक हो ; शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष, इन षडङ्ग निधान वेद स्वरूप हो। तुम प्राग् ज्योतिष और ज्येष्ठ सामग नामक सामगान स्वरूप हो ; तुमने सामगोंके व्रतको धारण किया है, इससे सामिक व्रतधर हो। तुम अथर्व्वशिरा नाम उपनिषत् रूप हो, सौर, शाक्त, गाणपत्य, शैव और वैष्णव, इन पञ्चागमसे प्रतिपाद्य हो, इस ही निमित्त पञ्च महाकल्प कहाते हो। तुम ही फेणपाचार्य्य, बालिखिल्य, वैखानस, अभग्नयोग और अभग्नवि-चार हो। तुम ही युगादि, युगमध्य, युगनिधन आखण्डल अर्थात् इन्द्र हो ; तुम्हीं प्राचीनगर्भ और कौशिकमुनि स्वरूप हो; तुम अनेक पुरु-षोंसे स्तुत होते हो, इसीसे तुम्हारा नाम पुरु-ष्टुत है। तुम पुरुहूत, विश्वकर्त्ता, विश्वरूप, अनन्तगति, अनन्त शरीर, अनन्त अनादि, अमध्य, अव्यक्तमध्य, अव्यक्त निधन, व्रतावास, समुद्राधिवास, यशोवास, तपोवास, दमावास लक्ष्म्यावास, विद्यावास, कीर्त्यावास श्रीवास, सर्व्वावास, वासुदेव और सर्व्व मनोरथप्रद हो,

इस ही निमित्त सर्व्वछन्दक कहाते हो। तुमने रामावतारमें हनुमानको वाहन बनाया था, इसलिये हरिहय हो ; तुम ही हरिमेध अर्थात् अश्वमेध यज्ञस्वरूप हो, तुम महायज्ञभाग हर, वरप्रद, सुखप्रद, धनप्रद, हरिमेध अर्थात् हरि-भक्त, यम, नियम, महानियम, कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र, महाकृच्छ्र, सर्व्वकृच्छ्र नियमधर, निवृत्त भ्रम, प्रवचनगत अर्थात् अध्ययनमें प्रवृत्त ब्रह्मचारी हो, तुम पृश्निगर्भ प्रवृत्त अर्थात् स्वायम्भुव मन्वन्तरमें पृश्नि जो कि जन्मान्तरमें अदितिरूपसे उत्पन्न हुई थी, उसके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। तुम वेद-प्रिय अज, सर्व्वगति, सर्व्वदर्शी, अग्राह्य, अचल, महाविभूत, महात्मा-शरीर अर्थात् विराटमू-र्त्तिधारी, पवित्र, महापवित्र, हिरण्मय, वृहत्, अप्रतर्क्य, अविज्ञेय ब्रह्माग्र, प्रजासर्ग-कर, प्रजानिधनकर, महामायाधर, चित्रशि-खण्डी, वरप्रद, पुरोडासभागहर, गताध्वर, छिन्नतृष्ण, छिन्नसंशय, सर्व्वतोवृत, निवृत्तरूप, ब्राह्मणरूप, ब्राह्मणप्रिय, विश्वमूर्त्ति, महामूर्त्ति, और बान्धव हो। हे भक्तवत्सल ब्रह्मण्यदेव ! मैं तुम्हारा दर्शन करनेके निमित्त अभिलाष करता हूं, तुम एकान्त दर्शन मोक्षस्वरूप हो, इससे तुम्हें नमस्कार है, तुम्हें नमस्कार है।

३३८ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, विश्वरूपधारी भगवानने इस ही प्रकार गुह्य और तथ्य नामोंके सहारे स्तुत होकर उस मुनिश्रेष्ठ नारदको दर्शन दिया। उस समय भगवानका वह शरीर चन्द्रमासे कुछ विशुद्ध और चन्द्रमासे किञ्चित प्रभेद विशिष्ट था, कुछ अग्निवर्ण और कुछ नक्षत्राकृतिके समान था, वह सर्व्वभूत संयोगी प्रभु किञ्चित शुक्लपक्षके समान कुछ स्फटिकसमान नीलाञ्जन चयप्रख्य और किञ्चित जातरूप सदृश प्रभायुक्त थे ; किसी स्थलमें प्रवालाङ्कुर वर्ण, किसी स्थानमें श्वेतवर्ण, कहीं सुवर्ण वर्णाभ, किसी अंशमें वैदूर्य्य समान, कहीं नील वैदूर्य्य सदृश, किसी स्थानमें इन्द्र नील प्रभायुक्त, कहीं मयूरग्रीवाके समान आभासे युक्त, किसी स्थानमें मुक्ताहार सदृश सनातन नारायणने यह सब अनेक प्रकारका वर्ण और रूपधारण किया था, वही श्रीमान् भगवान् सहस्र नेत्र, सहस्र शीर्ष, सहस्रपात्, सहस्रोदर और सहस्र बाहु है और कभी वह अव्यक्त भावसे निवास करता है; वह देवनारा-यण सुखमण्डलसे ओङ्कार और ओंकार सम्बन्ध-वती सावित्रीको उच्चारण करते हुए अन्य मुखोंसे चारों वेदोंको उच्चारण करके आरण्यक मन्त्रोंका गान करने लगे। उस देवेश्वर हरिने उस समय यज्ञपतिकी मूर्त्ति धारणकर वशी होकर हाथके सहारे वेदी, कमण्डलु, सफेद वर्णकी मणि, दोनों उपानह, कुशसमूह, मृग-चाल दण्डकाष्ठ और प्रज्वलित अग्निको धारण किया था। द्विजसत्तम नारदने प्रसन्न-चित्त तथा संयतवाक्य होकर उस सत्तम प्रसन्न परमेश्वरको प्रणाम करके उनकी वन्दना की ; आदि देव अव्यय हरि उस समय नतशिरा नारद मुनिसे कहने लगे।

श्रीभगवान् बोले, महर्षि एकत, द्वित और त्रित मेरे दर्शनकी अभिलाषासे इस स्थानमें आये थे परन्तु वे लोग मेरा दर्शन करनेमें समर्थ नहीं हुए, ऐकान्तिकके बिना कोई भी मुझे नहीं देख सकता ; तुम योगियोंमें श्रेष्ठ हो, इसीसे मेरा दर्शन पाया है। हे द्विज ! मेरा यह उत्तम शरीर धर्म्मके गृहमें उत्पन्न हुआ है, तुम सदा उसहीका भजन करो, जहांसे आये हो; अब उस ही स्थानमें गमन करो। हे विप्र ! इस समय मेरे समीप जो वर मांगनेकी इच्छा हो, वह मांगो मैं अव्यय होके भी इस समय विश्वमूर्त्ति धारण करके तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ हूं।

नारद मुनि बोले, हे देव ! मैंने जब भग-वानका दर्शन किया, तब आज मेरी तपस्या,

यम और नियमका फल प्रत्यक्ष प्राप्त हुआ। हे भगवन्! तुम विश्वदर्शी सिंहस्वरूप सर्व्वमूर्ति-मय महा प्रभु और सनातन हो; इसलिये मैंने जब तुम्हारा दर्शन किया, तब इससे बढ़के दूसरा वर मेरे लिये कौनसा है?

भीष्म बोले, भगवान् इसी भांति विधाता पुत्र नारदको दर्शन देकर फिर उनसे बोले, हे नारद! तुम गमन करो, देरी मत करो, ये सब अनिन्द्रिय अनाहार चन्द्रवर्चस पुरुष हमारे भक्त हैं, ये लोग एकाग्रचित्त होकर हमारा ध्यान करते हैं; इसलिये इन लोगोंके लिये विघ्न न होना चाहिये। ये सब महाभाग पुरुष सिद्ध हैं, और येही पहले मोक्षपथाव-लम्बी हुए हैं, ये तम और रजोगुणसे निर्म्मुक्त हैं, इससे ये लोग मुझमें निःसन्देह प्रवेश करेंगे। जो नेत्रसे देखे नहीं जाते, गन्धवत् सूंघनेके विषय नहीं हैं, और रस वर्ज्जित सत्त्व, रज और तम, ये तीनों गुण जिनको भजना नहीं करते; जो सर्व्वगत साक्षि चैतन्य रूपसे लोगोंको आत्मा कहे जाते हैं। सब प्राणियों तथा शरीरके नष्ट होनेसे वह विनष्ट नहीं होते। जन्म रहित शाश्वत, नित्य, निर्गुण, निरस, निष्क्रिय पुरुष जो चौबीस तत्त्वोंसे भी अतीत पचीसवां कहके विख्यात् है, वही एक-मात्र ज्ञानदृश्य है, ऐसा ही वर्णित हुआ करता है; इस संसारमें द्विजसत्तमगण जिसमें प्रवेश करके मुक्त होते हैं, उसको सनातन वासुदेवको परमात्मा जानो। हे नारद! शुभाशुभ कर्म्मोंमें जो कदाचित लिप्त नहीं होता, उस देवको महिमा और महात्म अवलोकन करो। सत्त्व, रज और तम, इन तीनोंको गुण कहते हैं, ये सब शरीरोंमें स्थित रहते तथा भ्रमण किया करते हैं। क्षेत्रज्ञ जीव इन सब गुणोंको भोग करता है, परन्तु गुण उसे भोग नहीं कर सकते। वह निर्गुण है, परन्तु गुणभोगी है, और गुणस्रष्टा होके भी गुणाधिक है।

हे देवर्षि! जगत्प्रतिष्ठा पृथ्वी जलमें लीन होती है, जल अग्निमें लीन हुआ करता है, अग्नि वायुमें लय होती है, वायु आकाशमें लीन होजाती है, आकाश मनमें प्रलयको प्राप्त हुआ करता है, और परम भूत मन उस ही अव्यक्तमें लीन होता है। हे ब्रह्मन्! अव्यक्त भी निष्क्रिय पुरुषमें लीन होजाता है, उस सनातन पुरुषके अतिरिक्त और कोई भी नहीं है। उस एकमात्र शाश्वत पुरुष वासुदेवके अतिरिक्त इस जगत्में स्थावर जङ्गम कोई पदार्थ भी नित्य नहीं है। महाबलवान वासुदेव सब भूतोंके आत्मभूत हैं। पृथ्वी, वायु, आकाश; जल और अग्नि, ये पांचो महाभूत मिलके शरीरसंज्ञक होते हैं। हे ब्रह्मन्! जो क्षिप्रकारी अदृश्य होके इस शरीरमें प्रविष्ट होता है, वह यथार्थमें उत्पन्न न होके भी मानो उत्पन्न होके शरीर चेष्टा निर्व्वाह करता है; धातु संघातके अति-रिक्त शरीर कदापि उत्पन्न नहीं होता। हे ब्रह्मन्! जीवके बिना वायु चेष्टा नहीं कर सकती। इस शरीरमें जो प्रविष्ट होता है, वही जीव है; भगवानके व्यूह विशेष विश्वविधायक सङ्कर्षण और शेष नामसे वह प्रभु संख्यात् होता है। जो पुरुष निज कर्म्मोंके जरिये उससे जीवन्मुक्तत्व लाभ करते हैं, और प्रलयकालमें सब भूत जिसमें लीन होते हैं, वे सब भूतोंके मन प्रद्युम्न नामसे पठित हुआ करते हैं; जो सङ्कर्षणसे उत्पन्न होता है, वही कर्त्ता कारण और कार्य्य स्वरूप है; और प्रद्युम्नसे यह स्थावर जङ्गमात्मक समस्त जगत् उत्पन्न होता है; इस होका नाम अनिरुद्ध है; यही ईश्वर है, और सब कार्य्योंमें व्यक्त होरहा है। हे राजेन्द्र! भगवान् वासुदेव जो क्षेत्रज्ञ और निर्गुण स्वरूपसे वर्णित हुए हैं, उन्हें ही सङ्कर्षण अर्थात् जीव जानो; सङ्कर्षणसे प्रद्युम्न उत्पन्न होते हैं, इसे ही मन कहा जाता है। प्रद्युम्नसे जो अनिरुद्ध उत्पन्न होते हैं, वह भी

अहंकार और ईश्वर हैं । हे नारद ! मुझसे ही स्थावर जङ्गममय समस्त जगत् सदसत् पदार्थ उत्पन्न होते हैं । इस लोकमें मेरे भक्त लोग मुझमें प्रविष्ट होके मुक्त होते हैं ; मुझे निष्क्रिय पचीसवां पुरुष जानो, मैं निर्गुण निष्कल निर्द्वन्द्व और निष्परिग्रह हूं । तुम ऐसा मत समझो, कि रूपवान होकर दीख पड़ता हूं । मैं इच्छा करनेसे मुहूर्त्त मात्रमें ही विलीन होसकता हूं, मैं जगत्‌का गुरु और नियन्ता हूं ।

हे नारद ! तुम जो मेरा दर्शन करते हो, यह मेरी ही उत्पन्न करी हुई माया है ; इस ही प्रकार सब भूतोंमें गुणोंके सहारे संयुक्त न होनेसे तुम मुझे जाननेमें समर्थ न होते । हे नारद ! तुम्हारे समीप मैंने इन चारों मूर्त्तियोंके विषयको पूर्ण रीतिसे वर्णन किया ; मैं कर्त्ता, कार्य्य और कारण हूं ; मैं ही जीव संघात अर्थात् जड़वर्ग हूं और मुझमें ही जीव स्थित होते हैं । "मैंने जीवका दर्शन किया"—तुम्हारी इस समय ऐसी बुद्धि न हो, हे ब्रह्मन् ! मैं सर्व्वगामी और सब प्राणियोंकी अन्तरात्मा हूं, प्राणियोंके शरीर नष्ट होनेपर मैं विनष्ट नहीं होता । हे मुनि ! वह मोक्षनिष्ठ महाभाग मनुष्य सिद्ध हुए हैं, वे लोग तम और रजोगुणसे छूटकर मुझमें प्रविष्ट होंगे । सब लोकोंके आदिभूत अनिर्व्वचनीय चतुर्म्मुख हिरण्यगर्भ सनातन देव ब्रह्मा मेरे अनेक विषयोंका ध्यान किया करते हैं । रुद्रदेव मेरे क्रोधवश ललाटसे उत्पन्न हुए हैं । देखिये, ये ग्यारह रुद्र मेरी दहिनी ओर स्थित हैं, बारहों आदित्य मेरी बाईं ओर खड़े हैं, अगाड़ीमें सुरोत्तम आठों वसु निवास करते हैं, पीछे नासत्य और दस्र नाम सर्व्वदादय प्रजापति और सत्यात्मा सप्तर्षियोंको देखो । सब वेदों और सैकड़ों यज्ञों, अमृत और महौषधियोंको देखो, तपस्या, नियम और पृथक् पृथक् समस्त यम तथा अणिमा आदि अष्टगुणयुक्त ऐश्वर्य्यकी एकत्रित मूर्त्तिके समान देखो । श्री, लक्ष्मी, कीर्त्ति और ककुद्मिनी पृथ्वी अर्थात पर्व्वतमय ककुदयुक्त पृथ्वी और वेदमाता सरस्वती देवीको मुझमें निवास करती हुई देखो ।

हे नारद ! ज्योतिश्श्रेष्ठ आकाशचारी ध्रुव, अम्भोधर चारों समुद्र, नदियें और समस्त तालाव तथा मूर्त्तिमान पितरोंको देखो । हे मुनिसत्तम ! देखो, सत्व, रज और तम, ये तीनों गुण मूर्त्ति-रहित होकर मुझमें निवास करते हैं । हे मुनि ! देवकार्य्योंसे पितृकार्य्य श्रेष्ठ है, एकमात्र मैं ही सब पितरोंका आदि पिता हूं, मैं पश्चिमोत्तर समुद्रमें हयशिरा होके श्रद्धान्वित होकर उत्तम रीतिसे होम किये हुए हव्य कव्यको पान करता हूं । मैंने पहले ब्रह्माको उत्पन्न किया, उन्होंने मेरे जरिये उत्पन्न होके स्वयं यज्ञरूपधारी होकर मेरी पूजा की थी । अनन्तर मैंने उनके ऊपर प्रसन्न होकर यह सब उत्तम वर प्रदान किया, कि सृष्टिके आरम्भमें तुम हमारे पुत्र और सब लोगोंके अध्यक्ष होगे और अहंकारको उत्पन्न करनेसे विधाता नामसे विख्यात् होगे । कोई पुरुष तुम्हारी निर्द्दिष्ट की हुई मर्य्यादाको अतिक्रम न कर सकेगा । हे संशितव्रत महाभाग तपोधन ब्रह्मन् ! वर मांगनेवाले देवता, असुर, ऋषि और पितरोंको सदा तुम वरदान करोगे ; तुम विविध प्राणियोंके उपास्य होगे । हे ब्रह्मन् ! मैं देवकार्य्य साधन करनेके लिये सदा उत्पन्न होके पुत्रकी भांति तुम्हारा अनुशास्य और नियोज्य हूंगा ।

अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्माको यह सब तथा और भी अनेक प्रकारके मनोहर वर देकर मैं प्रसन्न होकर निवृत्त हुआ था । सब धर्म्मको परम निवृत्ति ही निर्व्वाणरूपसे कही गई है । इसलिये निवृत्तिनिष्ठ और सर्व्वाङ्ग निवृत्त होकर धर्म्माचरण करे, यह सांख्य शास्त्रका निश्चित-निश्चय है, आचार्य्योंने आदित्य मण्डलस्थ विद्यासहाय समाधिनिष्ठ कपिलसे कहा था, यह भगवान् हिरण्यगर्भ वेदमें विशेष रूपसे स्तुत

हुए हैं। हे ब्रह्मन्! मैं उस ही योगमें अनुरक्त होकर योगशास्त्रमें वर्णित हुआ हूं, मैं शाश्वत होके भी व्यक्तभावसे आकाशमें निवास करता हूं।

अनन्तर सहस्र युगोंके बाद जगत्का संहार करूंगा। सब चराचर भूतोंको अपनेमें स्थापित करके अकेला ही महाविद्याके सङ्ग बिहार करूंगा। अन्तमें महाविद्याके जरिये फिर सारे जगत्को उत्पन्न करूंगा। जो मेरी चौथी मूर्त्ति है, उसने अव्यय शेषको उत्पन्न किया है, उस शेषको ही सङ्कर्षण कहते हैं, सङ्कर्षण ही प्रद्युम्नको उत्पन्न करता है। प्रद्युम्नसे अनिरुद्धकी उत्पत्ति होती है। इस ही प्रकार बार बार मैं सृष्टि करता हूं; अनिरुद्धके नाभि-कमलसे ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं; ब्रह्मासे सब स्थावर जङ्गम जीव उत्पन्न होते हैं। इस लोकमें जैसे आकाशमें सूर्य्य उदय और अस्त होता है, वैसे ही कल्पके आदिमें बार बार यह सृष्टि हुआ करती है। जैसे सूर्य्यके अदृश्य होने पर महाबलवान काल बलपूर्व्वक फिर उसे लाके उपस्थित करता है, वैसे ही मैं सब प्राणि-योंके हितके लिये बाराह मूर्त्ति धारण करके सागर-मेखला सत्त्वगणसे आक्रान्त नष्ट प्राय पृथ्वीको बलपूर्व्वक निज स्थानपर लाऊंगा और बलसे गर्व्वित हिरण्याक्ष दैत्यको मारूंगा। इसके अतिरिक्त मैं फिर देवताओंके कार्य्यको सिद्ध करनेके लिये नरसिंह शरीर धारण करके यज्ञ-नाशक दितिपुत्र हिरण्यकशिपुको मारूंगा। विरोचनका पुत्र बलि नाम एक बलवान महासुर जन्मेगा; वह देवता, असुर और राक्षसोंसे अवध्य होकर इन्द्रको उनके राज्यसे निकाल बाहर करेगा। उसके जरिये तीनों लोक अपहृत और शचिपति इन्द्रके परा-जित होनेपर मैं अदितिके गर्भमें कश्यपके वीर्य्यसे द्वादश आदित्यरूपसे उत्पन्न हूंगा।

हे नारद! अनन्तर मैं अत्यन्त तेजस्वी इन्द्रको राज्य देकर देवताओंको निज निज स्थान पर स्थापित करूंगा। दानियोंमें श्रेष्ठ बलि सब देवताओंसे अवध्य है, इसलिये मैं उसे पाताल तलमें बसाऊंगा। मैं त्रेतायुगमें भृगुवंशमें राम रूपसे उत्पन्न हूंगा और उस समय समृद्धिशाली बल-वाहन युक्त क्षत्रियोंका नाश करूंगा। त्रेता और द्वापरके सन्धांश उपस्थित होनेपर जगत्पति दाशरथि राम रूपसे अवतार लूंगा। हे द्विज! प्रजापतिके पुत्र एकत और द्वित ऋषि त्रितके विषयमें अत्याचार कर-नेसे कुरूप होकर बानरयोनि लाभ करेंगे, उनके वंशमें जो सब इन्द्रके समान पराक्रमी महाबली महावीर्य्यवान बनवासी बन्दर उत्पन्न होंगे, वेही मेरे सुरकार्य्य साधनके विषयमें सहाय होंगे। अनन्तर मैं पुलस्त्य कुल कलंक महा घोर रौद्रमूर्त्ति सब लोकोंके कण्टकरूपी रावण राक्षस पतिको उसके अनुयायियोंके सहित मारूंगा। द्वापर और कलियुगके सन्धि-कालमें कंसके निमित्त मथुरामें मेरी उत्पत्ति होगी, उस समय मैं बहुतेरे देवकण्टक दानवोंका संहार करके कुशस्थली नाम द्वारकामें निवास करूंगा, द्वारकापुरीमें निवास करतेहुए अदितिके अप्रिय कार्य्य करनेवाले नरक, भौम, मूर और पीठ नामक दानवोंको मारूंगा। प्राग्ज्योति-षपुरबासी बिबिध धन रत्नोंसे युक्त दानव श्रेष्ठको मार कर समस्त स्त्री-रत्न कुशस्थलीमें लाऊंगा।

अनन्तर बाणराजाके प्रिय और हितैषी महेश्वर तथा महासेन नाम सदा उद्योगी दोनों दैत्योंको जिन्हें देवता लोग भी प्रणाम करेंगे, मैं पराजित करूंगा। अनन्तर बलिके पुत्र सहस्र भुजावाले बाणासुरको जीतके सौभ निवासी समस्त दानवोंका बध करूंगा। हे द्विजवर! गार्ग तेजसे परिपूरित कालयवन नामसे जो पुरुष उत्पन्न होगा, मैं उसका बध करूंगा। सब राजाओंके बिरोधी जरासन्ध नामक जो बलवान असुर गिरिव्रजमें अत्यन्त प्रहृष्ट राजा होगा, मेरी ही बुद्धि कौशलसे

त्याग कीजिये। यदि तुम काम, क्रोध और कृपणता परित्याग करके दान, प्रजा पालन, गुरु और वृद्धोंकी सेवामें रत रहैं; तो अवश्य ही अभिलषित लोकमें गमन करनेमें समर्थ हो सकेंगे; और इमिस: दान करने वाले गृहस्थ पुरुष इसही भांति धर्म्मानुष्ठान किया करते हैं; और देवता अतिथि तथा सम्पूर्ण प्राणियोंको यथा रीतिसे तृप्त करके ब्रह्मनिष्ठ और सत्यवादी होनेसे अवश्य ही अभिलषित लोकोंमें गमन कर सकेंगे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।

१८ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, हे तात अर्ज्जुन! लौकिक धर्म्मशास्त्र और ब्रह्म प्रतिपादक ज्ञानशास्त्र दोनों ही मुझे विदित हैं। वेदमें कर्म्मका अनुष्ठान और कर्म्म त्याग दोनों विषयोंकी विधि है; इससे सब शास्त्र अत्यन्त ही जटिल हैं, परन्तु युक्तिसे आलोचित होनेसे उसका जो कुछ सार निश्चित हुआ है; मैं उसे विधिपूर्व्वक जानता हूं। तुम केवल वीर व्रताचारी और अस्त्र शस्त्रोंकी विद्यामें निपुण हो; शास्त्रोंके अर्थको विचारनेमें तुम्हारी कुछ भी सामर्थ नहीं है। यदि तुम धर्म्मकी विशेष आलोचना करते और शास्त्रार्थमें सूक्ष्म-दर्शी तथा तत्व-निश्चयमें निपुण होते; तो कदापि मेरे विषयमें ऐसे वचनोंको प्रयोग न करते; परन्तु भ्रातृ भावसे युक्त होके तुमने मुझे जो कुछ वचन कहे हैं, और मैं भी तुम्हारे ऊपर अत्यन्त ही प्रसन्न हुआ हूं। युद्धधर्म्म अथवा कार्य्योंकी निपुणतामें तीनों लोकके बीच भी कोई पुरुष तुम्हारे समान नहीं है; इससे उस ही विषयमें दूसरेको दुःखसे जानने योग्य अत्यन्त सूक्ष्म वचन कहना तुम्हें उचित है; परन्तु मोक्ष-धर्म्म विषयमें मेरी बुद्धि पर शङ्का करना तुम्हें योग्य नहीं है, तुमने कभी ज्ञान-वृद्ध पुरुषोंकी सेवा नहीं की है, और तुमने केवल अत्यन्त युद्ध-विद्याका ही अभ्यास किया है; जिन्होंने संक्षेप और विस्तार रूपसे तत्त्व निर्णय किये हैं उनके निश्चित किये हुए मीमांसाकोभी तुम नहीं जानते हो। तत्वज्ञ पण्डितोंने ऐसा ही निर्णय किया है, कि तपस्या, सन्न्यास और ब्रह्मज्ञान ये तीनों ही एक दूसरेसे श्रेष्ठ हैं। अर्थात् तपस्यासे सन्न्यास और सन्न्याससे ब्रह्मज्ञान श्रेष्ठ है। हे अर्ज्जुन! तुम जो "धनसे बढ़के और कोई वस्तु भी उत्तम नहीं है," ऐसा समझते हो; वह तुम्हारी भ्रान्ति मात्र है। जो हो; इस समय जिसमें धन फिर तुमको सबसे श्रेष्ठ न बोध होवे, मैं तुम्हारी वैसी भ्रान्तिको दूर करूंगा। देखो तप और स्वाध्यायमें रत ऋषि लोग ही इस लोकमें धर्म्मात्मा रूपसे दीख पड़ते हैं, और वे लोग उस तपके प्रभावसे सनातन लोकमें गमन करते हैं; और भी धीर स्वभावसे युक्त शत्रु रहित कितने ही वानप्रस्थ धर्म्म ग्रहण करनेवाले पुरुष तपस्या और स्वाध्यायके प्रभावसे स्वर्ग लोकमें गये हैं। साधुपुरुष विषय-वासनासे विरक्त होकर अज्ञानरूपी अन्धकारको त्यागके उत्तर-पथ अर्थात् प्रकाशमय मार्गसे सन्न्यासी पुरुषोंके प्राप्त होने योग्य ब्रह्म-लोकमें गमन करते हैं। जो लोग बार बार जन्म मरण रूपी क्लेशोंको भोगते रहते हैं, वे कर्म्ममें रत रहनेवाले पुरुष दक्षिण अर्थात् अन्धकारमय मार्गसे चन्द्रलोक कहके विख्यात पितृ-लोकमें गमन करते हैं। मोक्षकी अभि-लाषा करनेवाले पुरुष जिस गतिको प्राप्त करते हैं; उसका निर्देश करना असाध्य है, इससे उसे प्राप्त करनेके वास्ते योग ही एक मात्र मुख्य उपाय है; परन्तु अधिकार न रहनेके कारण उसे बोध करना तुम्हारे विषयमें सहज कार्य्य नहीं है। बहुतेरे पण्डित सार असार विषयोंके निर्णय करनेके वास्ते शास्त्रोंमें रत होके "इसमें

सार विषय है? वा इसमें मनाह है?' इसी भांति तर्क करते हुए समय बितात हैं; परन्तु जैसे बोझेसे वृक्षको काटनेसे उसमें कुछ भी सारवस्तु नहीं दीख पड़ती वैसे ही वे लोग वेद और धर्मशास्त्र प्रभृति अनेक शास्त्रोंको मथके भी किञ्चित मात्र सार विषय देखनेमें समर्थ नहीं होसकते। जो नेत्रसे अगोचर वचनसे अनिर्देश्य, अतिसूक्ष्म, और सब प्राणियोंके हृदयमें स्थित है, परन्तु अविद्याके कारण नहीं मालूम हो सकता; इस पाञ्च भौतिक शरीरमें रहनेवाले द्वैत-भाव वर्जित सच्चिदानन्द स्वरूप उस आत्माको मूढ़ पुरुष इच्छा द्वेषसे युक्त समझते हैं। जो लोग अविद्यापूरित सम्पूर्ण कर्म्म-जाल त्यागके विषय-तृष्णासे निवृत्त होते हैं, वेही अपने मनको उस अविनाशी परमात्मामें लगा कर सुखी हो सकते हैं। हे अर्जुन! साधुओंसे सेवित सूक्ष्म और ज्ञान प्राप्त होनेवाले मोक्ष-पथके विद्यमान रहते तुम क्यों अनर्थसे युक्त अर्थ की प्रशंसा करते हो? ज्ञानियोंकी बात तो दूर है; दान और यज्ञ आदि कर्म्मोंमें रत, कर्म्मकाण्डके जाननेवाले पण्डित लोग भी अर्थकी प्रशंसा नहीं करते। परन्तु कितने ही मूढ़ पुरुष हेतु अर्थात तर्क आदि शास्त्रोंके पण्डित होके भी पूर्व जन्मके दृढ़ संस्कारोंके वशमें होकर "आत्मा नहीं है," कहके साधु पुरुषोंसे विवाद करते हैं; इससे मोक्ष विषयक सार सिद्धान्तको उन्हें हृदयङ्गम कराना असाध्य कर्म्म जानना चाहिये। दुष्ट मनुष्य बहुतसे शास्त्रोंको पढ़के भी वाचालताके कारण जनसमाजमें मोक्ष धर्म्म की निन्दा करते हुए पृथ्वी पर भ्रमण करते हैं। हे अर्जुन! जिसका मर्म मेरे समान पुरुष नहीं जान सकते; उसे दूसरे मूर्ख लोग किस भांति समझेंगे? परन्तु ये मूर्ख लोग जैसे शास्त्रोंके सूक्ष्म तत्वको जाननेमें समर्थ नहीं होते, वैसे ही शास्त्रोंके मर्म्मको जाननेवाले महात्मा बुद्धिमान साधुओंको भी नहीं जान सकते। जो हो, तुम यह निश्चय जान रक्खो, कि तत्ववित् पण्डित लोग तपस्या और महा प्राज्ञसे महाप्राज्ञ, और ज्ञानसे नित्यसुख प्राप्त करनेमें समर्थ होते हैं।

१९ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय! राजा युधिष्ठिरके वचन समाप्त होनेपर बोलने वालोंमें मुख्य महातपस्वी देवस्थान ऋषि धर्म्मराजसे इस प्रकार युक्ति युक्त वचन बोले, हे धर्म्मराज! अर्जुनने जो "धनसे बढ़के कुछ भी उत्तम नहीं है," ऐसा वचन कहा है,—मैं उसकी विवृति करके कहता हूं, आप एकाग्र चित्त होकर सुनिये। आपने धर्म्म पूर्व्वक पृथ्वीको जय किया है; इससे इस समय वृथा हुए इस राज्यको निष्प्रयोजन ही त्यागना उचित नहीं है वेदमें चार आश्रम वर्णित हुए हैं, क्रमसे उन आश्रमोंमेंसे एकको त्यागके दूसरे आश्रमको ग्रहण करनेकी विधि है। इससे आप अनेक दक्षिणासे युक्त यज्ञ आदिक कर्म्मोंका अनुष्ठान कीजिये। देखिये ऋषियोंके बीच भी कोई स्वाध्यायरूपी यज्ञ और कोई ज्ञानरूपी यज्ञका अनुष्ठान करते हैं; इससे तपस्वी पुरुषोंको भी आप कर्म्मनिष्ठ ही समझिये, तब वैखानस ऋषि लोग कहते हैं, "धनसे साध्य यज्ञ कर्म्मके वास्ते धनके निमित्त कोशिश करनेकी अपेक्षा यज्ञका न करना ही उत्तम है," परन्तु मेरे विचारमें उन लोगोंका वह धर्म्म ग्रहण करनेसे भूयिष्ठ दोष उत्पन्न होता है, क्यों कि विधि रहनेसे ही धर्म्म आदि वस्तुएं संग्रह करनी पड़ती हैं। बुद्धिभ्रष्ट होनेसे ही लोग ऐसे आत्म-प्रिय धर्म्मको उपयुक्त कामोंमें खर्च न कर अयोग्य कर्म्मोंमें व्यय करके अपनेको आत्म हत्या रूपी पापसे दूषित करते हैं; परन्तु योग्य और अयोग्य कर्म्मकी परीक्षा करके

शापरहित धनको उपार्ज्जन करना भी उत्तम कार्य्य नहीं है। विधाताने यज्ञ करने ही के वास्ते धनको उत्पन्न किया, और पुरुषको भी उस धनकी रक्षा तथा यज्ञ आदिक कर्म्मोंके अनुष्ठानके वास्ते ही उत्पन्न किया है, इससे सम्पूर्ण धन यज्ञ आदिक शुभ कर्म्मोंमें समर्पण करनेसे ही समस्त कामना सिद्ध होसकती हैं; इसमें सन्देह नहीं है। महातेजस्वी भगवान इन्द्र अनेक मूल्यवान वस्तुओंसे यज्ञका अनुष्ठान करनेसे सम्पूर्ण देवतोंको अतिक्रम कर इन्द्रत्व प्राप्त करके स्वर्गलोकके राज्यपदपर प्रतिष्ठित हैं; इससे सम्पूर्ण धन यज्ञमें समर्पण करना ही उचित है। इसके अतिरिक्त महातेजस्वी कृत्तिवासा महादेव सर्व्वमेध यज्ञमें अपने शरीरको ही अग्निमें आहुति देकर समस्त देवताओंके ऊपर आधिपत्य और सबसे अधिक प्रभाव प्राप्त करके जगत्के बीच विराजमान हैं। देखिये अविक्षित-पुत्र मरुत्तराजने समृद्धियुक्त यज्ञके प्रभावसे देवराज इन्द्रको भी जीत लिया था; उस यज्ञमें सब पात्र सुवर्णमय थे; अधिक क्या कहा जावे, उनके यज्ञमें लक्ष्मी स्वयं मूर्त्तिमयी होकर स्थित हुई थीं। आपने सुना होगा, राजेन्द्र हरिश्चन्द्र यज्ञानुष्ठान करके ही पुण्यभागी और शोकरहित हुए; वह मनुष्य होकर भी ऐश्वर्य्यमें देवराज इन्द्रसे भी अधिक हुए थे; इससे समस्त धन यज्ञानुष्ठानमें व्यय करनेसे ही सम्पूर्ण कार्य्य सिद्ध होसकते हैं।

२० अध्याय समाप्त।

देवस्थान मुनि बोले, हे धर्म्मराज! इस विषयमें इन्द्र-बृहस्पति सम्वाद नामक एक सम्वाद वर्णित है, उसे सुनिये। किसी समय इन्द्रके पूछने जानेपर बृहस्पतिने कहा था, कि सन्तोष ही उत्तम स्वर्गलोक और सन्तोष ही परम सुख है, सन्तोषसे बढ़के कोई वस्तु भी श्रेष्ठ नहीं है। जैसे कछुवा अपना सब अङ्ग-टको शरीरके भीतर कर लेता है, वैसे ही जिसकी सम्पूर्ण वासना भीतर ही लीन होजाती है, तब ही जानना चाहिये, कि शीघ्र ही उसके अन्तःकरणमें आत्मज्योति प्रकाशित होगी। जिस समय साधक पुरुष वासना और द्वेष आदिको पराजित करते हैं, किसी प्राणीसे भी भयभीत नहीं होते और न उनसे ही कोई प्राणी भय करते हैं, तब ही आत्मदर्शन होता है। जब पुरुष काया और मनसासे किसी प्राणीसे शत्रुताचरण वा किसीके निकट कुछ वस्तुको जांचनेमें प्रवृत्त नहीं होता, तब ही जानना चाहिये, कि उसे ब्रह्म-प्राप्ति हुई है। महाराज! इस भांति जो पुरुष जिस प्रकार धर्म्मका आचरण करता है, वह उसके अनुसार फलको भोग करता है। इससे आप इन सम्पूर्ण विषयोंको विचारके कर्त्तव्य कार्य्योंके करनेमें प्रवृत्त होइये।

इस पृथ्वीपर अपनी अपनी रुचिके अनुसार ही कोई प्रीति, कोई यत्न, कोई दोनो विषयोंकी, कोई यज्ञ, कोई सन्न्यास, कोई दान, कोई प्रतिग्रहकी प्रशंसा करते रहते हैं। कितने ही पुरुष समस्त वस्तुओंको त्यागके मौन होकर ध्यानावलम्बन करके स्थित होते हैं, कोई शत्रुओंको छिन्नभिन्न करके राज्य ग्रहण और प्रजा पालनकी ही प्रशंसा करते हैं, कोई निर्ज्जन स्थानमें निवास करनेहीको श्रेष्ठ समझते हैं; परन्तु इन सब विषयोंकी समालोचना करके पण्डितोंने यह निश्चय किया है, कि प्राणी मात्रका जिससे कुछ भी अनिष्ट न होवे; वही धर्म्म साधु-सम्मत है। स्वायम्भुव मनु भी अहिंसा, सत्य, दया, इन्द्रियसंयम निज स्त्रीसे पुत्र उत्पन्न करना, कोमलता, लज्जा और धीरजको ही उत्तम धर्म्म कहके वर्णन करते हैं। हे धर्म्मराज! इससे आप भी यत्नपूर्व्वक इसी भांति धर्म्मके कार्य्योंको पालन कीजिये।

मृत्युका मुख देखेगा। धर्म्मपुत्र युधिष्ठिरके यज्ञमें मैं शिशुपालका बध करूंगा, पृथ्वी पर महाबली सब राजाओंके इकट्ठे होनेपर अकेला इन्द्रपुत्र धनञ्जय मेरा सहाय होगा मैं भाइयोंके सहित युधिष्ठिरको स्वराज्यमें स्थापित करूंगा, उस ही समय सब लोग कहेंगे, कि ईश्वर नर-नारायण ऋषि-रूपसे कार्य्यके निमित्त उद्योगी होकर क्षत्रियकुलको जला रहा है। हे सत्तम! पृथ्वीके अभिलषित भारको उतारके आत्मज्ञानके अनुसार द्वारकामें स्थित सब यदुवंशियोंमें घोर प्रलय उत्पन्न करूंगा। मैं चारों मूर्त्तियोंको धारण करके तथा अपरिमेय कार्य्योंको पूरा करके ब्रह्मासे सत्कृत होकर निज लोकोंमें गमन करूंगा। हे द्विजवर! मैं हंस कच्छप, मत्स्य, बाराह, नृसिंह, दाशरथि राम, कृष्ण और कल्कि रूपसे उत्पन्न हूंगा। वेद-श्रुति जिस समय नष्ट होगी उस समयमें मैं उसे फिर लौटा लाऊंगा। पहले सतयुगमें मैंने जो सब वेदश्रुति बनाई थी, वह अतिक्रान्त हुई है, अथवा पुराणोंके बीच किसी किसी स्थलमें सुनी जाती है। मेरी बहुतेरी उत्तम उत्पत्ति व्यतीत हुई है, लोककार्य्योंको निर्व्वाह करके फिर निज प्रकृतिको प्राप्त हुई है। हे ब्रह्मन्! तुमने मोक्ष निष्ठायुक्त बुद्धि अवलम्बन करके इस समय जिस प्रकारसे मेरा दर्शन किया है, ब्रह्मा भी इस प्रकार मेरा दर्शन नहीं कर सकते। हे सत्तम! तुम भक्तिमान हो, इस ही लिये मैंने तुम्हारे समीप प्राचीन और भविष्य रहस्योंको वर्णन किया है।

भीष्म बोले, इस ही प्रकार वह भगवान विश्वमूर्त्तिधारी अविनाशी देव इतनी कथा सुनाके उसी स्थानमें अन्तर्द्धान होगये। महातेजस्वी नारद इप्सित अनुग्रह लाभ करके नर-नारायणका दर्शन करनेके लिये बदरिकाश्रममें गये। हे तात! महर्षि नारदने जिस प्रकार दर्शन किया और जिस प्रकार सुना था, उस ही भांति ब्रह्माके स्थानमें नारायणकी मुखकी वर्णित चारों वेदोंसे युक्त सांख्य-योग संयुक्त पञ्चरात्र नामक यह महा उपनिषत सुनाया था।

युधिष्ठिर बोले, इस आश्चर्यभूत भगवान महात्माको क्या ब्रह्मा नहीं जानते थे, जो उन्होंने नारदके मुखसे सुना, भगवान पितामह उस ही देवसे उत्पन्न हुए हैं, इससे वह अत्यन्त तेजस्वी नारायणके प्रभावको किस लिये नहीं जानते थे?

भीष्म बोले, हे राजेन्द्र! सौ हजार महाकल्पकी सृष्टि और प्रलय व्यतीत हुई हैं। हे राजन्! सृष्टिके आरम्भमें प्रजाको उत्पन्न करनेवाले प्रभु प्रजापति उत्पन्न होते हैं, इसलिये वह देवप्रवर आत्मप्रभव सर्व्वनियन्ता परमात्माको नारदसे भी अधिक जानते थे। ब्रह्माके स्थानमें जो सब सिद्ध लोग इकट्ठे हुए थे, नारदने उन्होंको वह वेद-सदृश पुराण सुनाया था। हे राजन्! अनन्तर सूर्य्यदेवने उन शुद्धचित्तवाले सिद्धोंके निकट उसे सुनके निज अनुगामी पवित्र बुद्धिवाले छः हजार ऋषियोंको सुनाया था। तापदाता सूर्य्यके समीप जो सब लोग स्थित थे, उन्होंने उनसे भी उक्त विषय कहा था। हे तात! सूर्य्यके अनुगामी ऋषियोंने सुमेरु पर्व्वतपर इकट्ठे हुए सब ऋषियोंको यह उत्तम उपाख्यान सुनाया था। हे राजेन्द्र! अनन्तर देवताओंके निकटसे द्विजवर मुनिसत्तम असितने उस विषयको सुनके पितरोंके समीप वर्णन किया था। हे तात! मेरे पिता शान्तनुने यह मुझसे कहा। हे भारत! मैंने उनसे सुनके इस समय तुम्हारे समीप वर्णन किया। जिन देवता अथवा मुनियोंने इस पुराणको सुना है, वे लोग सब प्रकारसे परमात्माकी पूजा करते हैं। हे राजन्! इस परम्परासे प्रचलित ऋषिप्रणीत आख्यानको जो पुरुष वासुदेवका भक्त नहीं है, तुम उससे किसी प्रकार न कहना। हे राजन्! तुमने मेरे समीपमें जो

सैकड़ों उपाख्यान सुने हैं, उन सबके बीच यह सारस्वरूपसे निकाला गया है। हे राजन्! सुरासुरोंने जिस प्रकार समुद्रको मथके अमृत निकाला था, वैसे ही पहिले समयमें ब्राह्मणोंने इस कथारूपी अमृतको बाहर किया है। जो मनुष्य अत्यन्त सावधान और मोक्षमार्गमें आरूढ़ होके सदा इसे पढ़ेंगे अथवा सुनेंगे, वे श्वेतद्वीपमें जाके चन्द्रमाके समान मनुष्य शरीर धारण करके सहस्रार्चि युक्त परम देवमें प्रविष्ट होंगे, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। आर्त्त पुरुष आदिसे अन्ततक इस कथाको सुननेसे रोगसे छूट जाता है, जिज्ञासु पुरुष मनोवाञ्छित फल पाता और भक्त निज गन्तव्य गतिको पाता है। हे राजन्! तुम भी सदा पुरुषोत्तमकी पूजा करना वह समस्त जगत्का पिता, माता और गुरु है। हे महाबाहु युधिष्ठिर! महाबुद्धिमान जनार्द्दन सनातन भगवान ब्रह्मण्यदेव तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होवें।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे जनमेजय! धर्म्मराज और उनके भ्रातृगण इस उत्तम आख्यानको सुनके सब कोई नारायणमें रत हुए। हे भारत! "उस भगवानकी ही जय हुई" अनन्तर सब कोई जप परायण होके सदा इस ही वचनका उच्चारण करने लगे। हम लोगोंके गुरु महामुनि कृष्णद्वैपायनने नारायणका नाम उच्चारण करते हुए परम जप्य मन्त्रका जप किया। वह आकाशसे अमृतामय क्षीरसागरमें जाके देवेश्वरकी पूजा करके फिर अपने आश्रमपर चले आते थे।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! यह नारद मुनिका कहा हुआ उत्तम उपाख्यान तुम्हारे निकट कहा गया; यह परम्परा क्रमसे प्रचलित हुआ चला आता है, पहिले पिताने मुझसे यह उपाख्यान कहा था।

सूत बोले, वैशम्पायनके सहारे यह सब विषय कहा गया, जनमेजयने उसे सुनकर विधिपूर्व्वक आचरण किया था। हे नैमिषारण्यवासी द्विज-श्रेष्ठ पुरुषो! आप सब लोगोंने ही तपस्या और व्रताचरण किये हैं, सब कोई वेदज्ञ ब्राह्मणोंके बीच मुख्य होनेसे शौनकके महायज्ञमें दीक्षित हुए हैं, इस समय आप लोग होम और यज्ञके द्वारा शाश्वत परमेश्वरकी पूजा करिये। इस परम्परा प्रचलित आख्यानको पहिले समयमें पिताने मुझसे कहा था।

३३८ अध्याय समाप्त।

शौनक बोले, हे सूत! वह देव सर्व्व-शक्तिमान भगवान् स्वयं यज्ञेश्वर होकर किस प्रकार यज्ञ करता है; वह वेदकर्त्ता होके किस प्रकार वेद-वेदाङ्गवेत्ता कहके विख्यात हुआ। उस क्षमावान निखिल सामर्थ्यवान भगवानने निवृत्ति धर्म्म अवलम्बन किया है; इसके अतिरिक्त वह निवृत्ति धर्म्मका विधान भी करता है; किस प्रकारसे देवताओंको प्रवृत्तिधर्म्म-भागार्ह किया है; प्रवृत्ति और निवृत्ति धर्म्म परस्पर विरुद्ध होनेपर भी दोनों किस प्रकार उसमें स्थित हुए, तुमने सब धर्म्मसंहिता सुनी है, इसलिये हमारे इस गुप्त सन्देहको दूर करो।

सौति बोले, हे शौनकोत्तम! धीमान वेद-व्यासके शिष्य वैशम्पायनकी पूजा करके राजा जनमेजयने जो प्रश्न किया था, मैं उस ही पौराणिकी कथाको तुम्हारे समीप कहता हूं इन देहधारियोंके अन्तरात्माका माहात्म्य सुनके महाप्राज्ञ राजा जनमेजयने वैशम्पायन मुनिसे जो कहा था, उसे सुनो।

महाराज जनमेजय बोले, हे ब्रह्मन्! ये ब्रह्मासे युक्त सुरासुर और मनुष्योंके सहित सब लोग अभ्युदय विधिमें संसक्त हुए देखे जाते हैं। आपने कहा निर्व्वाण मोक्ष ही परम सुख है, इस लोकमें पुण्य पापसे रहित होकर जो लोग मुक्ति लाभ करते हैं, वेही सहस्रार्चि

अर्थात् अनन्तचिद्रूप देवमें प्रवेश किया करते हैं, मैंने ऐसा ही सुना है। यह पञ्चविध मोक्ष प्रतिपादक धर्म अत्यन्त कष्टसे अनुष्ठान किया जाता है, देवता लोग जिसे परित्याग करके हव्य-कव्य भोजी हैं, उसका अनुष्ठान करना कितना कठिन है, वह इसीसे जाना जाता है। इसके अतिरिक्त ब्रह्मा, रुद्र, बलाराति देवराज इन्द्र, सूर्य्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, वरुण, आकाश, स्वर्ग और भूर्लोक तथा इनके अतिरिक्त जो सब देवतावृन्द हैं, वे सब आत्मपरिनिर्म्मित प्रलयसे अनभिज्ञ हैं। इस ही कारण जिन्होंने काल परिमाणसे स्मृति और प्रवृत्ति मार्गको अवलम्बन किया है, वे लोग शाश्वत, अव्यय और अक्षर निवृत्ति मार्गका आश्रय नहीं करते हैं; क्रियावान मनुष्योंमें काल परिमाणसे महान् दोष दीख पड़ता है। हे विप्र! मेरे हृदयमें यह संशय शल्यकी भांति उपस्थित है, तुम इतिहास कहके उसे छेदन करो, इस विषयमें मुझे अत्यन्त आश्चर्य्य होरहा है। हे द्विजवर! यज्ञके समय देवता लोग किस लिये भागहर रूपसे वर्णित हुए हैं? किस लिये देवता लोग यज्ञमें पूजित होते हैं। हे द्विजसत्तम! यज्ञ-स्थलमें जो लोग अपना हिस्सा लेते हैं, वे महायज्ञके सहारे याग करनेमें प्रवृत्त होने पर किसे यज्ञका भाग प्रदान किया करते हैं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे प्रजानाथ! तुमने अत्यन्त गूढ़ प्रश्न किया है, जिन लोगोंने तपस्या, वेदाध्ययन तथा पुराणोंको नहीं सुना है, वे सहसा इसका उत्तर देनेमें समर्थ नहीं हैं। पहले मैंने भी इस विषयको अपने गुरु महर्षि वेदव्याससे पूछा था, उन्होंने हम लोगोंसे जो कहा था; वह तुम्हारे समीप कहूंगा। सिद्ध चारणोंसे सेवित रमणीक सुमेरु पर्व्वतके ऊपरमें महाभाग वेदव्यासके सुमन्त, जैमिनि, दृढ़व्रत, पैल, मैं और शुकदेव, येही पांच पुरुष शिष्य थे; वह इन सब समागत दमयुक्त, पवित्र आचारमें रत, क्रोध जीतनेवाले और जितेन्द्रिय पांचो शिष्योंको चारोंवेद तथा पांचवां वेद महाभारत पढ़ाते थे। मेरे समान शिष्योंके वेदाभ्यास करते रहने पर कदाचित् हम लोगोंको सन्देह हुआ था, तुमने जो पूछा है, हमने भी उस ही प्रकार गुरुके समीप वही प्रश्न किया था। हे भारत! इसलिये गुरुके मुखसे मैंने जो कुछ सुना है, इस समय तुम्हारे समीप वह सब वर्णन करूंगा। निखिल अज्ञान रूपी अन्धकारके हरनेवाले पराशरके पुत्र श्रीमान् व्यासदेव शिष्योंके वचनको सुनके बोले कि, हे शिष्यवृन्द! मैंने परम दारुण अत्यन्त महत् तपस्या की थी, इसहीसे समस्त भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान विषय मुझसे छिपे नहीं हैं। मैंने तपस्या करके इन्द्रियनिग्रह किया है, इसीसे नारायणकी कृपासे क्षीरसागर तटके समीप मेरी इच्छाके अनुसार यह त्रैकालिक ज्ञान उत्पन्न हुआ है, इसलिये तुम लोगोंके संशयके विषयको विधिपूर्व्वक उत्तम रीतिसे कहता हूं, तुम सब कोई सुनो। सृष्टिके आरम्भमें जो घटना हुई थी, मैंने उसे ज्ञाननेत्रसे देखा है। सांख्य योगवाले पुरुष जिसे परमात्मा कहते हैं, वह निज कर्म्मके सहारे महापुरुष कहके प्रसिद्ध होता है, उसहीसे अव्यक्त उत्पन्न होता है, पण्डित लोग इस ही अव्यक्तको प्रधान समझते हैं। अव्यक्त ईश्वरसे ही लोक सृष्टिके लिये व्यक्त उत्पन्न हुआ था, लोग उसेही अनिरुद्ध और महान् आत्मा कहा करते हैं। जो व्यक्त होके पितामहको उत्पन्न करता है, उस सर्व्व तेजोमयको ही अहंकार कहा जाता है। पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और अग्नि, ये महाभूत अहंकारसे उत्पन्न होते हैं। वह महाभूतोंको उत्पन्न करते फिर उनके गुणोंको प्रकट करता है। समस्त भूतोंसे जो मूर्त्तिमान रूपसे सिद्ध होते हैं उनके नाम सुनो।

मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, महात्मा वशिष्ठ और स्वायम्भुव मनु, इन आठोंको अष्ट-प्रकृति जानना चाहिये, क्यों कि अष्ट-प्रकृतिसे ही सब लोक प्रतिष्ठित हैं। जगत् पितामह ब्रह्माने सब लोगोंको सिद्धिके लिये वेदवेदाङ्ग संयुक्त और यज्ञाङ्ग सम्पन्न किया है। अष्ट-प्रकृतिसे ही यह सारा संसार उत्पन्न हुआ है। क्रोधयुक्त रुद्रने अवतार लेके स्वयं दशरुद्रोंको उत्पन्न किया है। ये सब ग्यारह रुद्र विकार पुरुषरूपसे वर्णित होते हैं। वे सब रुद्रगण प्रकृति और देवर्षि लोग उत्पन्न होके सब लोकोंकी कार्य्यसिद्धिके लिये ब्रह्माके समीप गये। वहां जाके बोले, हे पितामह! आपने प्रभुविष्णु होकर हम लोगोंको उत्पन्न किया है, इस समय हम लोगोंमेंसे जिसे जिस अधिकारमें स्थित रहना होगा, उस विषयमें उपदेश दीजिये। आपने जो अर्थ चिन्ता विषयक अधिकार निश्चय किया है, साहङ्कार कर्त्ता उसे किस प्रकार प्रतिपालन करेंगे। अधिकारके विषयमें कौन विचार करेगा और उसका कैसा बल होना चाहिये, आप उसे वर्णन करिये। महादेव प्रजापति ऐसा वचन सुनके उन देवताओंसे वक्ष्यमाण रीतिसे वचन कहने लगे।

ब्रह्मा बोले, हे देवतावृन्द! तुम लोगोंने मेरे समीप उत्तम विज्ञप्ति की है, तुम्हारा मङ्गल हो, तुम लोगोंने जैसा सोचा है, मुझे भी वैसी ही चिन्ता उत्पन्न हुई है। तीनों लोकोंको किस प्रकार धारण करना चाहिये, तुम्हारा और मेरा किस प्रकारसे बल नष्ट न हो, इसे जाननेके लिये चलो हम सब कोई यहांसे गमन करके उस लोकसाक्षी अव्यक्त महापुरुषके शरणापन्न होवें, वह हमारे लिये जो हितकर होगा, वही उपदेश करेंगे।

अनन्तर वे लोकहितैषी ऋषिवृन्द और देवता लोग क्षीरसागरके उत्तर तटपर गये। वहां वे लोग ब्रह्मोक्त-वेद कल्पित तपस्याका अनुष्ठान करने लगे। वह दारुण तपस्याचरण महानियम नामसे विख्यात हुआ। वे लोग ऊर्द्ध दृष्टि, ऊर्द्धबाहु और एकाग्रचित्त हुए सभी एक चरणसे निवास करते हुए काष्ठकी भांति स्थित रहे। इसी प्रकार उन लोगोंने देवपरिमाणसे सहस्र वर्षतक अत्यन्त दारुण तपस्या करके वेद वेदाङ्ग भूषित मधुर वाणी सुनी।

श्रीभगवान बोले, हे ब्रह्मा आदि देवतावृन्द! हे तपस्वीगण! तुम्हारा स्वागत पूछनेके अनन्तर उत्तम वचन सुनाता हूं। तुम्हारा कार्य्य मुझे मालूम हुआ है। वह कार्य्य अत्यन्त वृहत् और लोक-हितकर है, तुम लोगोंको प्राणवायुकी परिपुष्टि करनेवाली प्रवृत्तियुक्त उस कार्य्य करना योग्य है। हे देवगण! कामनाके निमित्त मेरी आराधनासे तुम लोगोंने उत्तम तपस्या की है। हे महा सत्त्वगण! तुम लोग इस तपस्याका महत् फल भोग करोगे। लोकगुरु लोकपितामह ब्रह्मा और सब देवता-लोग स्थिर होकर मेरे उद्देश्यसे यज्ञ करें और तुम सब कोई यज्ञमें हमारे नित्य भागकी कल्पना करो, कि कौन किस अधिकारका स्वामी होगा, फिर उसमें जिस प्रकार तुम लोगोंका कल्याण होगा, उसे मैं वर्णन करूंगा।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर ब्रह्मा आदि देवता और महर्षि लोग यह वचन सुनके पुलकित हुए और वेदमें कही हुई विधिके अनुसार वैष्णव यज्ञ आरम्भ किया। उस यज्ञमें ब्रह्माने स्वयं नित्य भागकी कल्पना की और देवता तथा देवर्षि वृन्द अपना अपना भाग स्थिर करने लगे। उस सत्ययुगमें धर्म्मयुक्त परम सत्कृत सब भाग आदित्य वर्ण, तमोगुणसे रहित सर्व्वव्यापी सर्व्वगामी, वरदाता पुरुष प्रभु ईशान देवके निकट उपस्थित हुए। अनन्तर शरीररहित आकाशमें वरदाता देव महेश्वरने उन सब स्थित देवताओंसे यह वचन कहा, कि जिसने जिस भागकी कल्पना की

हो, वे सब भाग उस ही प्रकार मेरे निकट उपस्थित हुए हैं, इसलिये मैं प्रसन्न हुआ हूं, अब आवृत्तिलक्षण फल प्रदान करूंगा। हे देवगण! तुम लोगोंके सम्बन्धमें मेरे प्रसादसे यह लक्षण उत्पन्न होगा, कि तुम लोग युगयुगमें अनेक दक्षिणायुक्त यज्ञके जरिये यजन करते हुए प्रवृत्ति-फलभागी होगे। जो देवता अथवा मनुष्य लोग सब लोकोंके बीच यज्ञके जरिये पूजा करनेमें प्रवृत्त होंगे, वे तुम लोगोंके लिये वेदमें कहे हुए सब भागोंकी कल्पना करेंगे इस महायज्ञमें जिसने जिस भांति मेरे भागको कल्पित किया है, मैंने वेदसूत्रमें उसे वैसा ही यज्ञभागी किया है; इसलिये तुम लोग लोकके बीच निज अधिकारमें अधिष्ठित होके यज्ञभागके उचित फल और सर्व्वार्थ चिन्तक होकर सब लोगोंको उत्पन्न करोगे। जो सब कार्य्य प्रवृत्तिफलके सहारे सत्कृत होकर प्रचारित होंगे, उन्हीं सब कार्य्योंके जरिये तुम लोग अप्यायित और बलसंयुक्त होकर सब लोकोंको धारण करोगे। तुम लोगोंके विषयमें मेरी यह भावना होती है, कि तुम लोग सब यज्ञोंमें मनुष्योंके जरिये पूजित होगे। अनन्तर तुम लोग मेरा ध्यान करोगे। इस ही निमित्त सब वेद, यज्ञ और औषधि उत्पन्न हुई हैं; पृथ्वीतलमें यह सब वेदविधिके अनुसार पूर्णरीतिसे प्रयुक्त होनेसे देवता लोग प्रीति लाभ करेंगे।

हे सुरश्रेष्ठगण! जबतक यह कल्प नष्ट न होगा, तबतक तुम लोगोंकी प्रवृत्ति गुण कल्पित निर्म्माण, मेरे जरिये विहित हुआ है; इसलिये तुम लोग निज निज अधिकारके ईश्वर होकर लोकके हितका विचार करो। मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ ये सातों मानससे उत्पन्न हुए हैं, ये लोग वेदवित् और मुख्य वेदाचार्य्य प्रवृत्तिधर्म्म-परायण प्राजापत्यरूपसे कल्पित हुए हैं। क्रियावान पुरुषोंका यह सनातन पथ कहा गया है; सर्व्व शक्तिसंयुक्त अनिरुद्ध लोक सर्गकर रूपसे वर्णित हुए हैं। सन, सनत्सुजात, सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, कपिल और ऋषिप्रवर सत्तम, ये ब्रह्माके मानसपुत्र कहाते हैं, इन लोगोंमें स्वयं विज्ञान उत्पन्न हुआ है, इन्होंने निवृत्ति मार्गको अवलम्बन किया है। ये सांख्य ज्ञान विशारद मुख्य योगवित् पुरुष धर्म्मशास्त्रोंके आचार्य्य और मोक्षधर्म्मके प्रवर्त्तक हैं। प्रथम जो अव्यक्तसे त्रिगुणात्मक अहङ्कार प्रकट हुआ, जो उससे भी परे हैं, वही क्षेत्रज्ञ रूपसे कहा गया है। वह अहङ्कार क्रियावान मनुष्यों अर्थात् पुनरावृत्ति विशिष्ट लोगोंके लिये दुर्लभ पथस्वरूप है। जो जीव जिस जिस कर्म्ममें जिस प्रकार उत्पन्न हुए हैं, प्रवृत्ति अथवा निवृत्ति मार्गमें वे उस ही महत् फलको उपभोग करते हैं। ये लोकगुरु जगतके आदिकर्त्ता प्रभावयुक्त प्रजापति तुम लोगोंके पिता, माता और पिता मह हैं; ये मुझसे अनुशिष्ट होकर सब प्राणियोंके वरप्रद होंगे। जो ललाटसे उत्पन्न होकर रुद्ररूपसे इनके आत्मज हुए हैं, वे ब्रह्माकी आज्ञासे सब भूतोंको धारण करनेमें समर्थ होंगे। अब तुम लोग अपने अपने अधिकारपर जाके विधिपूर्व्वक विचार करो, समस्त लोगोंके बीच सब कार्य्योंके अनुष्ठानमें प्रवृत्त रहो, विलम्ब मत करो।

हे सुरोत्तम गण! इस लोकमें परमायुका परिमित समय है, इसलिये प्राणियोंके कर्म्म और गतिका विषय वर्णन करो। इस समय इस कालसे श्रेष्ठ सत्ययुग प्रवर्त्तित हुआ है; इस युगमें यज्ञीय पशु अहिंस्य रहेंगे, इसमें अन्यथा न होगा। हे देवगण! इस सतयुगमें सब धर्म्म चार चरणसे स्थित रहेंगे। अनन्तर त्रेतायुग प्रवर्त्तित होगा, उसमें तीनों वेद वर्त्तमान रहेंगे, धर्म्मका चौथा चरण न रहेगा, तिसके अनन्तर द्वापर नाम मिश्रकाल आवेगा,

उस युगमें धर्म्मके दो चरण रहेंगे। अन्तमें तिष्य नक्षत्रमें कलियुगके उपस्थित होनेपर धर्म्म सर्व्वत्र एक चरणसे निवास करेगा।

लोक गुरु भगवानके ऐसा कहने पर देवता और देवर्षि लोग बोले, जब धर्म्म जिस किसी स्थान पर जाके एक चरणसे निवास करेगा, उस समय हम लोगोंको क्या करना योग्य है? आप उसे हो वर्णन करिये।

श्रीभगवान् बोले, हे सुरोत्तमगण! कलि-कालमें जिस स्थानमें वेद, यज्ञ, सत्य, तपस्या, दम और अहिंसा धर्म्म संयुक्त होकर प्रचारित होगी, तुम लोग उस हो स्थानमें निवास करोगे, ऐसा करनेसे अधर्म्म तुम लोगोंको स्पर्श न कर सकेगा।

व्यासदेव बोले, ऋषियोंके सहित देवता लोग भगवानको ऐसी आज्ञा सुनकर उन्हें नमस्कार करके निज निज अभिलाषित स्थानपर गये। सुरपुरवासी देवताओंके सहित ऋषियोंके चले जानेपर, केवल एक मात्र ब्रह्मा अनिरुद्ध तनसे अधिष्ठित उस भगवानका दर्शन करनेके अभि-लाषी होकर स्थित रहे। भगवानने कमण्डलु और त्रिदण्ड धारण करके साङ्ग वेदोंकी आवृत्ति करते हुए सुन्दर तथा महत् हयशिरा मूर्त्ति धारण करके उन्हें दर्शन दिया। लोक-कर्त्ता प्रभावशाली प्रजापतिने हयशिरा देवको देखकर सब लोकोंकी हित कामनासे शिर झुकाके उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़के खड़े रहे। भगवानने उस समय विधाताको आलिङ्गन करके उन्हें यह वक्ष्यमाण वचन सुनाया है।

भगवान् बोले, हे ब्रह्मन्! तुम सब लोकोंके कार्य्य तथा गतिको विधिपूर्व्वक विचारो, तुम सब भूतोंके विधाता हो, तुम हो जगत्के गुरु और प्रभु हो; मैंने तुम्हें भार समर्पण करके यथार्थ सन्तोष अवलम्बन किया है। जिस समय तुम्हें देवकार्य्य अविसह्य होगा, तब मैं आत्म-ज्ञान और उपायके अनुसार उत्पन्न हूंगा। हयशिरा ऐसा हो कहके उसो स्थानमें अन्त-र्द्धान होगये ब्रह्मा भी उनकी आज्ञाके अनुसार शीघ्र ही निज लोकमें गये। हे महाभाग! इस हो प्रकार वह सनातन पद्मनाभ सब यज्ञोंके अग्रहर और नित्यकाल यज्ञधारी कहके अनेक भांतिसे वर्णित हुए हैं। उन्होंने अक्षय धर्म्मशालियोंकी गतिरूप निवृत्ति धर्म्मको अव-लम्बन किया है और सब लोकोंकी विचित्रता करके प्रवृत्ति धर्म्मका विधान किया है। वही आदि है, वही ध्येय है, वही कर्त्ता और वही कार्य्य है; वह युगान्त कालमें सब लोकोंको उदरमें डालके प्रसुप्त होता है और युगके आर-म्भमें सावधान होकर जगत्की सृष्टि किया करता है। तुम सब कोई उस देवको नमस्कार करो, वही निर्गुण, महात्मा, अज, विश्वरूप और स्वर्गवासियोंका धाम स्वरूप है। वही महाभूतोंका अधिपति रुद्र गणोंका स्वामी आदित्यपति तथा वसुगणोंका प्रभु है; वह दोनों अश्विनीकुमारोंका स्वामी, मरुद्गणोंका प्रभु, वेदयज्ञादि तथा वेदाङ्गपति है। वही सदा समुद्रवासी हरि और मुञ्जकेशी है, वह शान्त है, और सब भूतोंके मोक्ष धर्म्मानुभाषी है; वही तपस्या, तेज और यशका पति, वाक्‌पति तथा सरित्पति है। वह कपर्द्दी, वाराह, एक शृङ्ग, धीमान, विवस्वान अश्वशिरा, चतुर्म्मूर्त्तिधारी, सदा गुह्य, ज्ञानदृश्य और अक्षर स्वरूप है। यह सर्व्वत्र गमनशील अव्यय देव भ्रमण कर रहा है यही विज्ञाननेत्रके सहारे जानने योग्य पर-ब्रह्म है, इस हो प्रकार ज्ञाननेत्रसे मैंने पहिले समयमें इसे देखा था। हे शिष्यगण! तुम लोगोंके पूछनेपर यथार्थ रूपसे यह सब कहा गया अब मेरे वचनके अनुसार ईश्वर हरिकी सेवा करो, वेदध्वनिके जरिये उनका यश गाओ और विधि पूर्व्वक पूजा करो।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उस बुद्धिमान वेद

व्यासने शिष्योंसे तथा परम धर्म्मज्ञ शुकदेवसे ऐसा ही कहा था। हे महाराज! गुरु हम लोगोंके सहित चतुर्व्वेदोद्गत ऋचाओंके जरिये उनकी सब प्रकारसे स्तुति करने लगे। हे महाराज! पहले समयमें गुरु वेदव्यासने मुझसे जो कहा था वह सब मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया जो पुरुष स्थिर बुद्धि होकर "नमो भगवते" ऐसा वचन करके इस विषयको सदा सुनता अथवा कहता है, वह बुद्धिमान मनुष्य बलरूपसे युक्त और रोगरहित होता है; आतुर पुरुष रोगसे और बद्ध पुरुष बन्धनसे छूट जाते हैं। कामी कामनाके अनुसार काम्य विषय प्राप्त करके दीर्घायु होते हैं। ब्राह्मण सब वेदोंके जाननेवाले; क्षत्रिय विजयी, वैश्य अत्यन्त धनवान और शूद्रसुखी हुआ करते हैं। पुत्रहीन मनुष्य पुत्रवान् होता है, कन्या अभिलषित पतिपाती है, लग्नगर्भा विमुक्त होती तथा पुत्र प्रसव करती है; बन्ध्या समृद्धिशाली पुत्र पौत्र प्रसव किया करती है; मार्गमें जो मनुष्य इसे पाठ करता है, वह निर्व्विघ्नताके सहित मार्गमें गमन करनेमें समर्थ होता है। जो पुरुष जैसी कामना करता है, वह निश्चय ही उसे पाता है। यह महर्षिका निश्चित वचन है, और देवर्षि तथा देवताओंके समागमसे युक्त महात्मा पुरुषोत्तमकी कथा कहने अथवा सुननेसे भक्त जन परम सुख लाभ करते हैं।

३४० अध्याय समाप्त।

राजा जनमेजय बोले, हे भगवन्! शिष्योंके सहित वेदव्यास मुनिने जिन विविध नामोंके द्वारे मधुसूदनकी स्तुति की थी, मैं प्रजापति हरिके उन सब नामोंके निरुक्त अर्थात् निर्व्वाचन सुननेके लिये अभिलाषी हुआ हूं; इसलिये जिसे सुनके मैं निर्म्मल शरदकालके चन्द्रमाकी भांति पवित्र हूंगा, आपही उस विषयको वर्णन करने योग्य हैं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! प्रभावशाली नारायणने अर्जुनके ऊपर प्रसन्न होकर सर्व्वज्ञत्व आदि गुणों और जगत्सृष्टि प्रभृति कर्म्म-जनित नामोंका जो निरुक्त कहा था, उसे सुनो। शत्रुनाशन धनञ्जयने जिन नामोंसे नारायणका वर्णन किया जाता है, उन सबका निरुक्त पूछा था।

अर्जुन बोले, हे भूत भव्येश भगवन! हे सर्व्वभूतोंकी सृष्टि करनेवाले अव्यय! हे लोकधाम जगन्नाथ! हे लोकाभयप्रद! हे देव! महर्षियोंके जरिये तुम्हारे जो सब नाम वर्णित हुए हैं और वेद तथा पुराणोंके बीच कर्म्मवशसे जो सब नाम गुप्त हैं, हे केशव! मैं तुम्हारे निकट उन नामोंका निर्व्वाचन सुननेकी इच्छा करता हूं। हे प्रभु! तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कोई भी इन नामोंका निरुक्त वर्णन करनेमें समर्थ नहीं है।

श्रीभगवान बोले, हे अर्जुन! ऋग्वेद; यजुर्व्वेद, सामवेद और अथर्व्ववेद, उपनिषद, पुराण, ज्योतिष, सांख्य, योगशास्त्र और आयुर्व्वेदके बीच महर्षियोंने मेरे अनेक प्रकार नाम वर्णन किये हैं, उसके बीच कोई कोई नाम कर्म्मज होनेसे गौण हैं। हे अनघ! इसलिये तुम सावधान होकर मेरे द्वारा उन कर्म्मजनामोंका निरुक्त सुनो। हे तात! पहलेसेही तुम मेरे अर्द्धाङ्ग रूपसे स्मृत हुए हो। विश्वात्मा निर्गुण और गुणमय अत्यन्त यशस्वी देहधारियोंकी अन्तरात्मा है, इससे उस नारायणको नमस्कार है। जिसकी कृपासे ब्रह्माने जन्मलिया और जिसके क्रोधसे रुद्रदेव उत्पन्न हुए हैं, वही स्थावर जङ्गम सबकी उत्पत्तिका कारण है। हे सात्विकप्रवर! प्रीति, कार्य्य, उद्रेक, लघुता, सुख, अकृपणता, असंरम्भ, सन्तोष, श्रद्धानता, क्षमा, धृति, अहिंसा, शौच, अक्रोध, आर्जव समता, सत्य और अनसूया, इन अठारहों गुणोंको सत्व कहते हैं। मेरी परा प्रकृति

अष्टात्मक गुणमयी है ; यह प्रकृति ही योगबलसे द्युलोक और भूलोकको धारण कर रही है। यही धाता अर्थात् ब्रह्मलोक पर्य्यन्त कर्म फल स्वरूप है, स्रष्टा अर्थात् अबाधित चिन्मात्र स्वरूप है; अमरण धर्मशीला, अजया प्रकृति ही सब लोकोंकी आत्मसंज्ञा संयुक्त है ; उस धातादि स्वरूप परमात्मामें अध्यस्त सत्त्वसे सृष्टि और प्रलय आदि सब विक्रिया प्रवर्त्तित हुआ करती हैं। तपस्या और यज्ञस्रष्टा पुराण पुरुष अनिरुद्ध रूपसे वर्णित हुआ करता है, इसहीसे सब लोकोंकी उत्पत्ति और लय होती है। हे पद्मनिभेक्षण! ब्रह्माकी रात्रि व्यतीत होनेपर उस अमित तेजस्वी नारायणकी कृपासे एक कमल उत्पन्न हुआ था; उसी कमलसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए, ब्रह्मा उसहीकी कृपासे जन्म ग्रहण करते हैं। दिनके बीतने पर उस क्रोधाविष्ट देवके मस्तकसे संहार करनेवाला रुद्र नाम पुत्र उत्पन्न होता है। ये दोनों देवश्रेष्ठ भगवानकी कृपा और क्रोधसे उत्पन्न होते हैं और उनकी आज्ञानुसार यथायोग्य कार्य्यमें प्रवृत्त होकर सृष्टि और संहार करते हैं सब प्राणियोंके वरप्रद ब्रह्मा और रुद्र सृष्टि तथा संहार कार्य्यमें निमित्त मात्र हैं।

हे पाण्डवेय! कपर्द्दी, जटिल, मुण्ड श्मशान गृहवासी, उग्र व्रतधर परम दारुण योगी, दक्ष यज्ञहर, भगनेत्रहर रुद्रको युगयुगमें नारायण स्वरूप जानना चाहिये। हे पृथापुत्र! उस देवोंकेदेव महेश्वरके पूजित होनेसे प्रभु नारायण पूजित होते हैं। हे पाण्डुपुत्र! मैं सब प्राणियोंकी अन्तरात्मा हूं, इसलिये रुद्रकी पहले पूजा किया करता हूं ; यदि वरदाता ईश्वर शिवकी मैं पूजा न करूं तो कोई मेरे आत्माकी कोई पूजा न करेगा। सब लोग मेरे किये हुए प्रमाणका अनुसरण किया करते हैं, इसलिये प्रमाण सबका ही पूज्य है, इसी निमित्त मैं रुद्रकी पूजा किया करता हूं। जो पुरुष शिवको जानता है, वही मुझे भी जानता है, जो उसके अनुगत हैं, वही मेरे अनुगत हैं। हे कौन्तेय! रुद्र और नारायण दो रूपसे एक ही हैं, इसलिये सब कार्य्योंमें व्यक्तिस्थ होकर लोकमें विचरते हैं। हे पाण्डुपुत्र! कोई पुरुष मुझे वर देनेमें समर्थ नहीं है, मैं मनहीमन ऐसा ही विचार करके पुराण ईश्वर रुद्रदेवकी पुत्रके निमित्त आप ही अपनी आराधना की थी। सर्व्वव्यापी विष्णु अपने सिवा और किसी देवताको प्रणाम नहीं करते; इसही निमित्त मैं रुद्रदेवकी आराधना करता हूं। ब्रह्मा रुद्र और इन्द्रके सहित सब देवता तथा ऋषि लोग देवश्रेष्ठ नारायण हरिकी पूजा करते हैं। हे भारत! वर्त्तमान और भविष्यत् प्राणियोंके लिये भगवान विष्णु ही सबके सेवनीय और सदा पूजनीय हैं। हे कुन्तीपुत्र! हव्यदाता विष्णुको नमस्कार और शरण दाता हरको प्रणाम करो, वरदाता विष्णुको नमस्कार तथा हव्यकव्य भोक्ता भगवानको प्रणाम करो। मैंने ऐसा सुना है कि जिज्ञासु, आर्त्त, अर्थार्थी और ज्ञानी, इन चार प्रकारके पुरुष ही मेरे भक्त हैं, उसमेंसे जो लोग अपनेसे पृथक् दूसरे देवताओंकी आराधना न करके केवल मुझमें ही अत्यन्त निष्ठावान हैं, वेही श्रेष्ठ हैं, उन निष्काम कर्म करनेवाले भक्तोंका मैंही अवलम्ब हूं। इसके अतिरिक्त जो तीन प्रकारके भक्त हैं; वे लोग फल कामना किया करते हैं; इसलिये लोग धर्मभ्रष्ट होते हैं, इस ही कारणसे उन्हें धर्मच्युत कहा जाता है और जो लोग प्रतिबुद्ध हैं, वेही श्रेष्ठ हैं। प्रबुद्ध धर्म मनुष्य ब्रह्मा अथवा दूसरे नीलकण्ठ आदि देवताओंकी सेवा करते हुए मुझे ही पाते हैं। हे पार्थ! भक्तोंके विषयमें मुझे जो विशेष है, यह तुम्हारे समीप वही विषय कहा गया। हे कौन्तेय! तुम और मैं, अर्थात् हम दोनों नर नारायण रूपसे पृथ्वीके भारको उतारनेके लिये मनुष्य रूपसे उत्पन्न

हुए हैं। हे भारत! मैं अध्यात्म योग जाननेसे निवृत्ति लक्षण और अभ्युदयिक धर्म्म रूपसे स्मृति हुआ हूं। केवल एकमात्र सदा मैंही मनुष्योंका न स्थान अर्थात् अवलम्ब हूं, इसही निमित्त मेरा नाम नारायण है. अथवा जलसमूहको नार कहते हैं, क्यों कि वह नरसे उत्पन्न हुआ है, सृष्टिके पहिले वही समस्त नार (जल) मेरा स्थान था, इस ही कारणसे मैं नारायण हूं। मैं सूर्य्य स्वरूपसे किरणोंके सहारे अखिल जगत्को परिपूर्ण करता हूं; और सब प्राणी मुझमें निवास करते हैं; इसही निमित्त मैं वासुदेव नामसे प्रसिद्ध हुआ हूं।

हे भारत! मैं सर्व्वभूतोंकी गति और उत्पत्तिका कारण हूं। हे पार्थ! द्युलोक और भूलोक मुझसे व्याप्त हो रहा है, मेरा तेज भी सबसे अधिक है; क्यों कि मेरे तेजसे समस्त जगत् प्रकाशित होरहा है। हे भारत! दिव्य अदिव्य सब प्राणी अन्तकालमें जिसे पानेकी इच्छा करते हैं, मैं वही ब्रह्म हूं। हे पार्थ! मैंने तीनों लोकोंको आक्रमण किया है, इसी कारणसे विष्णु नामसे विख्यात हुआ हूं। मनुष्य लोग मुझे पानेके लिये अपनी अपनी इन्द्रियोंको दमन करते हुए सिद्धि प्राप्त करनेकी अभिलाष करते हैं, इसीसे द्युलोक, भूलोक और मध्यलोकवासी मुझे दामोदर कहते हैं, अर्थात् दाम शब्दसे "दमन" अर्थ जाना जाता है, इन्द्रिय दमन होनेसे जिसके जरिये स्वर्गादि लोग प्राप्त होते हैं, वही दामोदर है। अन्न, वेद, जल और अमृत, इन चारोंको प्रश्नि कहते हैं, ये सब सदा मेरे उदरमें विद्यमान हैं, इसलिये मैं प्रश्निगर्भ हूं। 'हे प्रश्निगर्भ! एकत और द्वितके द्वारा कूएंमें गिराये हुए त्रितकी रक्षा करो, ऋषियोंने मुझे इस ही प्रकार कहा था। अनन्तर ब्रह्माके पुत्र; त्रित 'प्रश्निगर्भ' नाम लेकेही कूएंसे बाहर हुए थे। लोकोंको तपानेवाले सूर्य्य, अग्नि तथा चन्द्रमाकी जो किरण जो प्रकाशित होती है, वह मेरे केशसमूह हैं, इसी निमित्त सर्व्वज्ञ द्विजसत्तमगण मुझे केशव कहते हैं। हे अर्जुन! महात्मा उतथ्यके सहारे बृहस्पतिकी पत्नीमें गर्भ अर्पित होनेपर देवमायासे जब उतथ्य अन्तर्द्धान हुए, तब महानुभाव बृहस्पति अपनी भार्य्याके निकट उपस्थित हुए। हे कौन्तेय! जब ऋषिश्रेष्ठ बृहस्पति मैथुनके निमित्त भार्य्याके निकट गये, तब पञ्चभूतोंसे संयुक्त गर्भ बोला। हे वर देनेवाले! मैं पहिलेसे ही इस गर्भमें आया हूं, इसलिये आप मेरी माताको पीड़ित न करिये। बृहस्पतिने ऐसा वचन सुनके क्रुद्ध होकर शाप दिया, कि मैं मैथुनके निमित्त आगमन करके जब तुमसे रोका गया हूं, तब तुम मेरे शापसे निःसन्देह अन्धे होगे। ऋषिश्रेष्ठ बृहस्पतिके शापसे वह गर्भ अधिक अन्धकारको प्राप्त हुआ। इसही कारणसे पहले समयमें उस गर्भसे उत्पन्न ऋषि दीर्घतम नामसे विख्यात् हुए। उन्होंने साङ्गोपाङ्ग चारो सनातन वेदोंको पढ़के विस्तारके सहित विधिपूर्व्वक मेरे इस केशव नामको बार बार उच्चारण किया था; इसही नामके उच्चारण करनेसे वह नेत्रवान हुए और उस ही निमित्त गौतम नामसे विख्यात् हुए। हे अर्जुन! इस ही प्रकार मेरा यह वर देनेवाला केशव नाम प्रसिद्ध हुआ, समस्त देवताओं और महानुभाव ऋषियोंके तापन और अध्यायन निबन्धनसे जठराग्नि, अन्नस्वरूप चन्द्रमाके सहित संयुक्त होकर एक योनित्वको प्राप्त हुए; इसलिये स्थावर जङ्गमात्मक समस्त जगत् अग्निचन्द्रमामय हुआ है, वर्त्तमान पुराणोंमें भी अग्नि और चन्द्रमा एक योनि हैं तथा देववृन्द अग्निमुख कहके प्रसिद्ध हैं, एक योनित्व प्रयुक्त होनेसे वे परस्पर भोक्तृ भोग्य भावसे संयुक्त होके सब लोकोंको धारण करते हैं।

३४१ अध्याय समाप्त।

अर्जुन बोले, हे मधुसूदन ! अग्नि और चन्द्रमा किस प्रकार पहले एक योनि हुए थे। मुझे बड़ा सन्देह हुआ है, इसलिये आप उस संशयको दूर करिये।

श्रीभगवान् बोले, हे पाण्डुपुत्र ! अच्छा मैं तुम्हारे समीप अपने तेजसे उत्पन्न हुए प्राचीन विषयको वर्णन करता हूं, तुम चित्त एकाग्र करके सुनो। प्रलयकालके समय हजार चतुर्युगी बीतने और स्थावर जङ्गममय सब भूतोंके अव्यक्तमें लीन होनेपर जगत् अन्धकारसे परिपूरित अग्नि वायु और पृथ्वीसे रहित तथा जलवत् चैतन्य मात्र समुद्र समान सर्व्वत्र व्याप्त होने और समुद्रकी भांति अद्वितीय ब्रह्मके निज महिमामें निवास करनेपर जब रात्रि, दिन, प्रकृति, शून्य, व्यक्त परिमाणु और माया विचित्रित अव्यक्त कुछ भी न था ; केवल निर्व्विशेष सन्मात्र ब्रह्म ही स्थित था। ऐसी अवस्थामें नारायण गुण ऐश्वर्य्य आदिके अवलम्ब अजर, अमर, अनिन्द्रिय, अग्राह्य, असम्भव, सत्य, अहिंस्र, रत्नवत्, भावरूप, ललामभूत, विविध प्रवृत्ति विशेष, वैर रहित, मृत्यु, जरा और मूर्त्ति-विवर्ज्जित, सर्व्वव्यापी, सर्व्वकर्त्ता, अनादि तम सन्निधानसे चिदात्मा हुआ था, वही अहंप्रत्ययका विषय अव्यय हरि है। इस विषयमें यह वेदका प्रमाण है, कि सृष्टिके पहिले न रात्रि थी, न दिन था, न सत था, न असत् था, केवल विश्वरूप अन्धकार था ; वह अन्धकार ही विश्वरूप रात्रि है, भाष्यके बीच ऐसा ही अर्थ जाना गया है। अनन्तर उस तमसे उत्पन्न ब्रह्मयोनि पुरुषसे ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई, उस पुरुष अर्थात् हरिने प्रजासमूहको उत्पन्न करनेकी इच्छा करके दोनों नेत्रोंसे अग्नि और चन्द्रमाको उत्पन्न किया। अनन्तर भूतोंकी उत्पत्ति होने पर धीरे धीरे प्रजासमूह ब्राह्मण और क्षत्रिय रूपसे उत्पन्न हुए। जो सोम हैं, वही ब्रह्म है, जो ब्रह्म है, वही ब्राह्मण हैं, जो अग्नि है, वही क्षत्रिय है। क्षत्रियसे ब्राह्मण बलवान हैं, लोक प्रत्यक्ष गुण ही इसमें कारण हैं। ब्राह्मणोंसे उत्तम जीव पहले उत्पन्न नहीं हुआ, जो लोग ब्राह्मणके मुखमें आहुति प्रदान करते हैं, वे दीप्यमान अग्निमें होम किया करते है ; इस ही निमित्त कहता हूं, ब्रह्मासे सब प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है, और वह सब भूतोंको प्रतिष्ठित करके तीनों लोकोंको धारण कर रहे हैं ; इसहीके सहारे ब्राह्मण-माहात्म्यको प्रसिद्ध करनेवाला मन्त्रवाद भी सिद्ध होता है।

हे अग्नि ! तुम सब यज्ञोंके होतृ स्वरूप ऋत्विक् हो ; इसलिये समस्त देव मनुष्य और जगत्के हितकर हो। इस विषयमें यह प्रमाण है कि, हे अग्न ! तुम समस्त देवता मनुष्य और जगत्के हितकरनेवाले हो, इस ही निमित्त तुम यज्ञमें होता अर्थात् ऋत्विक्-स्वरूप हो। अग्नि ही यज्ञोंमें होता, कर्त्ता अर्थात् यजमान है और वह अग्नि ब्रह्म अर्थात् ब्राह्मण हैं। मन्त्रके बिना होम नहीं होता, बिना पुरुषके तपस्या नहीं हो सकती और हवि तथा मन्त्रोंका सत्कार नहीं होता, तथा अग्निके बिना देवता, मनुष्य और ऋषियोंका सम्मान सम्भव नहीं है, इस ही निमित्त तुम होतृ स्वरूपसे नियुक्त हो क्यों कि ब्राह्मणोंमेंही याजन विहित है, क्षत्रिय और वैश्योंके द्विजाति होनेपर भी उनमें याजन विहित नहीं है ; इसलिये ब्राह्मण लोग अग्नि-स्वरूप होकर यज्ञोंको ढोते हैं, वही समस्त यज्ञ देवताओंको तृप्त करते हैं, देवता लोग यथा समयपर वर्षा आदिसे पृथ्वीपालन किया करते हैं। शतपथ ब्राह्मणमें यही प्रतिपन्न हुआ है, कि जो विद्वान् ब्राह्मणके मुखमें आहुति देता है, वह समृद्ध अग्निमें होम किया करता है। इस ही प्रकार अग्निरूपी विद्वान्* ब्राह्मण अग्निको प्रकट करते हैं, सर्व्वव्यापी अग्निदेव विष्णु रूपसे सबके शरीरमें प्रविष्ट

होकर जीवोंके प्राणको धारण किया करता है। इसके अतिरिक्त सनत्कुमारके कहे हुए इस विषयमें ये श्लोक हैं, कि सबके पहिले ब्रह्माने इस निरवस्कृत अर्थात् निर्ज्जाल जगत्को उत्पन्न किया था। ब्रह्मयोनि देवता लोग वेदध्वनिके जरिये स्वर्गमें गमन करते हैं, ब्राह्मणोंके अचल बुद्धि, कर्म्म, श्रद्धा, तपस्या और वाक्यामृत शैक्य अर्थात् शिकको भांति स्वर्ग और महीमण्डलको धारण कर रहे हैं। सत्यसे परम धर्म्म और कुछ भी नहीं है। माताके समान गुरु नहीं है, इस लोक और परलोकमें विभूतिके निमित्त ब्राह्मणोंसे श्रेष्ठ और कोई भी नहीं है। जिसके राज्यमें ब्राह्मण वृत्ति रहित होके वास करते हैं, उसके रक्षा अर्थात् वृषभ अथवा सब वाहन सवारियोंको नहीं ले चलते, गर्गर अर्थात् दही जल और तेल आदि निष्पीड़नके यन्त्रदही प्रभृतिके सम्प्रदान विषयमें मथित नहीं होते, वह राजा कृषिरहित होके विनष्ट होता तथा दस्युके समान हुआ करता है। वेद पुराण और इतिहासके प्रमाण अनुसार ब्राह्मण लोग नारायणके मुखसे उत्पन्न हुए हैं, वेही सर्व्वात्मा, सर्व्वकर्त्ता और सर्व्वसत्त्व स्वरूप हैं। उस वरप्रद महादेवके वाक् संयममें ब्राह्मण ही पहिले उत्पन्न हुए और ब्राह्मणोंसे शेष तीनों वर्ण उत्पन्न हुए थे। इस ही प्रकार जब कि मैंने ब्राह्मणोंको सुरासुरोंसे भी श्रेष्ठ उत्पन्न किया है, तब ब्राह्मणोंसे ही देवता, असुर, महर्षि आदि स्थापित और निगृहीत हुए हैं। अहल्याका धर्म्म नष्ट करनेसे गौतमके शापसे देवराज इन्द्र हरिश्मश्रु हुए हैं, कौशिकके निमित इन्द्र मुष्कहीन होकर मेषवृषणत्वको प्राप्त हुए। दोनों अश्विनीकुमारोंके ग्रह प्रतिषेधके निमित्त वज्र लिये हुए इन्द्रको दोनों भुजा च्यवनके द्वारा स्तम्भित हुई थीं। यज्ञविघातके हेतु क्रुद्ध होकर दक्षने बार बार तपस्याके सहारे आत्म संयोजना करके त्रिपुरासुरके वधके लिये रुद्रदेवके ललाटसे नेत्राकृति समान एक दूसरी शक्ति उत्पन्न की थी। त्रिपुरासुरोंके दीक्षाके लिये निकट आये हुए रुद्रके सिरसे सब जटा काटके फेंक दीं, उस फेंकी हुई जटासे सर्पसमूह उत्पन्न हुए, उन सर्पोंसे पीड़ित होनेसे महादेवका कण्ठ नीलवर्ण हुआ है और पहिले कल्पके स्वायम्भुव मन्वन्तरमें नारायणके हाथके सहारे ग्रहण किये जानेसे रुद्रदेव नील कण्ठ हुए। अमृत उत्पन्न करनेके लिये पुनश्चरण करनेके हेतु अङ्गिरापुत्र बृहस्पतिने जलको स्पर्श किया परन्तु वह प्रसन्न न हुआ तब बृहस्पति जलके विषयमें क्रुद्ध होकर बोले कि, मेरे स्पर्श करनेपरभी जब तुम कलुष रहे और किसी प्रकार प्रसन्न न हुए उसही कारण आजसे मकर मच्छ, कच्छप आदि जलजन्तुओंसे कलुष रहोगी। बृहस्पतिने जब ऐसा शापदिया तभीसे समस्त सलिल जल जन्तुओंसे भर गया।

त्वष्टापुत्र विश्वरूप देवताओंके पुरोहित थे, वह असुरोंके भानजे होनेपर भी देवताओंको प्रत्यक्षमें और असुरोंको परोक्षमें यज्ञ भाग प्रदान करते थे। अनन्तर असुरोंने हिरण्यकशिपुको अगाड़ी करके निज भगिनी विश्वरूपकी माताके निकट जाके वर मांगा कि, हे बहिन तुम्हारा यह पुत्र त्वष्टातनय त्रिशिरा विश्वरूप देवताओंका पुरोहित हुआ है, इसने देवताओंको प्रत्यक्ष और हमको परोक्षमें यज्ञभाग प्रदान किया है, इस ही कारणसे देवता लोग वर्द्धित और हम लोग क्षीण हुए हैं; इससे तुम इसे निवारण करो और जिस प्रकार यह हमारे वशमें हो, उसके निमित्त आज्ञा दो अनन्तर विश्वरूपकी माता नन्दनवनमें पहुंचके निज पुत्रसे बोली, हे पुत्र! तुम क्यों परपक्षवर्द्धक होके मातुलपक्ष विनष्ट करते हो। तुम्हें ऐसा करना उचित नहीं है, विश्वमाताका वचन अनतिक्रमणीय समझके उसका सत्कार करके हिरण्यकशिपुके निकट गये। हिरण्यगर्भसे उत्पन्न

हिरण्यकशिपु वशिष्ठकेशापग्रस्त हुआ था, वह शाप यह था, कि जिस लिये तुमने दूसरे होताको वरण किया है, उस ही कारणसे यज्ञ समाप्त न होते ही मृत्युको प्राप्त होंगे, उस ही शाप निबन्धनसे हिरण्यकशिपुका बध हुआ। अनन्तर विश्वरूपने मातृपक्ष वर्द्धित करनेके लिये घोर तपस्याकी थी, उनके नियमको भङ्ग करनेके लिये इन्द्रने बहुतेरी अप्सराओंको नियुक्त किया। उन अप्सराओंको देखकर विश्वरूपका मन क्षुभित हुआ थोड़े ही समयमें वह उनमें आसक्त हुए। अप्सराओंने उन्हें अनुरक्त जानके कहा, हम जहांसे आई हैं वहांको जायेंगी। विश्वरूप उनसे बोले, तुम लोग कहां जाओगी? मेरे सङ्ग वास करो, कल्याण होगा। अप्सराओंने कहा, हम देवपत्नी अप्सरा हैं, पहले वरदाता प्रभावशाली देवराज इन्द्रको वरण किया है। अनन्तर विश्वरूप बोले, आजसे ही इन्द्रादि देवताओंका अब कुछ प्रभाव न रहेगा,—ऐसा कहके उन्होंने मन्त्र जपा; उस मन्त्रके सहारे त्रिशिरा अत्यन्त वर्द्धित हुए। वह एक मुखसे सब लोकोंके बीच क्रियावान् ब्राह्मणोंके द्वारा यज्ञ स्थलमें यथावत् हुत सोमपान करने लगे। एक मुखसे अन्न ग्रहण किया और अन्य मुखसे इन्द्रके सहित सब देवताओंको भक्षण करनेके लिये उद्यत हुए।

अनन्तर इन्द्र उसे विशेष रूपसे वर्द्धित और सोमपानके सहारे सर्व्वशरीर आप्यायित देखकर देवताओंके सहित चिन्ता करने लगे। अन्तमें इन्द्र आदि देवताओंने ब्रह्माके निकट गमन किया; वे लोग वहां पहुंचके बोले, विश्वरूप उत्तम हुत सोमपान करता है, हम सब कोई यज्ञभागसे रहित हुए हैं, असुर लोग वर्द्धित हुए और हम क्षीण होरहे हैं; इसलिये इसके अनन्तर जिस प्रकार हमारा कल्याण हो, आपको उसका विधान करना उचित है। ब्रह्मा उन देवताओंसे बोले, भृगुवंशमें उत्पन्न हुए महर्षि दधीचि तपस्या कर रहे हैं, उनके समीप जाके वर मांगो और वह जिस प्रकार शरीर परित्याग करें, वैसा ही उपाय करो। जब वे शरीर परित्याग करेंगे, तब उनकी हड्डीसे वज्र बनाना। अनन्तर जिस स्थानमें महर्षि दधीचि तपस्या कर रहे थे, इन्द्र आदि देवता उस ही स्थानपर गये और वहां जाके उनसे बोले, हे भगवन्! आपकी तपस्यामें कुशल है न? कुछ विघ्न तो नहीं हुआ? दधीचि उन लोगोंसे बोले, आप लोग सुखसे आये हैं न? कहिये क्या करना होगा? आप लोग जो कहेंगे, मैं वही करूंगा। उन लोगोंने दधीचिसे कहा, सब लोकोंके हितके निमित्त आपको शरीर त्यागना उचित है। अनन्तर महायोगी दधीचिने पहलेकी भांति चित्त स्थिर कर सुख दुःखमें समान ज्ञान करके आत्म समाधान करते हुए शरीर परित्याग किया, जब उनका आत्मा शरीरसे पृथक् हुआ, तब धाताने उनकी हड्डियोंको संग्रह करके वज्र बनाया। देवराज इन्द्रने उस ब्राह्मणकी हड्डीके बने हुए अभेद्य अनभिभवनीय विष्णु प्रविष्ट वज्रसे विश्वरूपका बध किया। विश्वरूपके तीनों शिरोंको काटनेके अनन्तर उसके शरीरको मंथके त्वष्टाने इन्द्रके शत्रु वृत्रको उत्पन्न किया; इन्द्रने उसका भी वध किया। अनन्तर दो ब्रह्महत्या प्रकट हुई, तब उरके इन्द्रने देवराज्य परित्याग किया; देवताओंके राज्यको त्यागके इन्द्र जलसे उत्पन्न शीतल मानसरोवरवासिनी नलिनीके निकट उपस्थित हुए और ऐश्वर्य बलसे अणुमात्र होकर उस कमलिनीके मृणालकी ग्रन्थिमें प्रविष्ट हुए; अनन्तर तब त्रिलोकीनाथ इन्द्रके ब्रह्महत्याके भयसे छिपनेपर जगत् अनीश्वर हुआ। रज और तमोगुणने देवताओंको आक्रमण किया। महर्षियोंके मन्त्र निष्प्रभ हुए, राक्षसोंकी उत्पत्ति और वृद्धि होने लगी, वेद नष्ट होगये,

इन्द्रके अभावमें सब लोग निर्बल होनेसे अनाथास ही अभि भवनीय हुए। अनन्तर देवताओं और ऋषियोंने आयुके पुत्र नहुष नाम राजाको देवराज्यपर अभिषिक्त किया। नहुष सब प्राणियोंके तेजको हरनेवाले ललाटमें पांच सौ ज्योतिःयुक्त होके स्वर्ग राज्य शासन करने लगे। अनन्तर सब लोग प्रकृतिस्थ हुए, सभी स्वस्थ और हृष्ट होने लगे। उस समय नहुष बोले, शचीके अतिरिक्त इन्द्रकी उपभुक्त समस्त वस्तु मेरे निकट उपस्थित हुई है। वह ऐसा कहके शचीके निकट गये और उससे बोले, हे सुभगे! मैं देवताओंका अधिपति इन्द्र हूं, इसलिये तुम मेरी सेवा करो। शचीने उन्हें उत्तर दिया, कि तुम स्वभावसे हो धर्म वत्सल विशेष करके चन्द्रवंशमें उत्पन्न हुए हो, इसलिये पराये स्त्रीका पातिव्रत्य नष्ट करना तुम्हें उचित नहीं है। नहुषने उससे कहा, मैं इन्द्रके पद पर अधिष्ठित हुआ हूं, इन्द्रके राज्य, धन और रत्नोंपर मेरा अधिकार है, तुम इन्द्रकी उपभुक्ता हो, इसलिये तुम्हें उपभोग करनेसे मुझे कुछ अधर्म न होगा शची उस समय नहुषसे बोली, मेरा कोई अपरिस प्राप्त व्रत है, उस व्रतके समाप्त होने पर स्नान करके कई एक दिनके बीच तुम्हारे निकट गमन करूंगी। इन्द्राणीका ऐसा वचन सुनके नहुषने वहांसे गमन किया।

अनन्तर नहुषके भयसे डरी हुई दुःखी और शोकार्त्ता शचीपतिको देखनेके निमित्त व्याकुल होकर बृहस्पतिके निकट गई। बृहस्पतिने उन्हें अत्यन्त व्याकुल देख कर तथा ध्यान अवलम्बन करके भर्त्तृ कार्य्यमें तत्पर जानके बोले, तुम इस पतिव्रत और तपस्याके युक्त होकर वरदायी उपश्रुति देवीको आवाहन करो। वह तुम्हें इन्द्रको दिखा देगी। अनन्तर शची महानियमवती होकर वरदात्री उपश्रुति देवीको मन्त्रके द्वारा आह्वान करने लगी। वह उपश्रुति देवी शचीके समीप आके बोली, तुम्हारे आह्वानके अनुसार मैं आई हूं, कौनसा प्रिय कार्य्य साधन करूं? शची सिर झुकाके उसे प्रणाम करके बोली, हे भगवति! तुम मेरे पतिको मुझे दिखा दो, तुम सत्य रूपिणी और परम सत्या हो। उपश्रुति उस समय शचीको मानसरोवरमें लेगई और वहांपर मृणालकी ग्रन्थिमें सूक्ष्म भावसे स्थित इन्द्रको दिखा दिया। इन्द्र निज पत्नीको कृशित और मलिन देखकर चिन्ता करने लगे। हाय! मुझे यह कैसा दुःख उपस्थित हुआ, मेरे छिपने पर भी मेरी दुःखार्त्ता पत्नी मुझे खोजके सम्मुख उपस्थित हुई है। इन्द्र उससे बोले, कैसी हो? शचीने इन्द्रसे कहा, नहुष मुझे भार्य्या बनानेके लिये आह्वान करता है, मैंने उससे कुछ कालके निमित्त अवसर लिया है। इन्द्रने उससे कहा, तुम नहुषके निकट जाके उससे कहो, कि तुम अपूर्व्व ऋषियुक्त यानपर चढ़के मुझसे उद्वाह करो। इन्द्रके अनेक प्रकार उत्तम और महत् सब वाहन विद्यमान हैं, मैंने अपनी इच्छानुसार सब यानों पर आरोहण किया है; तुम दूसरे किसी नवीन यान पर चढ़के मेरे निकट आना। इन्द्रने जब ऐसा कहा, तब शची हर्षित होके वहांसे चली। इन्द्र भी फिर कमलकी नालमें प्रविष्ट हुए। तिसके अनन्तर इन्द्राणीको आई हुई देखके नहुषने उससे कहा, तुम्हारा वह समय पूरा हुआ है। उस समय शचीने उनसे वही वचन कहा, जो कि उससे इन्द्रने कहा था। अनन्तर नहुष महर्षियुक्त सवारी पर चढ़के शचीके निकट जाने लगे। उस समय मित्रावरुणि कुम्भयोनि ऋषिवर अगस्त्यने देखा, कि नहुषके द्वारा सब महर्षि धिकृत होरहे हैं, देखते देखते नहुषने उन्हें चरणसे स्पर्श किया।

अनन्तर अगस्त्य मुनि नहुषसे बोले, रे अकार्य्यमें प्रवृत्त पापी! तू पृथ्वी पर गिर। जब

तक भूमि और पहाड़ विद्यमान रहेंगे, तब तक तू सर्प होके निवास करेगा। नहुष महर्षिके ऐसा कहते ही उस ही समय यानसे नीचे गिरे। तीनों लोक फिर इन्द्रसे सूना हुआ अनन्तर देवता और ऋषियोंने इन्द्रके निमित्त भगवान् विष्णुकी शरणमें जाके उनसे कहा। हे भगवान्! ब्रह्महत्यासे आक्रान्त इन्द्रका परित्राण करना आपको उचित है। देवताओं और ऋषियोंका वचन सुनके वरदाता विष्णु उनसे बोले, इन्द्र विष्णुके उद्देशसे अश्वमेध यज्ञ करे, तो फिर निज पदको पावेंगे। देवता और ऋषियोंने जब इन्द्रको न देखा; तब शचीसे कहा, हे सुभगे! जाओ इन्द्रको लिवा लाओ। शची फिर उस ही तालाबके निकट गई, तब इन्द्र उस सरोवरसे निकलकर वृहस्पतिके समीपमें उपस्थित हुए। वृहस्पति इन्द्रके निमित्त अश्वमेध महायज्ञ करनमे प्रवृत्त हुए, उस यज्ञमें कृष्णसारङ्ग मेध्य अश्व उत्सर्ग करके उन्हें वाहन बनाकर वृहस्पतिने सुरपति इन्द्रको निज पद प्रदान किया। अनन्तर वह स्वर्गवासी सुरराज देवताओं तथा ऋषियोंसे स्तुतियुक्त होकर निष्पाप हुए और स्त्री, अग्नि, वनस्पति और गऊ, इन चार स्थानमें ब्रह्महत्याको विभाग कर रखा। इस ही प्रकार इन्द्रने ब्रह्मतेजके प्रभावसे वर्द्धित होकर शत्रुका बध करके निज पद पाया था। पहिले समयमें महर्षि भरद्वाज आकाशगङ्गामें गमन करके उसे स्पर्श करनेसे त्रिविक्रम विष्णुसे विह्वत हुए थे, भरद्वाजने चुल्लूमें जल लेके उसहीसे नारायणके वक्षस्थलमें आघात किया, तभीसे उनका वक्षस्थल चिन्हयुक्त होरहा है, महर्षि भृगुके अभिशापसे अग्निदेव सर्व्वभक्षी हुए हैं।

अदितिने देवताओंके निमित्त अन्नपाक किया था, वे लोग उस ही अन्नको खाके असुरोंको मारेंगे, यही उद्देश्य था। उस समय बुधने व्रत समाप्त होने पर अदितिके निकट जाके भिक्षा मांगी। 'देवता लोग पहिले इस अन्नको भोजन करेंगे, दूसरा कोई भी उसे भोजन न करने पावेगा'—इस ही निमित्त उसने बुधको भिक्षा नहीं दी। भिक्षा न पाने पर बुध स्वरूप भगवान्ने रुष्ट होकर अदितिको शाप दिया, कि तुम्हारे उदरमें पीड़ा होगी। अण्ड संज्ञित विवस्वानके द्वितीयबार जन्म लेनेके समय अण्डमाता अदितिका वही शाप स्मरण होता है, इसही निमित्त आद्यदेव विवस्वानका मार्त्तण्ड नाम हुआ था। दक्षको जो साठ कन्या थीं, उनमेसे उन्होंने कश्यपको तेरह, धर्म्मको दश, मनुको दश और चन्द्रमाको सत्ताईस कन्या दान की, वे सभी समान तथा नक्षत्र नामसे विख्यात् थीं। सबके समान होने पर भी चन्द्रमा रोहिणीसे अधिक प्रीति करते थे, उसहीसे अन्य स्त्रियोंने ईर्षावती होकर पिताके निकट जाके इस विषयको वर्णन किया, हे भगवान्! हम सबके तुल्य प्रभा होनेपर भी रजनीनाथ रोहिणीसे अधिक प्रीति करते हैं। दक्ष बोले, 'चन्द्रमाके शरीरमें यक्ष्मा रोग प्रवेश करेगा।' दक्षके उस ही शापसे यक्ष्माने द्विजराज चन्द्रमाके शरीरमें प्रवेश किया; चन्द्रमा यक्ष्मायुक्त होकर दक्षके निकट गये। दक्ष इनसे बोले, तुम सब पत्नीके सम्बन्धमे समान व्यवहार नहीं करते, उस समय ऋषियोंने चन्द्रमासे कहा, तुम यक्ष्मासे क्षीण होते हो, इसलिये पश्चिम ओर समुद्रके निकट हिरण्य सरोवर नाम तीर्थ है, वहां जाके तुम स्नान करो।

अनन्तर सुधाकर उस हिरण्य सरोवर तीर्थमें गये, वहां जाके आत्मसेचन अर्थात् स्नान करके पापसे छूटे, चन्द्रमा उस तीर्थमें अवभासित हुए थे, उस ही समयसे वह प्रभास नामसे विख्यात् हुआ है। दक्षशापसे अब तक भी चन्द्रमा अमावस्यामें अप्रकाशित रहते और केवल पूर्णमासीको पूर्ण रूपसे अधिष्ठित होते हैं। जो मेघलेखा प्रतिच्छन्न शरीर दीख पड़ती

है, वह मेघ सदृश वर्ण हुआ है, इसका निर्मल अंश शश-कलङ्क रूपसे प्रकाशित है। स्थूलशिरा महर्षिने सुमेरु पर्व्वतके पूर्व्वोत्तर दिशामें तपस्या की थी, जब वह तपस्या कर रहे थे, तब सर्व्वगन्धवाहक पवित्र वायुने बहते हुए उनका शरीर स्पर्श किया, वह तपस्यासे तापित और शरीरसे कृश हुए थे, इससे वायुसे उपवीज्यमान होकर हृदयसे परितुष्ट हुए। उस समय उनके उस अनिल-व्यजनकृत परितोषके चिन्हस्वरूप वनस्पतियोंने पुष्पशोभा प्रदर्शित की। महर्षिने उन वनस्पतियोंको यह कहके शाप दिया, कि सब समयमें तुम पुष्पवन्त न होगे। पहले समयमें नारायण सब लोकोंके हितके निमित्त बाड़वामुख नामक महर्षि हुए थे, उन्होंने सुमेरु पर्व्वतपर तपस्या करते हुए समुद्रको आह्वान किया, परन्तु समुद्र आह्वान करनेपर उनके निकट उपस्थित नहीं हुआ, तब उन्होंने क्रुद्ध होकर निज शरीरकी उष्मतासे समुद्रको स्तिमित जल किया; पसीना झरनेसे समुद्रका जल खारा होगया, उन्होंने समुद्रसे कहा तुम अपेय होगे, तुम्हारा जल बाड़वामुखके सहारे पीयमान होनेसे मधुर होगा। इसीसे आजतक समुद्रका जल उसके अनुवर्त्ती बाड़वामुखके सहारे पीयमान होता है। रुद्रदेवने हिमालय शैलकी दुहिता उमाकी कामना की, उस समय महर्षि भृगु भी हिमवानके निकट जाके बोले, यह कन्या मुझे दान करो। हिमालयने उनसे कहा, रुद्र इसके अभिलषित वर हैं। भृगुने उन्हें उत्तर दिया, कि जब तुमने मुझे कन्या देना अस्वीकार किया है, तब तुम अबसे रत्नोंके भाजन न होगे। आजसे ऋषिवचनके अनुसार तुम्हारी ऐसी ही अवस्था हुई। इसलिये ब्राह्मणोंके इस ही प्रकार बहुतसे माहात्म्य हैं। क्षत्रिय जाति भी ब्राह्मणोंकी कृपासे शाश्वती और अव्यया पृथ्वीको पत्नीभावसे भजना करती है, ब्राह्मण और सबों तेजसे जिसके अग्नि-सोमीय ब्रह्मरूपसे विख्यात होता है, उसके सहारे यह जगत् विधृत होरहा है, ऐसा कहा गया है, कि सूर्य्य और चन्द्रमा परमेश्वरके नेत्र हैं, अंशु उसके केश कहे गये हैं, चन्द्रमा और सूर्य्य जगत्को प्रबुद्ध और तापित करते हुए धारण कर रहे हैं; ये दोनों बोधन और तापन हेतुसे जगत्के हर्षण हुए हैं। हे पाण्डुनन्दन! अग्नि और चन्द्रमाके इन सब कर्म्मोंसे मैं हृषीकेश नामसे विख्यात हुआ हूं; उसका कारण यही है, कि चन्द्रमा और सूर्य्य जगत्को हर्षित करते हैं, इस ही निमित्त उन्हें हृषीकेश कहते हैं, वेही अंशु अर्थात् हमारे केश हैं, इस ही लिये मेरा हृषीकेश नाम प्रसिद्ध हुआ है। मैं सब लोकोंका नियन्ता होनेसे ईशान; वरदाता होनेसे वरद और स्रष्टा होनेसे लोकभावन नामसे अभिहित हुआ करता हूं। और इडो पहूता सहोदवा इत्यादि मन्त्रोंसे आहूत होकर यज्ञभाग हरण करता हूं, इस ही निमित्त अथवा मेरा वर्ण हरितमणिके समान है, इस ही लिये मैं हरि नामसे स्मृत हुआ करता हूं, मैं सब लोकोंका श्रेष्ठधाम और अबाधित सत्य ऋत-स्वरूप हूं, इस हीसे ब्राह्मण लोग मुझे ऋतधामा कहते हैं। पहले समयमें मैंने जलमें डूबी हुई पृथ्वीको धारण किया था, इस ही निमित्त देवता लोग गोविन्द नामसे मेरी स्तुति किया करते हैं। अवयवरहित निष्कल अर्थात् निरंशको शिपि कहते हैं, उस शिपिरूपसे मैं सब वस्तुओंमें प्रविष्ट होरहा हूं, इसीसे लोग मुझे शिपिविष्ट नामसे स्मरण करते हैं। यास्क ऋषिने अव्यग्र होकर अनेक यज्ञोंमें शिपिविष्ट नामसे मेरी स्तुति की थी; इस ही लिये मैंने शिपिविष्ट इस गुप्त नामको धारण किया है। उदार बुद्धिमत्तासे युक्त यास्क ऋषिने शिपिविष्ट नामसे मेरी स्तुति करके मेरी ही कृपासे वेदहरणके समय पातालतलमें अन्तर्हित निरुक्त

लाभ किया था। मैं सब भूतोंका क्षेत्रज्ञ हूं, मैंने कभी जन्म ग्रहण नहीं किया, न करता हूं, न करूंगा, इस ही निमित्त अज नामसे अभिहित हुआ करता हूं। पहिले मैंने कभी क्षुद्र अथवा अश्लील वचन नहीं कहा, सत्या और परम सत्या ब्रह्मकन्या सरस्वती देवी सदा मेरे मुखसे बाहर हुआ करती हैं। हे कौन्तेय! सत् और असत् दोनों ही मेरे आत्मामें आवेशित हैं। मेरे नाभिसे प्रकट हुआ कमल ही ब्रह्माका उत्पत्ति स्थान है, ऋषि लोग मुझे ही सत्य स्वरूप जानते हैं। हे धनञ्जय! पहले मैं कभी सत्वसे च्युत नहीं हुआ; जानना चाहिये कि सत्ब्रह्म तथा उसकी सत्ता मेरे सहारेसे ही विहित हुई है; मेरी पहली समयकी सत्ता इस जन्ममें भी विद्यमान है। मैं निष्काम कर्म्म संयुक्त सत्त्वत अर्थात् सत्त्वके सहारे पालन किया करता हूं; मैं अकल्मष हूं, अर्थात् मुझमें कुछ पाप नहीं है, पञ्चरात्र आदि ज्ञानसे मैं दीख पड़ता हूं; इस ही निमित्त ऋषि लोग मुझे शाश्वत कहा करते हैं। मैं महान् हल फाल-रूपी होकर पृथ्वीका कर्षण किया करता हूं, और मेरा रूप कृष्ण वर्ण है, हे अर्ज्जुन! इसीसे मेरा कृष्ण नाम है। मैंने जलके सहित भूमि वायुके सहित आकाश और अग्निके सहित वायुको संश्लेषित किया है, अर्थात् पञ्चभूतोंके कुण्ठा अर्थात् मेलन-विषयमें असामर्थ्य विनष्ट किया है, इस ही निमित्त मेरा नाम वैकुण्ठ है। परम निर्व्वाण ही ब्रह्म है, वही परम धर्म्म रूपसे वर्णित हुआ करता है; उस धर्म्मसे मैं पहले कभी च्युत नहीं हुआ, इस ही निमित्त मेरा नाम अच्युत है। पृथ्वी और आकाश ये दोनों ही विश्वतोमुख करके प्रसिद्ध हैं, उन दोनोंको परिपूर्णरीतिसे धारण करनेसे वेद-शब्दार्थ चिन्तक वेदवित् पुरुष मुझे यथार्थ रूपसे अधोक्षज अर्थात् अव्यय, स्थिति और लय स्थान कहा करते हैं। ऋषि लोग, यज्ञ-शालाके एक अंशमें अधोक्षज नामसे मेरी स्तुति करते हैं, महर्षियोंके सहारे पृथक् पदके द्वारा अधोक्षज शब्द उच्चारण किया जाता है; सर्व्व-शक्तिमान नारायणके अतिरिक्त अधोक्षज शब्दका प्रतिपाद्य दूसरा कोई भी नहीं है। जन्तुओंका प्राणाधार घृत ही मेरे अग्नि रूपकी अर्चि है, इस ही निमित्त अव्यग्र वेदज्ञ पुरुषोंके द्वारा मैं घृतार्चि नामसे वर्णित हुआ करता हूं, पित्त कफ और वायु, ये तीनों कर्म्मज धातु विख्यात हैं, इन तीनोंको ही संघात कहते हैं; तीनों धातुओंसे सब जीव विधृत होरहे हैं, धातु क्षय होनेसे जीवन नष्ट हुआ करता है, इस ही निमित्त आयुर्व्वेदके जाननेवाले पुरुष मुझे त्रिधातु कहा करते हैं।

हे भारत! लोकमें भगवान धर्म्म वृष रूपसे विख्यात हैं, निघण्टु अर्थात् नाम-संग्रह पद-व्याख्यान विषयमें मुझे उत्तम वृष जानो। कपि शब्दसे वराह और श्रेष्ठ तथा धर्म्म शब्दसे वृष कहा जाता है, इस ही लिये प्रजापति कश्यप मुझे वृषाकपि कहते हैं। देवता और असुर किसी समयमें भी मेरा आदि मध्य और अन्त कुछ भी नहीं जानते, इस ही निमित्त मैं अनादि अमध्य और अनन्त रूपसे वर्णित हुआ करता हूं; मैं लोक साक्षी सर्व्व शक्तिमान ईश्वर हूं। हे धनञ्जय! मैं शुचि और सुनने योग्य विषयोंको सुना करता हूं, पापोंको ग्रहण नहीं करता इस ही निमित्त मेरा नाम शुचि-श्रवा है। पहले समयमें मैंने आनन्दको बढ़ाने-वाले एक शृङ्ग वाराहमूर्त्ति धारण करके इस वसुन्धराका उद्धार किया था, इसीसे मैं एकशृङ्ग नामसे अभिहित होता हूं। जब मैंने उस भांतिसे वाराह रूप धरा, उस समय स्कन्ध, पोत, सूकरके मुखाग्र तथा दांत ऊंचे हुए थे, इस ही निमित्त मैं त्रिककुद नामसे विख्यात हुआ हूं, सांख्यशास्त्री महर्षि लोग जो विरञ्चि कहा करते हैं, मैं चेतन निर्बन्धन कर्त्तृत्व रूपसे

वही प्रजापति हूं, इसीसे विरञ्चि नामसे प्रसिद्ध हुआ करता हूं। निश्चित-निश्चय सांख्य मतको अवलम्बन करनेवाले आचार्य्य लोग मुझे विद्या सहाय विशिष्ट आदित्यस्थ कपिल कहा करते हैं, जो द्युतिमान हिरण्यगर्भ रूपसे वेदके बीच स्तुत होता है, और योगी लोग जिसकी सदा पूजा किया करते हैं, इस भूलोकमें मैं उस ही रूपसे स्मृत हुआ हूं। वेद जाननेवाले पुरुष मुझे ही इक्कीस सहस्र ऋग्वेद और सहस्र शाखायुक्त सामवेद कहा करते हैं। मेरे भक्त दुर्लभ विप्रवृन्द आरण्यक वेदमन्त्रोंसे मेरा यश गाते हैं। जिस यजुर्व्वेदमें एक सौ एक शाखा विद्यमान हैं, यजुर्व्वेद जाननेवाले पुरुषोंके निकट मैं उस ही यजुः स्वरूपसे स्मृत हुआ हूं। पञ्चकल्पयुक्त अथर्व्व वेद जो अभिचार आदि कार्य्योंसे परिबृंहित होरहा है, अथर्व्व वेदकी जाननेवाले ब्राह्मण लोग मुझे ही अथर्व्वरूपसे कल्पना किया करते हैं। जो समस्त शाखाभेद और शाखाओंमें जितने गीत तथा स्वर और वर्णोंके उच्चारण हैं, वह सब मुझसे ही उत्पन्न हुए जानो। हे पार्थ! हयशिरा रूपसे जो वरप्रद होके प्रकट होता है, मैं ही उस रूपसे क्रम क्रमसे अक्षर विभागका बोध किया करता हूं। मेरी ही कृपासे वामदेवके कहे हुए ध्यान मार्गके सहारे महानुभाव पाञ्चाल मुनि उस सनातन भूतसे क्रम अर्थात् दोनों पदके विभाग और अक्षर विभागको जानते हैं। बाभ्रव्यगोत्री पाञ्चाल मुनि नारायणके निकट वर पानेसे अनुत्तम याग प्राप्त करके पहिले क्रमपारग रूपसे विख्यात हुए। कण्डरीककुलमें उत्पन्न गालव और प्रतापवान राजा ब्रह्मदत्त अक्षर विभाग तथा पदविभाग प्रणयन करके शिक्षाशास्त्र बनाते हुए जन्म-मरण जनित दुःखको बारबार स्मरण करके सात जन्ममें सुखप्रद निबन्धनसे योगसम्पत्ति प्राप्त की थी।

हे कुन्तीनन्दन! पहिले समयमें मैं किसी कारणसे धर्म्मके पुत्ररूपसे प्रसिद्ध हुआ था, इस ही निमित्त ऋषि लोग मुझे धर्म्मज कहके स्मरण करते हैं, पूर्व्वकालमें गन्धमादन पर्व्वतपर धर्म्म यानमें चढ़के अविनाशी नर-नारायणने तपस्या की थी, उस ही समयमें दक्षका यज्ञ हुआ था। हे भारत! उस यज्ञमें दक्षने रुद्रदेवके भागको कल्पना नहीं की थी, उसही निमित्त महादेवने क्रुद्ध होकर दधीचिके वचन अनुसार दक्षका यज्ञ विनष्ट किया। उन्होंने क्रुद्ध होकर बार बार प्रज्वलित शूल उत्पन्न किया, वह शूल दक्षके यज्ञको भस्म करके बदरिकाश्रममें मेरे निकट उपस्थित हुआ। हे पार्थ! वह शूल महावेगके सहित नारायणके वक्षस्थलपर गिरा, नारायणके समस्त केश उस शूलके तेजसे परिपूर्ण होकर मुञ्जवर्ण हुए थे, इस ही निमित्त मैंने मुञ्जकेश नाम धारण किया है। अनन्तर वह शूल महात्मा नारायणके हुङ्कारसे पराजित और आहत होके फिर शङ्करके हाथमें चला गया। जब शूल हाथमें लौट आया, तब रुद्रदेव उन तपस्यायुक्त नर-नारायण दोनों ऋषियोंकी ओर दौड़े। रुद्रदेवके वेगपूर्व्वक उड़के निकट आनेपर विश्वात्मा नारायणने हाथसे उनका कण्ठ धारण किया। कृष्णवर्ण नारायणके करसम्बन्ध रुद्रका विनाशक कण्ठ नीलवर्ण होगया, उसही समयसे वह शितिकण्ठ नामसे विख्यात हुए, अनन्तर नरने रुद्रके निमित्त इषीका उठाया और शीघ्र ही मन्त्रयुक्त करनेसे वह अत्यन्त महान् परशु हुआ, वह परशु सहसा चलाये जानेपर खण्ड खण्ड होगया; परशु खण्डन करनेके कारण उस ही समयसे मैं खण्ड परशु नामसे प्रसिद्ध हुआ।

अर्ज्जुन बोले, हे वृष्णिवंशनन्दन जनार्द्दन! उस समयमें इस त्रैलोक्यशमनसंग्राममें किसकी जय हुई, वह मेरे निकट वर्णन करो।

भगवान् बोले, रुद्र और नारायणके युद्धमें

प्रहत्त होनेपर सहसा सब प्राणी व्याकुल हुए। यज्ञके समयमें अग्निने शुभ्र और उत्तम रीतिसे होम करी हुई हविको ग्रहण नहीं किया; आत्मज्ञ ऋषियोंके निकट वेदोंकी प्रतिभा न रही। उस समय रज और तमोगुण वेदोंमें प्रविष्ट हुआ। पृथ्वी कांपने लगी और आकाश मण्डल विभिन्न होगया तेजस्वी पदार्थोंकी प्रभा हीन हुई और ब्रह्मा आसनसे च्युत हुए, समुद्र सूख गया और हिमालय पर्व्वत टूटने लगा। हे पाण्डुपुत्र! इस ही प्रकार उन अशकुनोंके उत्पन्न होनेपर जिस स्थानमें संग्राम होरहा था, वहां महानुभाव ऋषियों और देवताओंसे घिरकर प्रजापति ब्रह्मा शीघ्र ही उपस्थित हुए। निरुक्त प्रदेशमें जाके उस समय ब्रह्मा हाथ जोड़के रुद्रसे यह वचन बोले, "सब लोगोंका मङ्गल होवे"—हे विश्वेश्वर! जगत्की हितकामनाके लिये अस्त्रोंको परित्याग करो। जिसे सब लोग अक्षय, अव्यक्त ईश्वर लोक भाजन कूटस्थ कर्त्ता निर्द्वन्द्व और अकर्त्ता जानते हैं, उसहीकी व्यक्तभाव निबन्धनसे यह शुभामूर्त्ति है; इन्होंने धर्म्मके वंशवृद्धिके लिये नर-नारायण रूपसे अवतार लिया है, येही महत् तपस्यायुक्त महाव्रती और सब देवताओंसे श्रेष्ठ हैं। मैं किसी कारणसे उस ही नारायणकी कृपासे उत्पन्न हुआ हूं। हे तात! तुम नित्य होने पर भी पहले समयमें उनके क्रोधसे प्रकट हुए थे। इससे देवताओं, महर्षियों और मेरे सहित इस वरदाता देवको शीघ्र प्रसन्न करो; विलम्ब मत करो, सब लोकोंमें शान्ति होनी चाहिये। ब्रह्माका ऐसा वचन सुनके रुद्रदेव क्रोधाग्निकी परित्याग करके सर्व्वशक्तिमान नारायणदेवकी प्रसन्न करने लगे और वरदाता आदि कर्त्ता वरणीय प्रभु नारायणके शरणापन्न हुए।

अनन्तर क्रोधविजयी जितेन्द्रिय वरदाता नारायण देव प्रसन्न होकर उस ही स्थानमें रुद्रके सहित मिले। जगदीश्वर हरि ऋषियों देवताओं और ब्रह्माके द्वारा विशेष रूपसे पूजित होकर देवेश्वर ईशानसे बोले, जो तुम्हें जानते हैं, वेही मुझे जान सकते हैं, जो तुम्हारे निकट हैं, वे मेरे भी निकटवर्त्ती हैं, मुझमें और तुममें कुछ भी प्रभेद नहीं है; इससे तुम अन्यथा बुद्धि मत करो। आजसे यह शूलचिन्ह मेरा श्रीवत्स चिन्ह होगा और तुम भी मेरे पाणिसे अङ्कित होकर आजसे श्रीकण्ठ होगे।

श्रीभगवान् बोले, नर-नारायण ऋषिने उस समय रुद्रके सङ्ग अतुल मित्रता और इस ही प्रकार परस्पर कुलक्षण उत्पन्न करके देवताओंको त्यागके अव्यग्रचित्तसे तपस्या की थी। हे पार्थ! यह तुम्हारे निकट नारायणकी जय कही गई और गोपनीय समस्त नाम तथा निरुक्त जो ऋषियोंके द्वारा वर्णित हुए थे, वह भी कहे गये। हे कुन्तीपुत्र! मैं इस ही प्रकार अनेक भांतिके रूपसे भूलोक ब्रह्मलोक और शाश्वत लोकोंमें भ्रमण किया करता हूं। युद्धस्थलमें मैंने तुम्हारी रक्षा की थी, इसीसे तुमने महत् जय प्राप्त की है। हे कौन्तेय! सम्प्रति उपस्थित युद्धमें जो तुम्हारे आगे आगे गमन करते थे, उन्हें देवोंके देव कपर्दी रुद्र जानो; वही क्रोधज काल हैं, यह मैंने तुमसे पहिले ही कहा है, तुमने जो सब शत्रुओंका वध किया है, वे सब उस कालके जरिये पहलेसे ही मरे हुए थे। तुम सावधान होकर उस अप्रमेय प्रभावयुक्त देवोंके देव उमापति विश्वेश्वर अक्षर हरको नमस्कार करो। हे धनञ्जय! पहले तुम्हारे निकट बार बार जिन्हें क्रोधज कहा है, तुमने जो कुछ सुना, यह सब प्रभाव पहलेसे ही उनमें विद्यमान है।

३४२ अध्याय समाप्त।

शौनक बोले, हे सूत नन्दन! तुमने जो उत्तम और महत् उपाख्यान कहा उसे सुनके सब

मुनि अत्यन्त विस्मययुक्त हुए हैं। हे सूतपुत्र! नारायणकी कथा जैसा फल देती है, सब आश्रमोंमें गमन सब तीर्थोंमें स्नान वैसा फलप्रद नहीं है। यह सब पापोंको नष्ट करनेवाली नारायणाश्रया पुण्यदायक आदि कथा सुननेसे हम लोगोंका शरीर पवित्र हुआ। सब लोगोंसे नमस्कृत भगवान् नारायण ब्रह्माके सहित सब देवताओं और महर्षियोंसे भी अदर्शनीय हैं। हे सूतपुत्र! नारदने जो नारायण हरिका दर्शन किया था, वह बोध होता है, उसहो देवका अनुमोदित था, उन्होंने अनिरुद्ध शरीरसे स्थित जगन्नाथका दर्शन किया था, तोभी देवसत्तम नर-नारायणका दर्शन करनेके लिये जो फिर वहांसे दौड़े, उसका कारण तुम मेरे निकट वर्णन करो।

सूत बोले, हे शौनक! परीक्षित पुत्र राजा जनमेजयने उस यज्ञकालमें विधि विहित कार्य्योंको करके पितामहके पितामह वेदनिधि निग्रहानुग्रहमें समर्थ महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यासदेवसे पूछा।

महाराज जनमेजय बोले, हे ब्रह्मन्! देवऋषि नारदने श्वेत द्वीपसे लौटने पर भगवानके वचनको स्मरण करते हुए उसके अनन्तर क्या किया था? उन्होंने बदरिकाश्रममें आके नर-नारायण ऋषिके निकट कबतक वास किया और कौनसा प्रश्न किया था? हे तपोनिधि! सौ हजार श्लोकोंसे युक्त बृहत् भारताख्यानसे बुद्धिरूपी मंथानी दण्डके सहारे अत्यन्त उत्तम ज्ञान समुद्रको मंथके यह नारायण कथाके अवलम्बसे वाक्य रूपी अमृत आपके द्वारा इस प्रकार बाहर हुआ है, जैसे: दहीसे घृत, मलयागिरिसे चन्दन; वेदोंसे आरण्यक विभाग और औषधियोंमें अमृत सार रूपसे निकाला गया है। हे द्विजसत्तम! वह भगवान् सब प्राणियोंके आत्मभूत और ईश्वर हैं। कैसा आश्चर्य है! नारायणका तेज क्या ही दुर्दर्श है। प्रलयकालमें ब्रह्मा आदि देवता, ऋषि, गन्धर्व और स्थावर जङ्गममय जो कुछ हैं, वह सब जिसमें प्रविष्ट होते हैं, बोध होता है, कि इस लोक और परलोकमें उससे परम पवित्र और कोई भी नहीं। नारायणकी कथा जिस प्रकार फल देनेवाली है, सब आश्रमोंमें जाना तथा सब तीर्थोंमें स्नान करना वैसा फलप्रद नहीं है। विश्वेश्वर नारायणकी यह सब पापोंको नाश करनेवाली आदि कथा सुनके इस समय हम लोग सब भांतिसे पवित्र हुए। मेरे पूज्य पितामह धनञ्जयने उस संग्राममें जो श्री कृष्णकी सहायतासे अत्यन्त जय प्राप्त किया था, वह कुछ विचित्र कार्य्य नहीं किया। मुझे बोध होता है, तीनों लोकके बीच उन्हें कुछ भी अप्राप्य नहीं था। त्रिलोकीनाथ नारायण जब उनके सहाय थे तब वह सब कुछ कर सकते; क्योंकि जनार्द्दन उनके हित तथा मङ्गलकी चिन्ता करते थे। लोक पूजित भगवान्का तपस्याके सहारे दर्शन किया जा सकता है; किन्तु उन्होंने उस वत्स-चिन्ह विभूषित हरिका प्रत्यक्ष दर्शन किया था; ब्रह्माके पुत्र नारद मुनि उन लोगोंसे अधिक धन्य हैं, जिन्होंने श्वेतद्वीपमें आकर स्वयं हरिका दर्शन किया है, उस अविनाशी नारद ऋषिको मैं अल्प तेजस्वी नहीं समझता। कारण उन्होंने उस समयमें जो अनिरुद्ध शरीरसे स्थित हरिका दर्शन किया था, उनके व्यक्त रूपका दर्शन होना देवताओंकी कृपाके अनुगत है।

हे मुनि! नारदने किस कारणसे बदरिकाश्रममें फिर नर-नरायणका दर्शन करनेके लिये आगमन किया था। विधातापुत्र नारदने श्वेतद्वीपसे लौटकर बदरिकाश्रममें जाके नर-नारायण ऋषिके निकट कबतक वास किया और कौन कौनसे प्रश्न पूछे थे। और महानुभाव नारद मुनिके श्वेत द्वीपसे लौटनेपर नर-नारायण ऋषिने ही उनसे क्या कहा था? यह सब

वृत्तान्त यथार्थ रूपसे मेरे समीप आपको वर्णन करने योग्य है ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जिसकी कृपासे मैं इस नारायण कथाको कहूंगा, उस अत्यन्त तेजस्वी भगवान वेदव्यास मुनिको नमस्कार करता हूं । हे महाराज ! नारद मुनि श्वेत द्वीपमें जाकर नारायणका दर्शन करके वहांसे लौटकर वेगपूर्व्वक सुमेरु पर्व्वतपर आये थे । परमात्मा हरिने उनसे जो कहा था, उस ही भारको हृदयमें धारण करते हुए अन्तमें उन्हें महाभय हुआ था । मैं दूर स्थानमें जाके कुशल पूर्व्वक फिर इस ही स्थानमें आया हूं, अर्थात् यही मेरे लिये मङ्गल है । अनन्तर वह सुमेरुसे गन्धमादन पर्व्वतपर गये, वहांसे विशाल बदरीवनको देखकर आकाश मार्गसे उड़े । अनन्तर उन्होंने प्राचीन ऋषिसत्तम नर-नारायणका दर्शन किया । देखा कि वे दोनों आत्मनिष्ठ और दृढ़व्रती होकर तपस्या कर रहे हैं । वे सब लोकोंको प्रकाशित करनेवाले सूर्य्यसे भी अधिक तेजस्वी थे, श्रीवत्स लक्षणसे युक्त पूजनीय जटाजूट मण्डित थे । उनकी दोनों भुजा हंसांकित, दोनों चरण चक्र लक्षणसे युक्त वक्षःस्थल विशाल तथा दोनों भुजा जानुतक लम्बी थी । वे मुष्क चतुष्क साठ दांतों आठ भुजाओं और बादल सदृश शब्दसे युक्त थे । उनका मुख अत्यन्त सुन्दर, ऊंचा ललाट, भौं, ठोड़ी और नासिका अत्यन्त सुन्दर था । उन दोनों देवोंका शिर आतपत्रके समान तथा श्रेष्ठ लक्षणोंसे युक्त था, वे दोनों ऋषि महापुरुष नामसे विख्यात थे । नारद मुनि उन दोनों उत्तम पुरुषोंको देखकर मनही मन चिन्ता करने लगे । श्वेत द्वीपमें सर्व्व प्राणियोंसे नमस्कृत जिन सब ऋषियोंका मैंने दर्शन किया है, ये दोनों ऋषि भी वैसे ही हैं । नारद मनही मन ऐसाही विचारके उनकी प्रदक्षिणा करके कुशासन पर बैठ गये ।

अनन्तर तपस्या, यश और तेजके आश्रय, शम दमसे युक्त नर-नारायण ऋषिने पूर्व्वाह्निक क्रिया समाप्त करनेके पश्चात् अव्यग्र चित्तसे पाद्य और अर्घसे नारद मुनिकी पूजा करी । हे राजन् ! वे आसन पर बैठकर आतिथ्य और नित्य कर्म्मको निबाहने लगे । उनके वहां बैठने पर वह स्थान मानो घृत होमके द्वारा महाज्वालायुक्त तीनों अग्नियोंसे शोभित यज्ञ वाटकी भांति दिखाई देने लगा । अनन्तर नारद मुनिके वहां पर अतिथि सत्कारसे विश्रामयुक्त होकर सुखसे बैठने पर नारायणने उनसे यह वचन कहा ।

नर-नारायण बोले, इस समय तुमने श्वेत द्वीपमें हमारी परम प्रकृतिका दर्शन किया है ?

नारद मुनि बोले, विश्वरूपधारी अविनश्वर श्रीमान् सनातन पुरुषोंका मैंने दर्शन किया है, देवताओं और ऋषियोंके सहित सब लोक उसमेंही निवास करते हैं । इस समय तुम्हारा दर्शन करके उस सनातन पुरुषको ही अवलोकन करता हूं, वह अव्यक्त स्वरूप हरि सब लक्षणोंसे आक्रान्त है, तुम भी व्यक्त रूप धारण करके उन्हीं सब लक्षणोंसे विराज रहे हो । मैंने वहांपर परम देवके बगलमें तुम्हारा दर्शन किया है, परमात्माके समीपसे विदा होकर अब इस स्थानमें आया हूं । तीनों लोकमें धर्म्मात्म तुम दोनोंके अतिरिक्त यश, तेज और श्रीके द्वारा कौन उनके समान होसकता है । क्षेत्रज्ञ संज्ञिक सब धर्म्म उन्होंने मुझसे कहे हैं, इस लोकमें जिस प्रकार उनके जो सब अवतार होंगे, उसे भी कहा है । वहां पर पञ्चेन्द्रियोंसे रहित जो सब श्वेत वर्ण पुरुष हैं, वे सभी भक्त और प्रतिबुद्ध हैं, तथा सदा उस पुरुषोत्तमकी पूजा किया करते हैं, वह भी उनके सहित निरन्तर क्रीड़ा करते हैं । भगवान भक्तोंपर अनुरक्त हैं और द्विजातियोंको प्रिय समझते हैं, वह सदा भागवत प्रिय है ; वह परमात्मा

पूजित होनेसे ही प्रसन्न हुआ करता है। विश्वभुक् सर्व्वग भक्तवत्सल देव माधव अत्यन्त बल और द्युतिशाली हैं, वही कर्त्ता, कारण और कार्य्य स्वरूप है। वही महा यशस्वी सबका कारण है, सबका ही अध्यापयिता और तत्त्व स्वरूप है। वह श्वेतद्वीपमें आत्माको तपयुक्त करके निज प्रभाके सहारे अवभासित होकर परम ज्योतिःस्वरूपसे सर्व्वत्र विख्यात होरहा है। उस विश्वविधाताने तीनों लोकके बीच शान्तिका विधान किया है। इस शुभ बुद्धिसे उसने नैष्ठिक व्रत अवलम्बन किया है। जब वह देवेश महादुष्कर तपस्या करता है, उस समय न उसे सूर्य्य तापित करता है, न चन्द्रमा उसके निकट विराजमान होता और न वायु बहता है। विश्वकर्त्ता नारायण पृथ्वी-पर आठ अंगुल ऊंची वेदी स्थापित करके उत्तर ओर मुंह करके तथा ऊर्द्ध बाहु होके एक पदसे स्थित थे। ब्रह्मा, ऋषिवृन्द, स्वयं महादेव और दूसरे समस्त श्रेष्ठ देवता दैत्य, दानव, राक्षस, सर्प, गरुड़, गन्धर्व्व, सिद्ध और राजर्षि लोग सदा विधिपूर्व्वक जो सब हव्य, कव्य प्रदान करते हैं, वह सब उस देवके दोनों चरणमें उपस्थित होता है; अव्यभिचरित बुद्धिशाली अत्यन्त भक्ति निष्ठ मनुष्य जो सब कार्य्य करते हैं, नारायण उन कार्य्योंको निज शिर पर ग्रहण किया करते हैं। ज्ञानसे प्रदीप्त महात्माओंसे भिन्न तीनों लोकके बीच दूसरा कोई भी उसे प्रिय नहीं है, इस ही निमित्त उसमें अत्यन्त भक्तियुक्त हुआ हूं। उस परमा-त्माके निकटसे विदा होकर मैं इस स्थानमें आया हूं, मैंने जो कुछ कहा, भगवान् नारा-यणने मुझसे स्वयं वह सब कहा है। मैं पर-मात्म-परायण होकर सदा तुम्हारे सहित निवास करूंगा।

३४३ अध्याय समाप्त।

श्री नर-नारायण ऋषि बोले, हे देवर्षि! तुम धन्य और अनुगृहीत हो, क्यों कि स्वयं नारायणका दर्शन किया है; दूसरेकी बात तो दूर रहे, स्वयं पद्मयोनि ब्रह्माने भी उसका दर्शन नहीं किया है। हे नारद! अव्यक्तयोनि भगवान् पुरुषोत्तम दुर्द्दर्श हैं, यह तुमने हमसे यथार्थ वचन कहा है। हे द्विजोत्तम! लोकके बीच भक्तके अतिरिक्त उसे दूसरा कोई भी प्रिय नहीं है, इस ही निमित्त स्वयं अपना दर्शन दिया है। हे विप्र-वर! परमात्मा जिस स्थानमें तपस्या करता है, हमारे अतिरिक्त दूसरे किसीको भी वह स्थान नहीं प्राप्त होता। जैसा सहस्र सूर्य्यका प्रकाश होता है, वह जिस स्थानमें विराजता है, उसको स्वयं ही वैसी शोभा हुआ करती है। हे क्षमायुक्त विप्रवर! उस विश्वविधाता विश्वे-श्वर देवसे क्षमा उत्पन्न होती है, जिस क्षमासे वसुन्धरा संयुक्त होरही है। उस सब भूतोंके हितैषी नारायणसे रस उत्पन्न हुआ है। जल उस ही रसके सहित मिलित तथा द्रवत्वको प्राप्त होता है। रूप गुणात्मक तेज उसहीसे प्रकट हुआ है, जिससे सूर्य्य संयुक्त होकर लोकके बीच विराज रहा है। उस पुरुषोत्तमसे स्पर्श उत्पन्न होता है, जिसके संयोगसे वह वायु लोकमें बह रहा है, उस सर्व्व लोकेश्वर प्रभुसे शब्द उत्पन्न हुआ है, जिसके सहित आकाश संयुक्त होरहा है, और उस ही निमित्त असंवृत्त हुआ करता है। उस देवसे ही सर्व्वभूत स्थित मन उत्पन्न होता है, जिस मनके सहित संयुक्त होकर चन्द्रमाने प्रकाश गुण धारण किया है। जिसमें हव्य कव्य भोक्ता भगवान विद्या सहाय होकर निवास करते हैं, उस प्राणियोंके उत्पादक नित्य स्थानका नाम वेद है। हे द्विजसत्तम! लोकमें जो लोग पुण्य-पापसे रहित, निष्कलुष, कल्याण पथमें गमन-शील हैं, उन सब पुरुषोंके सम्बन्धमें सब लोकोंके बीच तमनाशक आदित्य ही द्वार

स्वरूपसे अर्पित हुआ करता है। इसकालमें प्रवेश करनेके समय लोगोंके सर्व अङ्ग जलते हैं, इसीसे कोई उन्हें कभी नहीं देख सकते। वे लोग परमाणु स्वरूप होकर उस ही देवमें प्रवेश करते हैं, उससे निर्म्मुक्त होकर अनिरुद्ध शरीरमें स्थित रहते हैं।

अनन्तर मन स्वरूप होकर प्रद्युम्न शरी-रमें प्रविष्ट होते हैं, तिसके अनन्तर प्रद्युम्न शरीरसे निकलके भागवत और सांख्ययोग अवलम्बी पुरुष जीव स्वरूप सङ्कर्षणमें प्रवेश किया करते हैं। शेषमें वे तीनों गुणोंके सहित द्विजश्रेष्ठ पुरुष निर्गुणात्मक क्षेत्रज्ञ परमात्मामें शीघ्र प्रवेश करते हैं; उसे ही यथार्थ रूपके सर्व्वावास वासुदेव और क्षेत्रज्ञ जाना। जो लोग सदा स्थिरचित्तवाले संयतेन्द्रिय और एकान्त भावसे युक्त हैं, वेही वासुदेवमें प्रवेश करते हैं। हे द्विजसत्तम! हमने भी धर्म्मके गृहमें जन्म लेकर रमणीय वदरिकाश्रममें उग्र तपस्या अवलम्बन किया है। हे द्विज! देवताओंके प्रिय कार्य्य साधनके निमित्त तीनों लोकके बीच नारायणकी जो सब उत्पत्ति होगी, उनकी स्वस्ति होवे। हे द्विजोत्तम तपोधन! हमने पहिलेकी भांति निज विधिसे युक्त और सर्व्वश्रेष्ठ सर्व्वोत्तम व्रत अवलम्बन करते हुए श्वेत द्वीपमें तुम्हें अवलोकन किया है। तुमने भगवानके निकटसे समागत होकर जो सङ्कल्प किया है, उसे भी जाना है। सचराचर तीनों लोकके बीच जो कुछ शुभाशुभ होगा, हुआ और होता है, वह सब हमसे छिपा नहीं है। हे महामुनि! देवोंकेदेव नारायणने तुमसे सब विषय ही कहे हैं।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, नारद मुनि हाथ जोड़के नर-नारायणके मुखसे यह कथा सुनके नारायण परायण होकर उग्र तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुए। उन्होंने नर-नारायणके आश्रममें देव परिमाणसे सहस्र वर्ष तक वास करके अनेक प्रकारसे नारायण मन्त्रको विधि-पूर्व्वक जप किया। महातेजस्वी भगवान नार-दऋषि उस परम देव और नारायणको सब प्रकारसे पूजा करते हुए उनके आश्रममें निवास करने लगे।

३४४ अध्याय समाप्त।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, कुछ कालके अनन्तर परमेष्ठि पुत्र नारदने विधिपूर्व्वक देव-कृत्य करके उसके अनन्तर पितर कार्य्य किया। अनन्तर जेठे धर्म्मपुत्र सर्व्व ऐश्वर्य्यवान नरने उनसे यह वचन कहा कि, हे द्विजश्रेष्ठ! तुम इस कल्पित देव और पित्र्य कार्य्यसे किसको पूजा करते हो? हे मतिमत्प्रवर! तुम यह कौनसा कर्म्म कर रहे हो और इससे कैसा फल पानेकी कामना करते हो? उसे मेरे निकट शास्त्र विधिके अनुसार वर्णन करो।

नारदमुनि बोले, देव कर्म्म करना चाहिये, ऐसा तुमने पहिले कहा था, परम देव सनातन परमात्मा परम पूजनीय है, उस ही निमित्त मैं उसमें रत होके अविनाशी वासुदेवको सदा पूजा किया करता हूं। उस नारायणसे ही प्रथम लोक पितामह ब्रह्मा उत्पन्न हुए हैं, पर-मेष्ठि हरिने प्रसन्न होके मेरे पिताको उत्पन्न किया था; मैं उनका प्रथम सङ्कल्पज पुत्र हूं। हे साधो! इसीसे नारायणकी पूजा करता हूं, वह जगत्पति भगवान पिता, माता और पिता-मह है; इसलिये वह पितृ यज्ञमें सदा पूजित होते हैं। पितरोंने वेद सुनना प्रनष्ट होनेपर उन्होंने पुत्रोंसे उसे पढ़ा था अर्थात् देवताओंने अग्निष्वात्तादि पुत्रोंको वेद पढ़ाके असुरोंसे युद्ध करनेके लिये गमन किया था। उस संग्राममें बहुत दिनतक प्रवृत्त रहनेसे स्मृति धारण न हुई, इसलिये उन लोगोंने पुत्रोंके निकट फिर वेद पढ़ा। इस ही निमित्त मन्त्रदाता अग्नि-

साध्य प्रभृति पितृत्वको प्राप्त हुए हैं, देवताओंको यह मालूम है, और आप लोग भी आत्मवित् हैं, इसलिये आपसे भी यह छिपा नहीं है, कि पुत्रों और पितरोंने परस्पर पूजा की थी। उन्होंने पृथ्वीपर पहले कुश बिछाकर तीन पिण्ड स्थापित करके पूजा की थी। यहां पर यह प्रश्न उपस्थित होता है, कि पहले समयमें पितरोंकी किस प्रकार पिण्ड संज्ञा हुई।

नर-नारायण बोले, हे नारद! पहले समयमें नारायणने वाराह देह धारण करके इस नष्टप्राय सागर मेखला वसुन्धराका शीघ्र उद्धार किया था। पुरुषोत्तम गोविन्द पृथ्वीको स्वस्थानमें स्थापित करनेके निमित्त लोककार्य्य सिद्धिके हेतु उद्योगी होनेपर उनका समस्त अङ्ग जलयुक्त कीचड़से लिप्त हुआ था। सूर्य्यके मध्यस्थानमें गमन करने पर जब उनके सन्ध्या करनेका समय उपस्थित हुआ, तब उन्होंने दांतमें लगे हुए तीनों पिण्डोंको निकालके पृथ्वीतलमें कुश बिछाकर उसे उसहीके ऊपर रख दिया। उन्होंने उन तीनों पिण्डोंमें आत्माके उद्देश्य करके विधिपूर्व्वक पितृकार्य्य पूरा किया। उस सर्व्व शक्तिमान देवेशने विधिपूर्व्वक तीनों पिण्डोंको कल्पना किया और स्वयं पूर्व्व और मुख करके निज शरीरकी उष्मतासे उत्पन्न हुए स्नेहगर्भ तिलके सहारे पिण्ड प्रोक्षण करके प्रदान किया; और मर्य्यादा स्थापित करनेके लिये यह वचन बोले,।

वृषाकपि बोले, मैं स्वयं लोककर्त्ता होनेपर भी पितरोंको उत्पन्न करनेके लिये उद्यत हुआ हूं; पितृकार्य्य विधिका विचार करते करते मेरे दोनों दांतोंसे ये तीनों पिण्ड बाहर होकर दक्षिण दिशामें पृथ्वीको अवलम्बन कर रहे हैं; विष्णुके शालग्राम मूर्त्तिकी भांति ये पितृमूर्त्ति सम्पन्न हुए। पितर लोग मूर्त्तिविहीन होनेपर भी मेरे सहारे उत्पन्न हुई इस ही पिण्डमूर्त्तिको धारण करके लोकमें सनातन रूपसे विख्यात होंगे। मुझे ही इन तीनों पिण्डोंके बीच पिता पितामह और प्रपितामह रूपसे स्थित हुआ जानो। मुझसे श्रेष्ठ कोई भी नहीं है, दूसरा कौन पुरुष मेरा पूज्य है, लोकमें मेरा पिता कौन है? मैं ही पितामह और प्रपितामह हूं, मैं ही इस विषयमें कारण हूं। हे विप्र! देवताओंके प्रभु वृषाकपि ऐसा वचन कहके वराह पर्व्वतपर बहुतसे पिण्डप्रदान पूर्व्वक अपनी ही पूजा करके उस ही स्थानमें अन्तर्द्धान हुए। हे ब्रह्मन्! पिण्डसंज्ञिक पितृगण जो सदा पूजित हुआ करते हैं, वृषाकपिका वचन ही उनकी मर्य्यादाका हेतु है। जो लोग मन, वचन और कर्म्मसे पितर; देवता, गुरु, अतिथि, गऊ, ब्राह्मण, पृथ्वी और माताकी पूजा करते हैं, वे लोग विष्णुकी ही पूजा किया करते हैं। सर्व्व प्राणियोंके शरीरगामी वह भगवान सबमें ही व्याप्त है, वह सब भूतोंमें समान और सुख दुःखका ईश्वर, महान् नारायण, महात्मा और सर्व्वात्मा कहा जाता है।

३४५ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, नारद मुनि नर-नारायणके मुखसे ऐसी कथा सुनके उनमें अत्यन्त भक्तिमान होकर एकान्तित्वको प्राप्त हुए। उन्होंने नर-नारायणके आश्रममें सहस्र वर्ष पर्य्यन्त वास करके भगवानका आख्यान सुनके तथा अविनाशी नारायणका दर्शन करके जिस स्थानमें उनका अपना आश्रम था, उस ही हिमालय पर्व्वतपर गमन किया। विख्यात तपस्वी नर-नारायण दोनों ऋषि भी उस रमणीय आश्रममें उत्तम तपस्या करने लगे। हे नृपसत्तम! तुम पाण्डवकुल धुरन्धर और अत्यन्त पराक्रमी हो, आज इस आदिकथाको सुनके तुम्हारा आत्मा पवित्र हुआ। जो पुरुष

अविनाशी विष्णुसे वचन, मन और कर्म्मके द्वारा विद्वेष करता है, उसके लिये यह लोक और परलोक कुछ भी नहीं है। जो पुरुष देवताओंमें श्रेष्ठ नारायण हरिसे विद्वेष करता है; उसके पितर सदा नरकमें डूबते रहते हैं। हे पुरुषप्रवर! क्या किसीका आत्मा द्वेषी हो सकता है; विष्णुको ही सबकी आत्मा जानो, यही शास्त्रकी मर्य्यादा है। हे तात! गन्धवती पुत्र महर्षि वेदव्यास जो कि हमारे गुरु हैं, उनसे ही यह अव्यय परम माहात्म्य कहा था, हे निष्पाप! मैंने उनसे सुनके यह विषय तुम्हारे समीप वर्णन किया। हे नरनाथ! नारद मुनिने साक्षात् जगन्नाथ नारायणसे यह सरहस्य संग्रहयुक्त धर्म्म प्राप्त किया था, हे नृपवर! पहिले हरिगीताके बीच संक्षिप्त विधिके अनुसार यह महान् धर्म्म तुम्हारे निकट कहा गया था। हे पुरुषश्रेष्ठ भूमण्डलमें कृष्णद्वैपायन व्यासदेवको ही नारायण जानो. उसके अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष महाभारतका रचनाकर्त्ता हो सकता है? और उस अनन्त शक्तिमानके अतिरिक्त कौन अनेक भांतिके धर्म्म वर्णन करनेमें समर्थ होता? तुमने जैसा सङ्कल्प किया है, उस होके अनुसार तुम्हारा महायज्ञ पूरा होवे, तुमने अश्वमेध यज्ञका संकल्प करके यथार्थ धर्म्म सुना है।

सौति बोले, नृपसत्तम जनमेजयने यह महत् आख्यान सुननेके अनन्तर यज्ञसमाप्तिके लिये सब कार्य्य आरम्भ किया। नैमिषारण्य-वासी शौनक आदि ऋषियोंके पूछने पर मैंने यह नारायणका आख्यान कहा। पहिले समयमें नारदने जो कथा देवगुरुके निकट कही थी, ऋषि गण और पाण्डवोंके बीच कृष्ण और भीष्मके सुनते रहनेपर वही वर्णित हुई थी। सब प्राणी और भुवनके पति पृथु, धरणिधर श्रुति तथा नियमके आधार, शम परायण, यम-नियममें निष्ठावान वह परमर्षि द्विजवरोंके अर्च्चित तुम्हारे अवलम्ब होवें। देवताओंके हितकारी, असुरोंके वध करनेवाले, उत्तम महत् तपस्याके आधार, यशके पात्र, मधुकैटभ-हन्ता, सत्य धर्म्मज्ञ पुरुषोंके गतिदाता, अभय-दाता, यज्ञभागहर वह हरि तुम्हारी रक्षा करें। जो तीनों गुणोंसे युक्त और गुणहीन है, जिसने वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इन चारों मूर्त्तियोंको धारण किया है, जो धाता आदि पूर्त्तकर्म्म और अग्निहोत्र आदि इष्ट कर्म्मका फलभार ग्रहण करता है; वह नित्य अपराजित अत्यन्त बलशाली भगवान सुकृतशाली ऋषियोंकी आत्मगामिनी मतिका विधान करें। उस लोकसाक्षी जन्मरहित पुराण पुरुष आदि वर्ण अखिलगति ईश्वरका एकाग्र-चित्तसे प्रणाम करो, क्योंकि सलिलोद्भव अर्थात् जलकी उत्पत्तिके कारण शेषशायी नारायण भी उस वासुदेवके निकट प्रणयत हो रहे हैं। वह सब लोकोंकी उत्पत्तिका कारण, अमृतधाम, सूक्ष्म अचल परम पद है, निरुद्ध चित्तवाले सांख्ययोगी लोग उस सनातन नाराय-णको बुद्धिके बीच उदाररूपसे धारण किये हैं।

३४६ अध्याय समाप्त।

राजा जनमेजय बोले, हे ब्रह्मन्! सर्व्वैश्वर्य्ययुक्त परमात्माका महात्म और उसका धर्म्मके गृहमें नर-नारायण स्वरूपसे जन्मवृत्तान्त सुना। महावाराह सृष्टिके हेतु प्राचीन पिण्डोत्पत्ति और प्रवृत्ति तथा निवृत्ति विषयमें जिस प्रकार जैसा धर्म्म कल्पित हुआ था, आपके कहे हुए वह सब वृत्तान्त मैंने सुना। पहले जो आपने पूर्व्वोत्तर महासागरके समीप हव्य-कव्य भोक्ता हरिका उत्तम और महत् हयशिरा अवतार कहा है, भगवान परमेष्ठि ब्रह्माने उसका दर्शन किया। हे धीमान्! लोकोंको धारण करनेवाले हरिने किस निमित्त वह

महाप्रभावयुक्त अद्भुत रूप उत्पन्न किया। हे मुनि! उस अत्यन्त तेजस्वी देवप्रवर पवित्र और अद्भुत अश्वशिराको देखकर ब्रह्माने क्या किया था। हे ब्रह्मन्! हमें इस पुराणाख्यानमें सन्देह होता है, हे उमत्तबुद्धिवाले! भगवानने किस निमित्त महापुरुष रूपसे अवतार लिया, पवित्र कथा कहनेवाले पुरुषोंमेंसे आप हम लोगोंको पवित्र कर रहे हैं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, भगवान वेदव्यासने राजा जनमेजयके निकट जो कुछ कहा था, वह वेद तुल्य पुराण मैं तुम्हारे समीप वर्णन करूंगा। राजा जनमेजयने भगवान अश्वशिरा मूर्त्तिकी कथा सुनके सन्देहयुक्त होकर यह वक्ष्यमाण वचन कहा था।

राजा जनमेजय बोले, हे सत्तम! ब्रह्माने जो हयशिरा देवका दर्शन किया था, वह मूर्त्ति किस निमित्त उत्पन्न हुई थी। उसे ही आप मेरे समीप वर्णन करिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे नरनाथ! इस जगत्में जिस किसी शरीरमें सत्त्व विद्यमान है, वह सब ईश्वरके सङ्कल्प मात्रसे पञ्चभूतोंके द्वारा परिपूर्ण है। सर्व्व शक्तिमान नारायणके समीप ईश्वर ही जगत् स्रष्टा हैं, वह सब भूतोंकी अन्तरात्मा, वरदाता, सगुण और निर्गुण है। हे नृपसत्तम! सब प्राणियोंकी आत्यन्तिक प्रलयका विषय सुनो, पहिले समयमें जगत्के समुद्रमय होजाने पर पृथ्वी जलमें लीन हुई, जल अग्निमें, अग्नि वायुमें, वायु आकाशमें और आकाशके मनमें लीन होने पर मन महत्तत्त्वमें लीन हुआ और महत्तत्त्व अव्यक्तता अर्थात् महत् गुणोंकी साम्य अवस्थामें प्राप्त होनेसे अव्यक्त पुरुषमें और पुरुषके परब्रह्ममें लीन होनेपर सब तमोमय होकर विशेष विज्ञान लुप्त होगया था, इसलिये कुछ भी मालूम नहीं होता था। तमःसन्निधानके जगत्कारण परव्योमाख्य ब्रह्म प्रकट हुआ। तमसे ही अधिष्ठान मात्रमें प्रपञ्चात्मक ब्रह्मने वैराज शरीर अवलम्बन करके विष्णु नाम धारण किया है, उसे ही अनिरुद्ध कहा जाता है, और उसको ही पण्डित लोग प्रधान कहा करते हैं। हे नृपसत्तम! उस प्रधानको ही अव्यक्त और त्रिगुणात्मक जानो। विद्या अर्थात् निर्व्विशेष चिन्मात्ररूपी वृत्तिके सहायक भगवान विष्वक्सेन हरिने जगत्की विविध विचित्र रचना सृष्टिके विषयको विचारते हुए योगनिद्राके सहारे जलमें शयन किया था। उन्होंने सोचा; कि मैं सृष्टिकार्य्य अर्थात् प्रजा रूपसे अनेक होऊंगा,— ऐसा विचारते हुए आत्मगुण महान्को स्मरण किया, उस महान्से अहंकार उत्पन्न हुआ। वही चार मुखवाले हिरण्यगर्भ लोक पितामह ब्रह्मा हैं, वह उस समय अनिरुद्धसे उत्पन्न होकर सहस्र पत्रवाले कमल अर्थात् ब्रह्माण्डमें बैठ गये, वह द्युतिमान पद्मनिभेक्षण और सनातन हैं। उस आश्चर्य्य रूपवाले ब्रह्माने पहले जलमय समस्त लोकोंको देखा। अनन्तर उस सत्त्वस्थ अनादि निधन ब्रह्मा भूतगणोंको उत्पन्न करते हुए सूर्य्यकी किरण समान प्रभायुक्त पद्मके पत्र अर्थात् एक अखण्ड स्थानमें पहले नारायण-विरचित गुण प्रधान जलकी दो बूंद देखीं। उसके बीच जलकी पहली बूंद मधुकी भांति आभा और मनोहर प्रभासे युक्त थी, वह उस समय नारायणकी आज्ञानुसार तामस मधु नामसे उत्पन्न हुई, दूसरी बूंद कठोर थी इसलिये रज प्रधान कैटभ रूपसे प्रकट हुई। उस तम और रजोगुणसे युक्त बलवान हाथमें गदा लिये हुए पद्मनालके अनुसार मधु और कैटभ जल्दी ही वव और दौड़े। उन्होंने सुन्दर विग्रह और चारों वेदोंके उत्पन्न करनेवाले अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्माको कमलके बीच स्थित देखा। अनन्तर उन विग्रह-विशिष्ट दोनों असुर श्रेष्ठ पुरुषोंने वेदोंको देखते ही ब्रह्मासे छीन लिया। अनन्तर

वे दोनों दानव सनातन वेदोंको लेके अलयुक्त महा-समुद्रके मार्गसे शीघ्रही पातालमें चले गये। वेदोंके हरे जानेपर ब्रह्मा मोहयुक्त हुए, वह वेद रहित होके ईश्वरसे यह वचन कहने लगे।

ब्रह्मा बोले, वेद ही मेरे परमनेत्र हैं, वेद ही मेरा परम बल है, वेद ही मेरा परमधाम है, सब वेद ही मेरी परम तपस्या है। दोनों प्रबल दानवोंने इस स्थानसे बलपूर्व्वक मेरे वेदोंको हर लिया है, वेदके बिना सब लोक मुझे अन्धकारमय बोध होता है। बिना वेदके मैं किस प्रकार सब लोकोंकी सृष्टि करूं। हाय! वेद नष्ट होनेसे मुझे महत दुःख उप-स्थित हुआ, मैं शोकरूपी समुद्रमें डूब रहा हूं, इस समय कौन इससे मेरा उद्धार करेगा। कौन नष्ट हुए वेदोंको फिर ले आवेगा। मैं किसका प्रिय हूंगा। हे नृपसत्तम! हे बुद्धिम-त्प्रवर! ब्रह्माके इस ही प्रकार विलाप करते रहने पर नारायणके स्तोत्रके लिये उनमें बुद्धि उत्पन्न हुई। अनन्तर ब्रह्मा हाथ जोड़के परम जप्यमन्त्रको जपने लगे।

ब्रह्मा बोले, हे ब्रह्महृदय! तुम्हें नमस्कार है, तुम मुझसे पहिले उत्पन्न हुए हो; तुम सब लोकोंकी आदि भुवनश्रेष्ठ और सांख्ययोगके आश्रय हो, तुम सर्व्वशक्तिमान हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। हे अचिन्त्य! तुम व्यक्त जगत् और अव्यक्त परमाणु आदि उत्पन्न करते हो, तुम क्षेमकर पथमें निवास कर रहे हो। हे अयो-निज! तुम विश्वभुक और तुम ही सब प्राणि-योंकी अन्तरात्मा हो। हे लोकधाम! तुम स्वायम्भू हो, मैं तुम्हारी कृपासे उत्पन्न हुआ हूं। पहिले तुमसे ही मेरा द्विजोंसे सत्कृत मानस जन्म हुआ, और दूसरी बार पुरातन चाक्षुक जन्म हुआ था, तुम्हारी कृपासे तीसरी बार मेरा महत् वाचिक जन्म हुआ। हे विभु! तुमहीसे मेरा चौथा श्रवणज जन्म हुआ, तुमसे ही मेरा परम नासत्य जन्म पांचवा कहा जाता है, तुम-हीसे मेरा छठवां जन्म अण्डज कहा गया है। हे प्रभु! मेरा सर्व्व प्राणियोंकी बुद्धिवासनाका उद्बोधक यह वर्त्तमान पद्मजन्म सातवां कल्पके विख्यात हुआ है। प्रति सर्गमें ही मैं तुम्हारे त्रिगुणरहित पुत्ररूपसे उत्पन्न हुआ था। हे पुण्डरीकाक्ष! तुमने ही पहिले प्रधान गुणाक-ल्पित अर्थात् शुद्ध सत्त्वमय शरीर धारण किया है; तुमने ही ईश्वर स्वभाव और स्वायम्भूके कर्म्मबन्धनका विधान किया है। मैं वेदरूपी नेत्रसे युक्त हूं, इसलिये कालविजयी होनेपर भी तुम्हारे सहारे उत्पन्न हुआ हूं। इस समय मेरा वही नेत्रस्वरूप वेद अपहृत हुआ है, इसहीसे मैं अन्ध हुआ हूं इससे तुम जाग्रत होके मुझे नेत्र दान करो, मैं तुम्हारा प्रिय हूं और तुम भी मेरे प्रिय हो।

सर्व्वतोमुख पुरुष भगवानने उस समय इस प्रकार स्तुत होकर निद्रा परित्याग की। उस समय उन्होंने वेदकार्य्यके लिये ऐश्वर्य्य प्रयोगके द्वारा दूसरा शरीर धारण किया। तब प्रभु सुन्दर नासिकायुक्त शरीरके द्वारा चन्द्रप्रभा समान होके श्वेतवर्ण हयशिरा रूपसे वेदोंके अवलम्ब हुए। नक्षत्र और तारोंसे युक्त आकाशमण्डल उनका सिर हुआ, सूर्य्यकिरण समान प्रकाशसे युक्त उनके केश अत्यन्त लम्बे हुए। आकाश और पाताल उनके दोनों कान, प्राणियोंको धारण करनेवाली पृथ्वी ललाट, गङ्गा और सरस्वती कटि, समुद्र उनके दोनों भौं, सूर्य्यचन्द्रमा उनके दोनों नेत्र तथा सन्ध्या उनकी नासिका स्वरूप हुई। ओंकारसे उनका संस्कार हुआ और बिजली उनकी जिह्वारूप हुई। हे राजन्! सोमपान करनेवाले पितर लोग उनके दांत रूपसे कहे गये, गोलोक और ब्रह्मलोक उस महात्माका ओठ तथा अधररूपसे प्रकाशित हुआ। हे महाराज! गुणप्रधान कालरात्रि उनकी ग्रीवा हुई; वह सर्व्व शक्तिमान विश्वे-श्वर अनेक मूर्त्तियोंसे आवृत्त यह हयशिरा

मूर्त्ति धारण करके अन्तर्हित होकर उस ही समय पातालमें प्रविष्ट हुए। उन्होंने परम योग अवलम्बन करके शिक्षा सम्बन्धीय स्वरके सहारे उद्गीथस्वर उत्पन्न किया। वह सब भांतिसे कोमल प्रतिध्वनि युक्त स्वर रसातलमें प्रकट होके सब प्राणियोंको हितकर हुआ।

अनन्तर वे दोनों असुर वेदोंको समय नियम्मित करके रसातलमें फेंक दिया और जिधर वह शब्द होता था उधर ही दौड़े। हे राजन्! इतने ही समयमें हयग्रीव हरिने पातालमें जाके निखिल वेदोंको ग्रहण किया और वह समस्त वेद ब्रह्माको फिर प्रदान करके निज प्रकृतिको प्राप्त हुए पूर्व्वोत्तर समुद्रतटके समीप वेदोंके आश्रय, तथा वेदोंके उद्धार निमित्त ही भगवान अश्वशिरा हुए थे। अनन्तर दानवश्रेष्ठ मधु और कैटभ कुछ भी न देखकर वेगपूर्व्वक उस स्थानपर आये, जिस स्थानमें वेदोंको फेंका था, उस स्थलको भी सूना देखा, फिर वे दोनों बलवान असुर अत्यन्त वेगके सहित शीघ्र ही पातालसे उठे और चन्द्रमा समान विशुद्धात्मा अनिरुद्ध शरीरमें स्थित श्वेतवर्ण सर्व्वशक्तिसम्पन्न आदि पुरुषको देखा। वह अत्यन्त विक्रमशाली निष्कल्मष सत्त्वसम्पन्न मनोहर प्रभायुक्त भगवान आत्म प्रमाण रचित, जलके ऊपर कल्पित ज्वालमालासे परिपूरित नागभोगाढ्य शय्यापर फिर निद्रित हुए थे, वे दोनों दानवेन्द्र उन्हें देखकर ऊंचे स्वरसे हंसने लगे और रज तथा तमोगुणसे युक्त होकर बोले, यह वही श्वेत पुरुष निद्रित होकर सोरहा है, निःसन्देह इसी पुरुषने पातालसे वेद हरण किया है। यह पुरुष कौन है? किसका पुत्र है, किसलिये भोगशय्यापर सोरहा है। दोनों दैत्योंने ऐसा ही वचन कहके नारायणको जगाया। पुरुषोत्तमने सावधान होके उन दोनों असुरेन्द्रोंको युद्धार्थी समझा और उन्हें देखकर युद्ध करनेमें चित्त लगाया। अनन्तर उन दोनोंके सङ्ग नारायणका युद्ध हुआ। मधु और कैटभका शरीर रज और तमोगुणसे परिपूरित था। मधुसूदनने ब्रह्माका सम्मान करके उन दोनोंका वध किया। पुरुषोत्तमने शीघ्र ही उनका नाश किया और वेद लाके ब्रह्माका शोक दूर किया। अनन्तर वेदसे सत्कृत होनेपर ब्रह्माने हरिसे परिवृत्त होकर उस समय स्थावर जङ्गम समस्त भूतोंकी सृष्टि की। देवोंके देव हरि पितामहको लोक रचनाकी उत्तम बुद्धि प्रदान करके जिस स्थानसे आये थे, उस ही स्थानमें अन्तर्द्धान होगये नारायणने यहग्रीव शरीर धारण कर उन दोनों दानवोंका वध करनेके अनन्तर फिर प्रवृत्ति धर्म्मके लिये पूर्व्व विग्रह ग्रहण किया। महाभाग हरि इस ही प्रकार अश्वशिरा हुए थे, वरदाता ईश्वरका यह प्राचीन रूप प्रसिद्ध है। जो पुरुष परब्रह्मका यह माहात्म्य सुनता अथवा धारण करता है, उसका अध्ययन कदापि विनष्ट नहीं होता। पाञ्चाल मुनिने उग्र तपस्याके सहारे हयग्रीव देवकी आराधना करके देवादेशित पथसे गति प्राप्तकी थी। हे महाराज! तुमने मुझसे जो पूछा था, उस वेदतुल्य प्राचीन हयशिरा आख्यानको मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया। भगवान नारायण किसी कार्य्यके अनुष्ठान विषयमें जैसी मूर्त्ति धारण करनेकी इच्छा करें, वह स्वयं ही वैसी मूर्त्ति धारण कर सकते हैं। वेही वेदोंके अवलम्ब हैं, वेही श्रीमान् तपस्याके निधि हैं, वेही सांख्ययोग परब्रह्म और सर्व्वशक्तिमान हरि हैं। सब वेद नारायण पर, समस्त यज्ञ नारायणात्मक, सब तपस्या नारायणाश्रय, सब गति नारायण-पर; सत्य नारायणनिष्ठ, ऋत अर्थात परम सत्यनारायणात्मक, पुनरावृत्ति दुर्लभ धर्म्म नारायणपर, प्रवृत्ति लक्षण धर्म्म भी नारायणात्मक है, उत्तम गन्ध जो कि भूमिमें अनुप्रविष्ट होरही है, वेभी

नारायणात्मक हैं। हे राजन्! जलके गुण समस्त रस नारायणमय हैं, ज्योतिका परमरूप नारायण स्वरूप है, वायुका गुण स्पर्श भी नारायण स्वरूप कहा गया है, आकाशसे उत्पन्न हुआ शब्द भी नारायणात्मक है। पुरुष प्रकृत, स्वभाव, धर्म्म और दैव, ये सब जगत्के कारण हैं, अधिष्ठान कर्त्ता पृथक् रूपसे कारण है, विविध चेष्टा और दैव ये पञ्चकारण रूपसे गिने गये हैं, ईश्वर इन पांचों कारणोंमें ही अधिष्ठित होरहा है। अव्यक्तगुण लक्षणयुक्त मन उसहीसे उत्पन्न हुआ है, काल और ज्योतियुक्त प..थोंका अयन नारायण परायण है। कीर्त्ति, श्री, लक्ष्मी और देवता नारायण-परायण हैं, सांख्य और योगशास्त्र भी नारायणात्मक हैं। एकमात्र सर्व्वशक्तिमान महायोगी हरि ही ब्रह्म हैं। वह केशव सब लोकोंके सहित ब्रह्मा आदि देवताओं महानुभाव ऋषियों, सांख्य मतवाले योगियों और आत्मज्ञ यतियोंके मनोवाञ्छित विषयोंको विशेष रीतिसे जानता है; परन्तु ये सब उसके अभिप्रायको जाननेमें समर्थ नहीं हैं। सब लोकोंके बीच जो पुरुष दैव और पितर कर्म्म करता है, दान करता तथा महत् तपस्या करता है, विष्णु ही उन सबके अवलम्ब हैं। वेही ऐश्वर्य्ययुक्त और सब प्राणियोंके निवास स्थान हैं, इस ही निमित्त वासुदेव नामसे विख्यात हैं।

वह नारायण परम नित्य महर्षि महाविभूति और गुणवर्ज्जित है, तथा जैसे काल ऋतुओंके सहित संप्रयुक्त होता है, वैसे ही ईश्वर भी कार्य्यवशसे शीघ्र ही गुणोंमें संयुक्त हुआ करता है, इस लोकमें उस महात्माकी गतिको कोईभी प्राप्त नहीं होता और उसकी अगतिको भी कोई देखनेमें समर्थ नहीं होता है। जो सब ज्ञानमय महर्षि विद्यमान हैं, वे ही उस गुणाधिक नित्य पुरुषको अवलोकन करते हैं।

३४७ अध्याय समाप्त।

राजा जनमेजय बोले, कैसा आश्चर्य है! कि भगवान् नारायण सब सुमुक्षु पुरुषोंके ऊपर प्रसन्न होते और वह स्वयं विधिपूर्व्वक पूजा ग्रहण करते हैं। इस लोकमें जिन लोगोंकी वासना विनष्ट हुई है और जो लोग पुण्य-पापसे रहित हैं, उनकी परम्परा प्राप्त गति अर्थात् ज्ञानके विषयको आपने वर्णन किया है। वे लोग चौथी गति अर्थात् अनिरुद्ध, प्रद्युम्न और सङ्कर्षणको उपेक्षा करके वासुदेव पुरुषोत्तमको पाते हैं। ऐकान्तिक पुरुष अर्थात् निष्काम भक्त लोग परम पद लाभ करते हैं। मुझे यह निश्चय बोध होता है, कि यह एकान्त धर्म्म ही श्रेष्ठ तथा नारायणको प्रिय है। क्योंकि ऐकान्तिक पुरुष तीनों गति अनिरुद्ध प्रभृतिकी उपासना करके ही अ... हरिको पाते हैं। जो सब विप्र यत्नवान होकर विधिपूर्व्वक उपनिषदोंके सहित वेद पाठ करते हैं और जो लोग यतिधर्म्मसे युक्त हैं, उनसे ऐकान्तिक पुरुषोंकी गति उत्तम मालूम होती है। कौन देवता तथा किस ऋषिके द्वारा यह धर्म्म वर्णित हुआ है। ऐकान्तिक पुरुषोंके कैसे आचरण हैं और किस समयमें वे उत्पन्न हुए थे। हे विभु! मेरा यह सन्देह दूर करो; इस विषयमें मुझे बहुत ही कौतूहल उत्पन्न हुआ है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन्! संग्रामभूमिमें कुरु पाण्डवोंकी सेना उपस्थित होने पर जब अर्ज्जुन अन्यमनष्क हुए थे, उस समय स्वयं भगवानने जो कहा था वह अगति और गतिका विषय पहिले मैं तुम्हारे समीप कह चुका हूं; यह धर्म्म अत्यन्त सूक्ष्म है और अविशुद्ध मनुष्योंके लिये अत्यन्त दुर्व्विज्ञेय है। पहिले समय आदि युगमें यह धर्म्म सामवेदके सहित समभावसे निर्म्मित हुआ और स्वयं ईश्वर नारायणने इसे धारण किया है। हे महाराज! इस धर्म्मके निमित्त पार्थने ऋषियोंके बीच कृष्ण और भीष्मके सुनते रहनेपर महा-

भाग नारद मुनिसे पूछा था। हे नृपसत्तम! मेरे गुरुने भी इस विषयको वर्णन किया था; उस समय नारद मुनिने उन लोगोंसे जिस प्रकार कहा था, उसे सुनो।

हे पृथ्वीपाल भारत! जिस समय नारायणके मुखसे ब्रह्माका मानस जन्म हुआ था, उस समय स्वयं नारायणने उक्त धर्मके सहारे दैव और पितरकर्म्म किया था; फेनप ऋषियोंने वही धर्म्म ग्रहण किया। फेनप ऋषियोंसे वैखानस मुनियोंने उस धर्म्मको पाया। वैखानस मुनियोंके निकटसे उस धर्म्मको चन्द्रमाने पाया, अन्तमें वह धर्म्म अन्तर्हित होगया। हे राजन्! जब ब्रह्माका दूसरा चाक्षुष जन्म हुआ, तब उन्होंने चन्द्रमाके निकट वह धर्म्म सुना था। हे महाराज! नारायणस्वरूप ब्रह्माने वह धर्म्म रुद्रको दिया था; अनन्तर जब सतयुगमें रुद्रने योग अवलम्बन किया था, उस समय उन्होंने बालखिल्य ऋषियोंको वह धर्म्म प्रदान किया, अनन्तर रुद्रदेवकी मायासे वह धर्म्म फिर अन्तर्हित हुआ। हे राजन्! जब ब्रह्माका महत वाचिक नामक तीसरा जन्म हुआ था, उस समय यह धर्म्म स्वयं नारायणसे फिर प्रकट हुआ सुपर्णनाम ऋषिने पुरुषोत्तमके निकटसे उक्त धर्म्म प्राप्त किया था। उन्होंने उत्तम रीतिसे अनुष्ठित तपस्या, दम और नियमके द्वारा प्रतिदिन तीनवार इस उत्तम धर्म्मको आवृत्ति की थी, इस ही निमित्त यह त्रिसौपर्णव्रत रूपसे कहा जाता है। यह दुष्करव्रत ऋग्वेदके बीच पठित हुआ है। हे राजन्! जगत्प्राणवायुने इस सनातन धर्म्मको सुपर्णसे पाया था। ऐसा कहा जाता है। कि वायुसे विघसाशी ऋषियोंने उसे पाया, ऋषियोंसे यह उत्तम धर्म्म समुद्रको मिला; अनन्तर नारायणमें समाहित होकर यह धर्म्म फिर अन्तर्हित हुआ। हे पुरुषश्रेष्ठ! जब महात्मा ब्रह्माकी श्रवणज अर्थात् अनाहत ध्वनिरूपी उत्पत्ति हुई थी, उस समयमें जैसी घटना हुई उसे कहता हूं, सुनो।

देवोंकेदेव नारायण हरिने स्वयं जगत् उत्पन्न करनेकी इच्छा करके किसी पुरुषकी चिन्ता की। अनन्तर चिन्ता करते रहने पर उनके दोनों कानोंसे प्रजाकी सृष्टि करनेवाला पुरुष ब्रह्मा उत्पन्न हुआ। उस समय जगत्पति नारायणने उससे कहा, हे पुत्र! तुम मुख और पदसे समस्त प्रजा उत्पन्न करो। हे सुव्रत! मैं तुम्हारे बल, तेज और कल्याणका विधान करूंगा। तुम मुझसे सात्वत नामक धर्म्म ग्रहण करो और उस ही सात्वत धर्म्मसे उत्पन्न हुए सत्ययुगको विधिपूर्व्वक स्थापित करो। अनन्तर ब्रह्माने उस देवेश्वर हरिको नमस्कार करके उनसे रहस्य और संग्रहके सहित श्रेष्ठ धर्म्म ग्रहण किया। फिर उन्होंने अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्माको आरण्यक उपनिषत्के सहित नारायण मुखसे उत्पन्न हुए धर्म्मका उपदेश करके तुम युग धर्म्मोंके कर्त्ता होगे, ऐसा कहकर निष्काम कर्म्म नामक तमोगुणसे अतीत अव्यक्त रूपसे जिस स्थानमें पहले स्थित थे, उस ही स्थान पर चले गये अनन्तर लोक पितामह वरदाता ब्रह्माने समस्त लोकोंको उत्पन्न किया, उस समय पहले शुभ सत्ययुग प्रवृत्त हुआ, उस युगमें सात्वत धर्म्म सब लोकोंमें व्याप्त होके स्थित रहा, जगत्स्रष्टा ब्रह्माने उस आद्य धर्म्मसे सर्व्वशक्तिमान देवेश्वर हरिकी पूजा की। अनन्तर सब लोकोंको हितकामनासे धर्म्मकी प्रतिष्ठाके लिये उस समय ब्रह्माने वह धर्म्म स्वारोचिष मनुको पढ़ाया। हे राजन्! सर्व्वलोकपति स्वारोचिष मनुने अव्यग्र भावसे निज पुत्र शङ्खपदको उक्त धर्म्मका उपदेश दिया। हे भारत! शङ्खपदने भी अपने औरस पुत्र दिक्पाल सुवर्णाभको पढ़ाया। अनन्तर त्रेतायुग उपस्थित होनेपर फिर वह धर्म्म अन्तर्हित हुआ। हे महाराज! अनन्तर प्रजापतिके नासत्य जन्मके समय ए हं

हरि अरविन्दलोचन देव नारायणने ब्रह्माके सम्मुख उक्त सात्वत धर्मको वर्णन किया था। हे राजन्! उनसे सनत्कुमारने प्रथम इसे अध्ययन किया। हे कुरुपुङ्गव! सत्ययुगके प्रारम्भमें प्रजापति वीरणने सनत्कुमारके निकट इस सात्वत धर्मको पढ़ा था। वीरणने इसे पढ़के रैभ्य मुनिको अध्ययन कराया; रैभ्यने पवित्र उत्तम व्रत करनेवाले मेधावी दिक्‌पाल धार्म्मिक कुक्षि नामक निज पुत्रको उक्त धर्म्म प्रदान किया था। अनन्तर नारायणके मुखसे उत्पन्न हुआ यह धर्म्म फिर अन्तर्हित हुआ। ब्रह्माके अण्डज जन्ममें नारायणके मुखसे प्रकट होके फिर यह धर्म्म हरियानि प्रजापतिके अन्तःकरणमें उत्पन्न हुआ। ब्रह्माने विधिपूर्व्वक प्रयुक्त उस धर्म्मको ग्रहण किया। हे राजन्! अनन्तर उन्होंने उसे वर्हिषद नामक मुनियोंको पढ़ाया। वर्हिषद मुनियोंसे सामवेदके पारदर्शी ज्येष्ठ नामक प्रसिद्ध विप्रने इसे पाया था, इस ही लिये इसका नाम ज्येष्ठ सामव्रत हुआ है। ज्येष्ठसे अविकम्पन राजाके निकट यह धर्म्म संक्रान्त हुआ था। हे राजन्! अनन्तर फिर यह भगवान् हरिका धर्म्म अन्तर्द्धान हुआ। हे महाराज! ब्रह्माका यह कमलसे सातवां जन्म हुआ है। इस बार युगके प्रारम्भमें हरिने लोक विधाता शुद्धसत्त्व प्रजापतिके निकट इस धर्म्मका वर्णन किया था। अनन्तर पितामहने पहले समयमें दक्षको यह धर्म्म उपदेश किया था। हे भारत! दक्षने अपने ज्येष्ठ दौहित्र सविताके अग्रज आदित्यको इसे प्रदान किया। उनसे विवस्वानने इस धर्म्मको ग्रहण किया। अनन्तर त्रेतायुगके आरम्भमें विवस्वानने निज पुत्र वैवस्वत मनुको यह धर्म्म प्रदान किया, मनुने सब लोकोंके पालन करनेके निमित्त अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकुको यह धर्म्म अध्ययन कराया। हे महाराज! इक्ष्वाकुके द्वारा प्रचारित होकर यह धर्म्म सब लोकोंमें व्याप्त होकर स्थित है। कल्पान्तके समय फिर यह नारायणमें लीन होगा।

हे नृपोत्तम! यतियोंका जैसा धर्म्म है, वह पहले गीताके बीच संक्षिप्तविधिके अनुसार मैंने तुम्हारे समीप कहा है। हे राजन्! नारद मुनिने रहस्य और संग्रहके सहित इस धर्म्मको साक्षात् नारायणके समीप प्राप्त किया था। हे राजन्! इस ही प्रकार यह महान् धर्म्म आद्य नित्य है, यह भक्ति रहित मनुष्योंसे दुर्व्विज्ञेय और दुष्कर है; सात्त्वत मतावलम्बी मनुष्य इसे सदा धारण किया करते हैं। यह धर्म्म ज्ञानपूर्व्वक उत्तम रीतिसे प्रयुक्त कर्म्म तथा अहिंसा धर्म्मयुक्त इसका ज्ञान होनेसे जगदीश्वर हरि प्रसन्न होते हैं। वह कभी एकव्यूह, कभी दो व्यूह, कदापि तीन व्यूह और कभी चतुर्व्यूहसे विभक्त होकर दीख पड़ते हैं। हरि ही क्षेत्रज्ञ, निर्म्मम, निष्कल और पञ्चभूतोंके गुणोंको अतिक्रम करके सब प्राणियोंमें निवास करता है। हे महाराज! नारायण ही कान आदि पांचो इन्द्रियोंके परिचालक, मन अथवा अहङ्कार रूपसे प्रसिद्ध है। वह बुद्धिमान हरि ही सब लोकोंका सृष्टि कर्त्ता है, वही सब लोकोंका प्रवर्त्तक और अन्तर्य्यामी है। वही कर्त्ता है, वही कार्य्य तथा वही कारण है। हे महाराज! वह अविनाशी पुरुष जिस प्रकार इच्छा करे, उस ही भांति क्रीड़ा किया करता है। हे नृपसत्तम! यह मैंने गुरुकी कृपासे तुम्हारे समीपमें अपवित्र बुद्धिवाले पुरुषोंसे दुर्व्विज्ञेय निष्काम भक्तोंके धर्म्मका वर्णन किया। हे महाराज! निष्काम भक्त अत्यन्त दुर्लभ हैं। हे कुरुनन्दन! यदि वैसे अहिंसक आत्मज्ञ सब प्राणियोंके हितमें रत, निष्काम भक्तोंके द्वारा जगत् परिपूरित होता, तो सदा ही सत्ययुग वर्त्तमान रहता और समस्त काम्यकर्म्म नष्ट होजाते। हे नरनाथ! मेरे गुरु द्विजश्रेष्ठ धर्म्मज्ञ भगवान् व्यासदेवने

ऋषियोंके निकट कृष्ण और भीष्मके सुनते रह-नेपर धर्मराजसे इस ही प्रकार धर्म विषय वर्णन किया था, इसके पहले महा तपस्वी नारदने यह धर्म विषय कहा था। नारायण-परायण भक्त लोग जिस स्थानमें गमन किया करते हैं, वह श्वेतवर्ण चन्द्रमा तुल्य प्रकाश-मान अच्युत देव ही परब्रह्म है।

महाराज जनमेजय बोले, हे ब्रह्मन्! ज्ञानि-योंके द्वारा इस ही प्रकार अनेक भांतिसे धर्म निर्णीत हुए थे, परन्तु अन्य ब्राह्मणोंने अनेक प्रकारके नियमोंसे स्थित होके किस कारणसे इस धर्मका आचरण नहीं किया।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे भरतवंश अव-तंस महाराज! जीवोंके बीच सात्विकी, राजसी और तामसी भेदसे तीन भांतिकी प्रकृति निर्म्मित हुई है। हे कुरुवंशधर पुरुष-प्रवर! देहयुक्त जीवोंके बीच सात्त्विक पुरुष श्रेष्ठ हैं, और वे ही मोक्षके हेतु निश्चय किये गये हैं। सात्त्विक, राजसिक और तामसिक पुरुषोंके बीच सात्त्विक मनुष्य ही ब्रह्म-वित्तम पुरुषको जान सकते हैं। मोक्ष नारायणनिष्ठ है, इसही लिये मुमुक्षु पुरुष सात्त्विक कहके प्रसिद्ध हैं। अत्यन्त भक्तियुक्त नारायण परायण पुरुष सदा पुरुषोत्तमका ध्यान करते हुए मनोवांछित विषय प्राप्त करते हैं; जो सब मोक्ष धर्म अव-लम्बी मनीषि पुरुष यतिव्रत अवलम्बन करते हैं, हरि ही उन तृष्णा रहित पुरुषोंके योग-क्षेम विधान किया करते हैं। मधुसूदन कृपा पूर्व्वक जिसे जन्म मरण आदिक दुःखोंका पात्र अवलोकन करते हैं, वही मोक्ष विषयमें निश्चित तत्पर रहता है, और उसे ही सात्त्विक पुरुष जानना चाहिये। ऐकान्तिक भक्तोंसे सेवित धर्म सांख्ययोगके सहित समान है, इस ही लिये नारायणात्मक मोक्ष विषयमें सात्त्विक मनुष्य परम गति पाते हैं। जिस पुरुषके ऊपर नारायणकी कृपा दृष्टि होती है, वही प्रतिबुद्ध अर्थात् तत्त्व-ज्ञानसे युक्त हुआ करता है। हे महाराज! अपनी इच्छासे कोई तत्त्वज्ञानी नहीं होसकता, हे राजन्! राजसी और तामसी ये दोनों मिलीजुली अर्थात् दोषयुक्त प्रकृति कहके वर्णित हुई हैं। उस स्वरूपसे उत्पन्न हुए प्रकृति लक्षणयुक्त पुरुषको और स्वयं नारायण अवलो-कन नहीं करते। रज और तमोगुणसे जिसका मानस परिप्लुत होता है, उन उत्पन्न होनेवाले मनुष्योंको लोकपितामह ब्रह्मा प्रवृत्तिमार्गमें नियुक्त करते हैं। हे नृपोत्तम! देवता और ऋषि लोग सब भांतिसे सत्त्वस्थ हैं। जो लोग सूक्ष्म तत्त्वोंसे हीन हैं, उन्हें वैकारिक कहा जाता है।

महाराज जनमेजय बोले, हे ब्रह्मन्! वैका-रिक पुरुष किस प्रकारसे पुरुषोत्तमको पाते हैं, आपने जैसा देखा हो और उन लोगोंकी जिस प्रकारकी प्रवृत्ति होवे, उसे ही विधिपू-र्व्वक वर्णन करिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले हे महाराज! वैकारिक अहङ्कार अर्थात् पञ्चविंशति जीव अत्यन्त सूक्ष्म है, अर्थात् इन्द्रियोंके द्वारा नहीं जाना जाता, वह अनारोपित रूपयुक्त अधिष्ठान मात्र, अकार उकार और मकार, इन तीनों अक्षरोंसे संयुक्त तथा निष्क्रिय पुरुषको प्राप्त होता है। समस्त सांख्य, आत्मानात्म विवेक, चित्तवृत्ति निरोधरूप योग, जीव ब्रह्मके अभेद-पर तत्त्वमसि आदि वाक्यजनित आरण्यक वेद और भक्तिमार्गरूप पञ्चरात्र, ये सब एक होने-पर भी परस्परमें एक दूसरेके अङ्गस्वरूप हैं; इसलिये यही नारायणनिष्ठ ऐकान्तिक अर्थात् निष्काम भक्तोंका धर्म कहा जाता है। हे महा-राज! जैसे समुद्रसे उठके जल बरसता है और फिर समुद्रमें ही प्रवेश करता है, उसही प्रकार यह सब ज्ञानस्वरूप महासागर नारायणमें फिर प्रविष्ट हुआ करता है। हे कुरुनन्दन! यह मैंने तुम्हारे समीप सात्वत धर्मोंका वर्णन

किया है। हे भारत! यदि तुम समर्थ हो, तो विधिपूर्व्वक इस ही प्रकार धर्म्माचरण करो। महाभाग नारदने मेरे गुरुके निकट इस ही भांति गृहवासी काषाय वस्त्रधारी यतियोंकी ऐकान्तिकी गतिका विषय वर्णन किया था। व्यासदेवने प्रसन्न होकर बुद्धिमान् धर्म्मपुत्र राजा युधिष्ठिरके समीप इसे कहा था, उस ही गुरुदेवके द्वारा प्रचारित इस धर्म्मको मैंने तुम्हारे निकट वर्णन किया है। हे पार्थिव सत्तम! यह धर्म्म अत्यन्त दुष्कर है, तुम इसे सुनके जिस प्रकार मोहित हुए हो, दूसरे पुरुष भी इसे सुननेसे उस ही भांति मोहित हुआ करते हैं। हे महाराज! कृष्ण ही सब लोकोंका पालन करते और वही सबको मोहित किया करते हैं, वही सबके संहार करनेवाले और कारण स्वरूप हैं।

३४८ अध्याय समाप्त।

महाराज जनमेजय बोले, हे ब्रह्मर्षि! सांख्ययोग, पञ्चरात्र और वेदके आरण्यक भाग ये सब ज्ञानकाण्ड लोकमें प्रचारित हैं। हे मुनि! ये सब ज्ञानकाण्ड एकनिष्ठ हैं, अथवा पृथक्निष्ठ हैं? मैं इसे ही पूछता हूं, आप विधिपूर्व्वक इस ही वृत्तान्तका वर्णन करिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, सत्यवतीने द्वीपके बीच आत्मयोग निबन्धनसे पराशरके द्वारा अत्यन्त उदार जिस परम उत्कृष्ट ब्रह्म पुत्रको प्रसव किया था, उस अज्ञानरूपी अन्धकारको नाश करनेवाले परम ऋषिको नमस्कार करता हूं। पण्डित लोग जिसे पितामहके आदिभूत नारायणके अंश और हिरण्यगर्भके ऐश्वर्य्ययुक्त वेदोंके महानिनाद महर्षि द्वैपायन कहा करते हैं, उसे नारायणसे गिनती करके छठवां अवतार जानना चाहिये। पहिले समयमें महा ऐश्वर्य्यमाली उदारस्वभाव तेजस्वी नारायणने वेदोंके महानिनाद पुराण जन्म रहित उस महानुभाव व्यासदेवको पुत्ररूपसे उत्पन्न किया।

महाराज जनमेजय बोले, हे द्विज-सत्तम पहिले आपने ही व्यासदेवकी उत्पत्तिका विषय कहा था, कि वसिष्ठके पुत्र शक्ति, शक्तिके पुत्र पराशर और पराशरके पुत्र कृष्ण द्वैपायन मुनि हैं। अब आप फिर उन्हें नारायणका पुत्र कहते हैं, इसलिये अत्यन्त तेजस्वी व्यासदेवका क्या यह पहला जन्म है? हे महा बुद्धिमान्! व्यासदेवकी जिस प्रकार नारायणसे उत्पत्ति हुई थी, उसे आप मेरे समीप वर्णन करिये।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! समस्त वेदार्थ जाननेकी इच्छासे जब धर्मिष्ठ तपस्या करनेमें निष्ठावान तपोनिधि मेरे गुरुने हिम गिरिपर्व्वतके शिखरपर निवास किया था, उस समय उस धीमान ऋषिके भारताख्यान बनाके तपसे श्रान्त होने पर हम लोगोंने उनकी सेवा की थी। सुमन्त, जैमिनी, दृढ़व्रती पैल और मैं, हम चारों उनके शिष्य हैं, और व्यासदेवके पुत्र शुकदेव पांचवें थे, इन्हीं पांचों प्रधान शिष्योंसे व्यासदेव सदा घिरे रहकर हिमालय पहाड़पर भूतोंसे घिरे हुए भूतपति महादेवकी भांति विराजते थे। हम लोगोंने अङ्गोंके सहित सब वेदोंकी आवृत्ति करते और भारतके अर्थको सब प्रकारसे विचारते हुए उस एक चित्तदान्त गुरुकी स्थिर होकर सेवा करते थे। अनन्तर किसी कथा प्रसङ्गसे हम लोगोंने उस द्विजवरको वेदार्थ भारतका अर्थ और नारायणसे उनकी उत्पन्न होनेका वृत्तान्त पूछा, तत्त्ववित् व्यासदेवने पहिले वेदार्थ और भारतका अर्थ कहके नारायणसे अपनी उत्पत्तिका पूर्ण वृत्तान्त कहने लगे।

व्यासदेव बोले, हे विप्रगण! पहिले समयमें प्रकट हुआ यह ऋषि प्रणीत उत्तम आख्यान जो कि मुझे तपस्याके सहारे मालूम हुआ है, वही कहता हूं सुनो। प्रजापति ब्रह्माका जन्म-

जिसे यह सातवां जन्म हुआ है, उस समय प्रजा उत्पन्न करनेके लिये शुभाशुभ कर्म्मोंसे रहित अत्यन्त तेजस्वी महायोगी नारायणके नाभि कमलसे पहले ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई। ब्रह्माके उत्पन्न होनेपर नारायण उनसे बोले, हे ब्रह्मन्! तुम प्रजा उत्पन्न करनेकी शक्तिसे संयुक्त होकर मेरे नाभि कमलसे उत्पन्न हुए हो; इसलिये जड़ और चैतन्य विविध प्रजाकी सृष्टि करो। ब्रह्माने नारायणका ऐसा वचन सुनके विमुख हुआ तथा चिन्तासे व्याकुल होकर वरदाता ईश्वर तेजस्वी हरिको प्रणाम करके बोले, हे देवेश! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं, प्रजाको उत्पन्न करनेमें मेरी क्या सामर्थ है। हे देव! मैं बुद्धिमान नहीं हूं, इसलिये इसके अनन्तर जैसा करना हो, तुम उसका विधान करो। अनन्तर बुद्धिमत्प्रवर देवेश्वर भगवान प्रजापति ब्रह्माका ऐसा वचन सुनके उस ही स्थानमें अन्तर्धान होकर विचार करने लगे। भगवानके चिन्ता करते रहनेपर मूर्त्तिमयी बुद्धि सर्व्व ऐश्वर्य्यशाली नारायणके निकट प्रकट हुई। उस समय अविनाशी नारायणने उस ऐश्वर्य्य योग अवलम्बन करनेवाली गतिशालिनी सती बुद्धिसे यह वचन बोले, कि तुम लोक सृष्टि सिद्ध करनेके लिये प्रजापति ब्रह्माके अन्तः-करणमें प्रवेश करो! अनन्तर ईश्वरकी आज्ञासे बुद्धि शीघ्र ही ब्रह्माके अन्तःकरणमें प्रविष्ट हुई, जब नारायणने ब्रह्माको बुद्धियुक्त देखा, तब फिर प्रकट होके उनसे कहा, हे ब्रह्मन्! इन सब विविध प्रजासमूहको उत्पन्न करो। उस समय ब्रह्माने उनकी आज्ञाको माथेपर चढ़ाया; भगवान ऐसी ही आज्ञा देकर उस ही स्थानमें अन्तर्धान होगये और मुहूर्त्तकालके बीच देव नामक निज स्थानमें गमन किया। वहां पूर्व्व-प्रकृतिको प्राप्त होकर एक भावसे निवास करने लगे; उस समय उनसे अन्य प्रकारकी बुद्धि उत्पन्न हुई। ईश्वर परमेष्ठी प्रजापतिके द्वारा ये सब प्रजा उत्पन्न हुईं। यह तपस्विनी बसु-मती दैत्य, दानव, गन्धर्व्व और राक्षसोंसे परि-पूरित होनेसे उनके बोझसे आक्रान्त हुई। पृथ्वीमण्डलपर बहुतेरे दैत्य, दानव और राक्षस लोग बलवान होंगे और वे लोग तपस्या करके उत्तम वर पावेंगे, वे सब वरके अभिमानसे मत्त होकर अवश्य ही देवताओं और तपोधन ऋषियोंके कार्य्यमें बाधा करेंगे, उस समय पृथ्वीका भार उतारना मेरा न्याय्यकार्य्य होगा। अनन्तर पृथ्वीपर विधिपूर्व्वक अनेक प्रकारके अवतारोंके सहारे पापाचारियोंके निग्रह और साधुओंको पालन करनेसे दुःखिनी पृथ्वी आन-न्दित होगी। मैं पातालमें नागरूपसे इस पृथ्वीको धारण कर रहा हूं, मैंने इसे धारण किया है, इसहीसे यह स्थावर जङ्गमात्मक निखिल जगतको धारण करती है। इसलिये मैं अवतार लेके इसका परित्राण करूंगा। भग-वान मधुसूदनने इस ही प्रकार चिन्ता करके उत्पत्तिविषयमें अनेक प्रकारका रूप धारण किया। वाराह, नरसिंह, वामन और मनुष्य, इन सब मूर्तियोंके सहारे मैं दुर्व्विनीत दान-वोंको मारूंगा।

अनन्तर जगत्स्रष्टा हरिने 'भो' शब्दके सहारे अनुनाद करते हुए वाक्य उच्चारण किया, उस वाक्यसे उत्पन्न होनेके कारण सार-स्वत और अपान्तरतमा नामसे भूतभव्य भवि-ष्यज्ञ सत्यवादी, दृढ़व्रती, वाक्यसम्भव सुत उत्पन्न हुआ। देवोंके देव अविनाशी हरि उस नतिवद-नवाले पुत्रको सम्बोधन करके बोले, हे मतिमं-त्प्रवर! तुम वेदाख्यान सुनाओ। हे मुनि! मैंने जैसी आज्ञा दी है, उसहीके अनुसार तुम मेरे वचनको प्रतिपालन करो। उसने भगवा-नकी आज्ञानुसार स्वायम्भुव मन्वन्तरमें वेदोंका विभाग किया भगवान हरि उसके वैदिक कर्म्म और उत्तम रीतिसे अनुष्ठान की हुई तपस्या तथा यम नियमसे अत्यन्त सन्तुष्ट हुए

और उससे बोले, हे पुत्र ! हे ब्रह्मन् ! तुम सब मन्वन्तरमें इस ही प्रकार अचल और अप्रधृष्य होकर सदा ऐसे ही वेदोंके प्रवर्त्तक होगे। फिर कलियुगके प्रारम्भमें भरतवंशमें कौरवनामक महानुभाव राजा भूमण्डलमें प्रसिद्ध होंगे।

हे द्विजसत्तम! तुमसे उत्पन्न हुए उन कौरवोंका परस्पर नाश होनेके समय तुम्हारे अतिरिक्त सबका ही वंश नष्ट होगा। उस समय तुम तपस्या युक्त होकर वेदोंको अनेक प्रकारसे विभिन्न करोगे। कलियुगमें तुम कृष्णवर्ण होगे, तुम विविध धर्म्मोंके कर्त्ता और ज्ञान प्रवर्त्तक होगे और तपसे युक्त होनेपर भी रागरहित न होगे। महादेवकी कृपासे रागरहित परमात्मा तुम्हारे पुत्र होंगे, मेरा यह वचन मिथ्या न होगा। ब्राह्मण लोग जिसे पितामहका मानसपुत्र वसिष्ठ कहते हैं, जो उत्तम बुद्धिसे युक्त सबसे श्रेष्ठ और तपोनिधि है, जिसका तेज सूर्य्यको भी अतिक्रम करता है, उसके वंशमें पराशर नाम महाप्रभावयुक्त महर्षिका जन्म होगा, वही वेदनिधि वरिष्ट महातपस्वी तपोनिधि तुम्हारे पिता होंगे। तुम उस ही महर्षिके द्वारा कन्याके गर्भसे उत्पन्न होके उनके पुत्र कहे जाओगे। तुम भूत, भविष्यत् वर्त्तमान समस्त विषयोंके संशयको नष्ट करोगे। हे मुनि! पहले जो सहस्रयुग व्यतीत हुए हैं, तुम तपस्यायुक्त होकर मेरे द्वारा उन सब युगधर्म्मोंको अवलोकन करोगे और अनादिनिधन मेरा सदा ध्यान करनेसे फिर अनेक सहस्र चतुर्युगियोंको देखनेमें समर्थ होगे। मेरा यह वचन मिथ्या न होगा।

हे तात! तुम अतुल-सत्त्वसे युक्त और अत्यन्त विख्यात् होगे। सूर्य्यपुत्र शनैश्चर्य्य सम-वान् मनु होंगे, उस मन्वन्तरमें तुम मेरी कृपासे निःसन्देह मन्वादिकोंमें अग्रगण्य होगे। लोकमें जो कुछ विद्यमान है, वह सब हमारा ही विचेष्टित कार्य्य है, दूसरे लोग अन्य भांति की चिन्ता करते हैं परन्तु मैं स्वच्छन्दतासे सबका विधान किया करता हूं। ईश्वरने अपान्तरतमा सारस्वत ऋषिसे ऐसा ही वचन कहके उन्हें प्रस्थान करनेके निमित्त आज्ञा दिया उस हरिमेधा देवकी कृपा तथा उनकी आज्ञाके अनुसार मैंने उसही अपान्तरतमा नामसे जन्म ग्रहण किया था। पुनर्व्वार मैं वसिष्ठ कुलका आनन्द वर्द्धक होकर उत्पन्न होके विख्यात हुआ हूं। मेरा जो नारायणकी कृपासे उनहीके अंशसे जन्म हुआ था, उसे मैंने वर्णन किया। हे मतिमत्प्रवर! पहिले समयमें मैंने परम समाधिके सहित अत्यन्त ही दारुण तपस्या की थी। हे शिष्यवृन्द! तुम लोगोंने जो पूछा था, भक्तोंपर स्नेह वशसे मैंने यही अपना पूर्व्व जन्म और भविष्यत् जन्मका समस्त वृत्तान्त तुम लोगोंके समीप कहा है। इसके अनन्तर और वृतान्त सुनो।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजर्षि! सांख्ययोग, पञ्चरात्र, समस्त वेद और पाशुपत-मत, इन सब ज्ञान प्रतिपादक शास्त्रोंको अनेक मतोंसे संयुक्त जानना चाहिये। सांख्य शास्त्रके वक्ता कपिल मुनि हैं, वह परमर्षि रूपसे वर्णित हुए हैं, प्राचीन हिरण्यगर्भ योगशास्त्रको जाननेवाला दूसरा कोई भी नहीं है। अपान्तरतमा ऋषि वेदाचार्य्य कहके वर्णित हुए हैं, इस लोकमें कोई कोई उन्हें प्राचीनगर्भ ऋषि कहा करते हैं। ब्रह्माके पुत्र उमापति, भुतनाथ, श्रीकण्ठ शिवने सावधान होकर यह पाशुपत ज्ञान-शास्त्र कहा है। हे नृपवर! भगवान स्वयं समस्त पञ्चरात्रके जाननेवाले हैं, इन सब शास्त्रोंके बीच यही दीख पड़ता है, कि आगम और अनुभवके अनुसार सब ऐश्वर्य्योंसे युक्त परमात्मा ही सब शास्त्रोंका परम तात्पर्य्य और विषयीभूत है। हे नरनाथ! मोहसे छिपे हुए मनुष्य लोग नारायणको इस प्रकार नहीं जान सकते। शास्त्र बनानेवाले

मनीषियोंने उस नारायण ऋषिको ही शास्त्रोंका तात्पर्य कहा है, शास्त्रोंका प्रतिपाद्य दूसरा कोई भी नहीं है, इसे मैं भी स्वीकार करता हूं। पुरुषोंमें निःसन्देह नारायण सदा निवास कर रहा है, और संशय करनेवाले कुतर्की मनुष्योंमें वह स्थिति नहीं करता। हे महाराज! जो लोग पञ्चरात्रके जाननेवाले, क्रम-परायण और निष्काम धर्ममें निष्ठावान् हैं, वेही नारायणमें प्रवेश किया करते हैं। हे राजन्! सांख्य योगशास्त्र और निखिल वेद-श्रुति प्रतिपादनका हेतु आदि अन्तसे रहित हैं, इस हीसे सनातन कहाता है, समस्त ऋषि-योंके द्वारा ऐसा ही निरूपित हुआ है, कि पुराण पुरुष नारायण ही यह दृश्यमान समस्त जगत्स्वरूप है। वेद विहित जो कुछ शुभ अथवा अशुभ कर्म सब लोकोंमें अर्थात् द्युलोक, भूलोक, अन्तरीक्ष और जलके बीच प्रवर्त्तित होते हैं, उन्हें यह जानना चाहिये, कि ये सब उसही परम ऋषि नारायणसे प्रवर्त्तित हुए हैं।

३४९ अध्याय समाप्त।

महाराज जनमेजय बोले, हे ब्रह्मन्! पुरुष अनेक अथवा एक ही है; श्रेष्ठ पुरुष कौन है और उसकी योनि कौनसी है?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे कुरुकुलधुर-न्धर! सांख्य और योगशास्त्रको विचार करके देखनेसे व्यवहारके समय अनेक पुरुष दीखते हैं, उक्त मतावलम्बी पुरुष एक पुरुषवादको अङ्गीकार नहीं करते। अनेक पुरुषोंकी जिस प्रकार एक योनि कही जाती है और विश्वमय एक पुरुष जिस भांतिसे गुणाधिक होता है, उस विषयके कहनेके पहिले मैं आत्मतत्त्वके जाननेवाले, तपस्वी, दांत, वन्दनीय निज गुरु महर्षि व्यासदेवको नमस्कार करके उसको व्याख्या करता हूं। हे महाराज! यह पुरुष-सूक्त समस्त वेदोंके बीच सत्य, परम सत्य ऋषि-श्रेष्ठ व्यासदेव मुनिके द्वारा चिन्तितरूपसे विख्यात् है। हे भारत! कपिल आदि ऋषि-योंने अध्यात्म योगके सहारे सामान्य और विशेष विधिके अनुसार बहुतेरे शास्त्रोंका वर्णन किया है। व्यासदेवने जो संक्षेपसे एक पुरुष वाद कहा है, मैं उसी अमित तेजस्वी ऋषिकी कृपासे उसे ही तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं। हे नरनाथ! प्राचीन लोग इस विषयमें ब्रह्माके सहित महादेवके सम्वादयुक्त यह पुराना इति-हास कहा करते हैं।

हे महाराज! क्षीरसागरके बीच सुवर्ण समान प्रभासे युक्त वैजन्त नाम विख्यात् एक उत्तम पर्वत है, प्रजापति ब्रह्मा वैराजस्थानसे नित्य वहांपर आके एकान्तमें अध्यात्मगतिका विचार करते हुए उस पहाड़ पर निवास करते हैं। एक बार जब बुद्धिमान ब्रह्मा वहांपर बैठे थे, उस ही समय उनके ललाटसे प्रकट हुए महायोगी तीन नेत्रवाले शिव आकाशमार्गसे इच्छापूर्वक उस स्थानपर आके उपस्थित हुए। उन्होंने शीघ्र ही आकाशसे उस पहाड़की शिखरपर प्रजापति ब्रह्माके अगाड़ी आके उप-स्थित और प्रसन्न होके उनके दोनों चरणोंकी वन्दना की। चरणपर गिरते हुए देखकर उस समय अकेले भगवान प्रजापतिने उन्हें बायें हाथसे उठाया और बहुत समयके अनन्तर आये हुए पुत्रसे यह वक्ष्यमाण वचन कहने लगे।

ब्रह्मा बोले, हे महाबली पुत्र! तुमने सुखसे आगमन किया है न; भाग्यसे ही तुम मेरे समीप आये हो, तुम्हारा वेदाध्ययन और तपस्या कुशलपूर्वक होती है न? तुम सदा उग्रतपस्या किया करते हो, इस ही निमित्त बार बार पूंछता हूं।

महादेव बोले, हे भगवन्! आपकी कृपासे मेरे स्वाध्याय, तपस्या तथा समस्त जगत्का मङ्गल है, बहुत समय व्यतीत हुआ कि मैंने

वैराजभवनमें आपका दर्शन किया था, इस ही निमित्त आपके चरणसेवित इस पर्व्वतपर आया हूं; आपके इस अत्यन्त निर्ज्जन स्थानमें आगमन करनेसे मुझे अत्यन्त कौतूहल उत्पन्न हुआ है। हे भगवन्! इस निर्ज्जन स्थानमें आनेका कारण सामान्य होगा, वैसा भी मुझे नहीं मालूम होता है। परन्तु आपका स्थान अत्यन्त श्रेष्ठ, भूख प्याससे रहित अत्यन्त तेजस्वी ऋषियों और सुरासुरोंसे अध्युषित है, गन्धर्व्व और अप्सराओंके सदा निषेवित है, इसलिये वैसे स्थानको परित्याग करके किस लिये आप अकेले इस पर्व्वतपर आये हैं। ब्रह्मा बोले, मैं इस वैजन्तपर्व्वतपर सदा निवास करता हूं, इस स्थानपर एकान्तचित्तसे विराटपुरुषका ध्यान किया करता हूं।

महादेव बोले, हे ब्रह्मन्! आपने स्वयम्भु होकर अनेक पुरुषोंको उत्पन्न किया है और दूसरी अनेक प्रकारकी सृष्टि होती हैं; परन्तु विराट पुरुष एकही है; इसलिये आप एकमात्र जिस पुरुषोत्तमका ध्यान करते हैं; वह कौन है? आप मेरे इस सन्देहके विषयको वर्णन करिये; इसमें मुझे अत्यन्त कौतूहल उत्पन्न होरहा है।

ब्रह्मा बोले, हे पुत्र! तुमने जिन समस्त पुरुषोंका विषय कहा है, वे अनेक हैं; और जिसका मैं ध्यान करता हूं, वह इन सबको अतिक्रम करके स्थित है, इस ही निमित्त दृष्टिगोचर नहीं है वह एकमात्र पुरुषही समस्त पुरुषोंका निवास स्थान है, और वही अनेक पुरुषोंकी योनि कहके वर्णित हुआ करता है। उस विश्वव्यापी कारण स्वरूप सूत्रात्मा सनातन पुरुषमें निर्गुण पुरुष प्रवेश किया करते हैं।

३५० अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, हे पुत्र! यह पुरुष पूर्णत्वके कारण जिस प्रकारसे पुरुष शब्द वाच्य है, आदि अन्तसे रहित होनेसे शाश्वत है, अपरिणामित्व होनेसे अव्यय कहाता है; अवयव रहित है, इस ही निमित्त अक्षर कहा जाता है, वचन और मनके अगोचर होनेसे अप्रमेय है, तथा सबके उपादान कारण होनेसे जिस प्रकार सर्व्वगरूपसे वर्णित होता है, उसे सुनो। हे सत्तम! तुम, मैं अथवा दूसरे पुरुष उसका दर्शन करनेमें समर्थ नहीं हैं, ज्ञान इन्द्रियसे सहित निर्गुण अथवा शम दम आदिसे रहित निर्गुण मूढ़ पुरुष उसका दर्शन नहीं कर सकते। वह विश्वात्मा केवल ज्ञानसे देखा जाता है अर्थात् चिन्मात्रके सहारे ही उस स्वयं प्रकाशका दर्शन किया जाता है। वह स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीरसे रहित होनेपर भी सर्व्व शरीरमें निवास कर रहा है, और शरीरमें वास करने पर भी कर्म्मसे लिप्त नहीं होता। वही मेरी अन्तरात्मा, तुम्हारी अन्तरात्मा और दूसरे जो सब शरीर हैं, उन सबकी अन्तरात्मा है। वही सबका साक्षी है, कोई भी उसका दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होता। वह विश्वमुख, विश्वभुज, विश्वपाद, विश्व-नयन और विश्व नासिक है; वही अकेला स्वेच्छाचारी होकर सर्व्व शरीरोंमें सुख पूर्व्वक भ्रमण कर रहा है। वह योगात्मा क्षेत्र अर्थात् समस्त शरीर और शुभाशुभ बीजको जानता है, इसीसे क्षेत्रज्ञ नामसे वर्णित होता है। प्राणियोंके बीच उसकी अगति और गतिका विषय सांख्यविधि और योगके द्वारा कोई भी जाननेमें समर्थ नहीं है; उसकी गतिको मैं विचार रहा हूं, परन्तु उत्तम गतिको जान नहीं सका; उसकी अगति और गतिके विद्यमान रहते भी यथार्थमें वह नहीं है; इस ही निमित्त वह जाना नहीं जाता, आत्मामें गति है, इतना ही जानना होगा। वह एक और महान् है, अकेला वही पुरुषरूपसे वर्णित होता है, वह सनातन पुरुष ही महापुरुष शब्दसे प्रतिपादित है। एक ही अग्नि अनेक प्रकारसे प्रज्वलित होती है; सूर्य्य एक है, और तपस्याकी योनि एक ही है। एक ही वायु लोकमें अनेक प्रका-

रही बहती है और समस्त जलकी योनि महासागर एक ही है। विश्वरूप निर्गुण पुरुष एक है, उसहीमें सब प्राणी लीन होते हैं। गुणमय अर्थात् देहेन्द्रिय आदि अहंकारको छोड़के उसही निबन्धनसे शुभ अशुभ कार्य्योंको परित्याग करनेसे सत्य और मिथ्या अर्थात् जीवाख्य अक्षर तथा प्रधान अर्थात् भोक्ता और भोग्यको त्यागनेसे निर्गुणत्व प्राप्त होता है। उस निर्गुणको मनके अगोचर सत्तामात्रके सूक्ष्मरूप अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, सङ्कर्षण, वासुदेव-पर पर्य्याय अर्थात् विराट, सूत्रात्मा, अन्तर्य्यामी और शुद्ध ब्रह्मरूप जानके जो लोग स्थूल सूक्ष्म प्रतिपालन क्रमसे नित्य समाधिका अनुष्ठान करते हैं, वेही अत्यन्त शान्तसाधक मनुष्य परम पुरुषको प्राप्त होते हैं। कोई कोई योग मतावलम्बी पण्डित लोग इस ही प्रकार योग मार्गके द्वारा परमात्माको जाननेकी इच्छा करते हैं। दूसरे ज्ञानचिन्तक अर्थात् सांख्यमत वाले मनीषी पुरुष प्रत्यगात्माको एकात्मा अर्थात् ब्रह्मके सहित अभिन्न समझते हैं। परमात्मा सदा ही निर्गुण है, उसे ही नारायण और सर्व्वात्मा जानना चाहिये ; जैसे कमलका पत्ता जलसे लिप्त नहीं होता, वैसे ही वह भी कर्म्मफलसे लिप्त नहीं है। दूसरे जो सब कर्म्मात्मा जीव हैं, वेही बन्ध और मोक्षके द्वारा युक्त हुआ करते हैं, वेही पञ्चप्राण, मन, बुद्धि और दशों इन्द्रिय, इन सत्तरहोंके सहित संयुक्त होते हैं। इस ही प्रकार अनेक प्रकारके पुरुषोंका विषय तुम्हारे समीप विधिपूर्व्वक कहा गया, सोपाधिक आत्मा जीव कर्म्मभेदसे देवता, तिर्य्यक् मनुष्य आदि रूपसे अनेक प्रकार होता है। जो चैतन्य ज्योति सब लोकोंको प्रकाशक है, वही परम वेद्य, बोद्ध, बोधनीय, ईश्वर और जीव कहाता है ; वही मन्ता और मन्तव्य है, वही भोक्ता और भोगनीय है, वही घ्राता और घ्रेय है, वही स्पर्शित और स्पर्शनीय है, वही द्रष्टा तथा द्रष्टव्य है ; वही श्राविता और श्रावणीय है, वही ज्ञाता तथा ज्ञेय कहाता है, वही सगुण और निर्गुण है।

हे तात ! पहले जो प्रधान नामसे वर्णित हुआ है, जो महत्तत्त्वकी योनि है, वह भी इस चैतन्य ज्योतिसे पृथक् नहीं है ; क्यों कि वह नित्य अर्थात् नाशरहित, शाश्वत अर्थात अनादि अव्यय अर्थात् अपरिणामी है। जो पहले ब्रह्माको प्रकट करके महत्तत्त्वोंको उत्पन्न करता है, ब्राह्मण लोग उसे ही अनिरुद्ध कहते हैं। लोकमें जो आशियुक्त उत्तम वैदिक कर्म्म हुआ करता है, उसे उसहीका कार्य्य जानना चाहिये। सब देवता साधु तथा शान्त मुनिलोग उसहीको यज्ञ-भाग प्रदान करके पूजा किया करते हैं। मैं प्रजासमूहका आदि प्रभु ब्रह्मा हूं, मैं उस ही देवसे उत्पन्न हुआ हूं, और तुम मुझसे उत्पन्न हुए हो। हे पुत्र ! मुझसे ही स्थावर जङ्गममय जगत् और रहस्यके सहित सब वेद उत्पन्न हुए हैं ; इसलिये जो मेरा पूजनीय है, वह स्थावर जङ्गमात्मक जीवगणोंका भी आराधनीय है सब प्राणियोंको उचित है, कि उसको पूजा करें। वह पुरुष वासुदेव आदिरूपसे चार प्रकारसे विभक्त होकर इच्छानुसार क्रीड़ा कर रहा है ; परमात्मा इस ही भांति स्वरूपाभिन्न ज्ञानके सहारे जाना जाता है। हे पुत्र ! तुमने जो पूछा था, मैंने उस ही सांख्यज्ञान और योगशास्त्रके मतके अनुसार निगूढ़ तत्त्वको तुम्हारे समीप वर्णन किया।

२५१ अध्याय समाप्त।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! आपने मोक्षधर्म्मके सहारे पवित्र धर्म्म वर्णन किया, अब आश्रमवासियोंका श्रेष्ठ धर्म्म कहिये।

भीष्म बोले, हे भरतसत्तम ! सब आश्रमोंके विहित धर्म्म ही स्वर्गसाधन, सत्यफल देनेवाले और बहुतेरे उत्तम महत यज्ञ तथा दान जिसका द्वारस्वरूप है, उस धर्म्मके कार्य्य

इस लोकमें विफल नहीं होते। सब आश्रमोंमें ही स्वर्ग और मोक्ष है, उसके बीच जिसकी जिसमें रुचि होती है। वह उसहीके सहारे कृतकृत्य होकर दूसरे धर्म्मको अवलम्बन नहीं करता। हे राजन्! पहिले समयमें महर्षि नारद मुनिके सङ्ग सुरराज इन्द्रकी जो वार्त्ता हुई थी, उसे मैं कहता हूं, तुम सुनो। हे महाराज! तीनों लोकोंमें विख्यात सिद्ध महर्षि नारद मुनिने अव्याहत गतिवाली वायुकी भांति क्रमसे सब लोकोंमें भ्रमण किया। अनन्तर वह किसी समय महा धनुर्धर देवराज इन्द्रके भवनमें गये। वहां जाके इन्द्रसे सत्कारयुक्त होके उनके निकट बैठ गये, उनके बैठने और विश्राम करनेपर शचिपति इन्द्रने उनसे पूछा, हे पापरहित महर्षि! आपने कौनसा आश्चर्य्ययुक्त विषय देखा है, जब आप सिद्ध होके कौतूहलके लिये साक्षीकी भांति सदा सचराचर तीनों लोकोंके बीच भ्रमण किया करते हैं, तब लोकके बीच कुछ भी आपसे छिपा नहीं है, इससे आपके द्वारा जो कुछ श्रुत, अनुभूत अथवा दृष्ट विषय हो, उसे मेरे समीप वर्णन करिये। हे महाराज! वक्तृवर नारद मुनिने उस समय सुखसे निकटमें बैठे हुए इन्द्रसे जो विपुल कथा कही थी; तथा द्विजसत्तम नारद मुनिने इन्द्रके पूछनेपर जिस प्रकार जिस क्रममें उनसे जो कथा कही थी, उसे तुम मेरे समीप सुनो।

३५२ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे नरश्रेष्ठ! गङ्गाके दहिने किनारेपर महापद्मनामक उत्तम नगरके बीच आत्रिगोत्रमें प्रियदर्शन वा समाहित नाम कोई ब्राह्मण था, उसने वेदपथको जानके संशयका छेदन किया था। वह धर्म्ममें रत, क्रोधको जीतनेवाला, सदा तृप्त रहनेवाला और जितेन्द्रिय था। वह तपस्या तथा स्वाध्यायमें रत, सत्यवादी और सज्जनसम्मत था। वह न्यायसे प्राप्त हुए वित्तके द्वारा जीविका निर्व्वाह तथा बहु स्वजनों सम्बन्धियोंसे युक्त, पुत्र स्त्री आदिसे सम्पन्न होकर उत्तम विख्यात महत् वंशमें शिलवृत्ति अवलम्बन करके निवास करता था। हे महाराज! उसने अनेक पुत्रोंको देखकर बहुत सा कार्य्य अवलम्बन किया और कुलधर्म्मके सहारे धर्म्माचरण करनेमें यत्नवान हुए। अनन्तर उन्होंने वेदमें कहे हुए निजधर्म्म, शास्त्रोक्त धर्म्म और शिष्टोंके आचरित धर्म्म, इन तीन प्रकारके धर्म्मोंका मनही मन विचार करके क्या करनेसे मेरा कल्याण होगा, मैंने क्या किया है और कौन धर्म्म मेरा परम अवलम्बन है, इसे ही विचारते विचारते दुःखित होने लगा और कुछभी निश्चय न करसका, वह परम धर्म्म अवलम्बन करके जब इस प्रकार क्लेशित हुआ, उस ही समय एक समाहित अतिथि ब्राह्मण उसके समीप उपस्थित हुआ; उसने यथायोग्य अतिथिसत्कार करके उसे सम्मानित किया और अतिथिके विश्राम करके सुखपूर्व्वक बैठनेपर उससे यह वक्ष्यमाण वचन कहने लगा।

३५३ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, हे अनघ! मैं तुम्हारे वचनकी कोमलतासे बद्ध हुआ हूं, मैं कुछ कहता हूं मेरा वचन सुनो। हे विप्रवर! मैंने पुत्रोत्पादन पर्य्यन्त गृहस्थ धर्म्म प्रतिपालन किया है, इस समय कौनसा परम धर्म्म अवलम्बन करूं; मैं कौनसे मार्गका सहारा लूं? मैंने आत्माका आसरा करके आत्मज्ञानके निमित्त अकेले ही निवास करनेकी इच्छा की है, विषयपाशमें बद्ध होकर किसी कर्म्मको करनेकी इच्छा वा अभिलाषा नहीं करता। मेरी पुत्रफलाश्रित अवस्था जबसे व्यतीत हुई है, तभीसे मैं पारलौकिक पथको ग्रहण करनेकी इच्छा करता हूं। इस संसारके पार जानेकी आकांक्षा होनेसे मुझे ऐसी ही बुद्धि उत्पन्न हुई है, कि संसारसागरको तरनेमें समर्थ धर्म्ममयी नौका कहां पाऊंगा। देवता आदि जीव-

मायकोंहो संयुज्यमान और पीड़ित सुनके तथा प्रजासमूहके ऊपर यमराजके ध्वजदण्डकी भांति रोग सन्ततिको प्रकोथ्यमान देखकर मेरा मन विषयभोगमें अनुरक्त नहीं है, और परिव्राजकोंको दूसरेके गृहपर अन्न मांगते हुए देखकर यतिधर्म्ममें भी मेरा मन अनुरक्त नहीं होता। हे अतिथि! इसलिये तुम बुद्धिबलके सहारे धर्म्मके द्वारा मुझ डांवाडोल पुरुषको धर्म्ममें नियुक्त करो। भीष्म बोले, बुद्धिमान अतिथि उस धर्म्मभाषी ब्राह्मणका वचन सुनके मधुर वचन कहने लगा।

अतिथि बोला, मैं भी इस विषयमें मुग्ध होरहा हूं, मेरी भी यही मनोकामना है; अनेक द्वार त्रिविष्टप प्राप्ति विषयमें मैं भलीभांति निश्चय नहीं कर सका। कोई कोई ब्राह्मण मोक्षको प्रशंसा करते हैं, कोई यज्ञ फलको श्रेष्ठ कहा करते हैं, कोई वाणप्रस्थ आश्रमका अवलम्बन कर रहे हैं, कोई गृहस्थाश्रमका अवलम्बन करके निवास करते हैं, किसीने राजधर्म्मको अवलम्बन किया है, कोई पुरुष आत्मबलका सहारा करके निवास करते हैं, कोई कोई गुरु-धर्म्म अवलम्बन करनेको प्रशंसा किया करते हैं, कोई कोई पुरुष वाक्यसंयमको ही श्रेष्ठ कहा करते हैं। कोई कोई मनुष्य पितामाताकी सेवा करनेसे स्वर्गमें गये हैं, किसीने अहिंसा और किसीने सत्य वचन कहनेसे स्वर्ग प्राप्त किया है। कोई पुरुष सम्मुख संग्राममें मरकर सुर लोकवासी हुए हैं, किसीने उञ्छवृत्तिका अनुष्ठान करनेसे सिद्ध होकर स्वर्गमार्ग अवलम्बन किया है। कोई कोई बुद्धिमान मनुष्य वेदव्रत परायण पढ़नेमें अनुरक्त, प्रसन्नचित्त और जितेन्द्रिय होकर स्वर्गमें जाकर सुख भोग करते हैं। कितने ही पुरुषोंने सरलतायुक्त होनेसे भी स्वर्गमें गमन किया है। कोई कोई सरल स्वभाववाले मनुष्य अविनीत पुरुषोंके द्वारा मरके भी शुद्धचित्तसे नाकपृष्ठ पर निवास करते हैं। जैसे वायुके सहारे बादल इधर उधर होजाते हैं, वैसे ही जगत्‌के बीच इसही प्रकार अनेक अनावृत धर्म्मोंके द्वारा हमारी भी बुद्धि पूर्व्वरूपसे भ्रान्तियुक्त होरही है।

३५४ अध्याय समाप्त।

अतिथि बोला, हे विप्र! मेरे गुरुने मुझे जैसा उपदेश दिया है, उसहीके अनुसार मैं तुमसे ज्योंका त्यों कहता हूं, तुम इस विषयको भलीभांति सुनो। पहिले समयमें जिस स्थानमें धर्म्मचक्र प्रवर्त्तित हुआ था, उस नैमिष तीर्थमें गोमतीके तीर हस्तिना नामक एक नगर है। हे द्विजवर! उस स्थानमें सब देवताओंने यज्ञ किया था; जहांपर यज्ञ करके राजसत्तम मान्धाताने इन्द्रका अतिक्रम किया था। इस ही स्थानमें महात्मा पद्मनाभ नामक पद्म इस ही रूपसे विख्यात् महान् चक्षुःश्रवा महानाग वास करता है। हे द्विजश्रेष्ठ! वह कर्म्म, ज्ञान और उपासना इन तीनों मार्गोंमें स्थित रहके वचन, मन और कर्म्मसे प्राणियोंको प्रसन्न करता है; साम, भेद, दान और दण्डके सहारे चार प्रकारके विषमस्थ और सब प्रकारके नेत्र ध्यान बलसे धारण कर रहा है। तुम उसके समीप जाके विधिपूर्व्वक मनोवाञ्छित विषय पूछ सकते हो, वह परम धर्म्मको मिथ्या प्रदर्शित न करेगा। वह नाग सबका आतिथ्य करता है, वह बुद्धिमान और शास्त्रोंका जाननेवाला है, वह उत्तम गुणोंसे युक्त और समस्त अभिप्सित-सम्पन्न है; वह स्वाभाविक ही जलके समान निर्म्मल है, सदा अध्ययनमें रत रहता है; तपस्या, इन्द्रिय निग्रह और अत्युत्तम चरित्रोंसे संयुक्त है। वह यज्ञ करनेवाला, दाता, क्षमाशील, सच्चरित्र, सत्यवादी, असूयारहित, शीलवान और संयतेन्द्रिय है, वह यज्ञसे शेष बचेहुए अन्नको भोजन करनेवाला, अनुकूल वचन कहनेवाला, हितैषी, विनयी

और श्रेष्ठ विषयोंमें कृतार्थ, कृतज्ञ, अनुत्ताररहित, प्राणियोंके हितमें नियुक्त और गङ्गाके हृद जल स्वरूप पवित्र सद्वंशमें उत्पन्न हुआ है।

३५५ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, अत्यन्त भारसे युक्त मनुष्योंके बोझ उतरनेकी भांति मैंने आपका यह अत्यन्त धीरजमय उत्तम महत् वचन सुना, मार्गसे थके हुए पुरुषका सोना, स्थान रहित पुरुषको बैठनका सहारा, प्यासेको जल, भूखोंका भोजन, अतिथिको यथा समयसे अन्न प्राप्त होना, बूढ़े पुरुषको कालक्रमसे पुत्र लाभ और मनश्चिन्तित विचार हुए प्रीतियुक्त पुरुषका दर्शन होनेकी भांति आपके मुखसे निकले हुए वचन मुझे अत्यन्त ही आनन्दित कर रहे हैं। प्रज्ञानवचनके हेतु आपने मुझे जो उपदेश दिया, उसे मैं आकाशगत दृष्टिकी भांति देखता तथा विचारता हूं; आपने मुझसे जैसा कहा है, उसे मैं अवश्य ही करूंगा। हे साधु! आप यह रात्रि मेरे साथ व्यतीत करिये, सबेरे सुखसे उठनेके नित्य कर्म्म करनेके अनन्तर जिस स्थानमें जानेकी इच्छा होगी, वहां जाइयेगा। इस समय यह भगवान सूर्य्य तेजरहित तथा अस्त होरहे हैं।

भीष्म बोले, हे शत्रुनाशन! अनन्तर उस अतिथिने ब्राह्मणके द्वारा अतिथिसत्कारसे युक्त होकर उसके सङ्ग वह रात्रि वहां ही बिताई। उस समय उन दोनोंके मोक्षधर्म्मविषयक वार्त्तालाप होते रहनेसे वह रात्रि दिनकी भांति परम सुखसे व्यतीत हुई। अनन्तर भोरके समय वह अतिथि निज कार्य्यसिद्धिकी अभिलाष करने वाले उस ब्राह्मणके द्वारा शक्तिके अनुसार पूजित होकर वहांसे प्रस्थान किया, इधर वह धर्म्मिष्ठ ब्राह्मण कर्त्तव्य कार्य्यका निश्चय करके स्वजनोंकी अनुमति लेकर सब समयमें एकनिश्चय अवलम्बन करके अतिथिके उपदेशके अनुसार भुजगेन्द्रके स्थानमें जानेके निमित्त शीघ्र प्रस्थान किया।

३५६ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, वह ब्राह्मण क्रमसे विचित्र वन तीर्थों और समस्त तालाबोंको अतिक्रम करके जाते जाते किसी मुनिके समीप उपस्थित हुआ। ब्राह्मणने उस अतिथिके कहे हुए वचनके अनुसार उक्त मुनिसे विधिपूर्व्वक नागेन्द्रका वृत्तान्त पूछा और उनके निकट उस नागका समाचार सुनके जाने लगा। वह अर्थवित् ब्राह्मण यथारीतिसे नागके स्थानपर जाकर 'भो' शब्दकेद्वारा पुकारके यह वचन कहा, कि "मैं आया हूं।" पतिव्रता धर्म्मभीरु परम रूपवती नागपत्नीने उसका ऐसा वचन सुनकर उसे दर्शन दिया। धर्म्मवत्सला नागभार्य्याने उस आयेहुए ब्राह्मणकी विधिपूर्व्वक पूजा की और स्वागत प्रश्न करके बोली, कि "कहिये विप्र कौनसा कार्य्य करूं"?

ब्राह्मण बोला, हे भद्रे! मैं तुम्हारा उत्तम मधुर और पवित्र वचन सुननेसे विश्रामयुक्त तथा सत्कृत हुआ हूं; इस समय सर्व्वोत्तम नागेन्द्रदेवका दर्शन करनेकी अभिलाष करता हूं, उनका दर्शन मिलना ही मेरा परम कार्य्य और एक मात्र अभिलषित विषय है; इस ही निमित्त आज मैं पन्नगके स्थानपर आया हूं।

नागपत्नी बोली, हे विप्र! मेरा स्वामी महीना भरके लिये सूर्य्यका रथ खींचनेके निमित्त गया है, आप सात अथवा आठदिनके बीच उसका निःसन्देह दर्शन करेंगे। मेरे पतिके अन्य स्थानमें जानेका कारण आपको मालूम हुआ; परन्तु आपका और जो कुछ कार्य्य हो, उसके लिये आज्ञा करिये।

ब्राह्मण बोला, हे पतिव्रता देवि! मैं उस ही नागके दर्शनके निमित्त इस स्थानमें आया हूं, इसलिये उसके आनेकी प्रतीक्षा करते हुए इस महावनमें निवास करूंगा। तुम आनेपर इस स्थानमें मेरे आनेका समाचार अव्यग्रभावसे सुनाना और समयके अनुसार उन्हें मेरे समीप गमन करनेके लिये अनुरोध करना। मैं उक्त समयकी प्रतीक्षा करते हुए परिमित आहार

स्वीकार करके इस गोमती नदीके पवित्र स्थानमें वास करूंगा। अनन्तर वह ब्राह्मण नागभार्य्यासे बारबार ऐसा ही निवेदन करके गोमती नदीके पवित्र स्थानमें चला गया।

३५७ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे महाराज! अनन्तर उस तपस्वी ब्राह्मणके निराहार निवास करते रहने पर नागराजके बान्धव भुजङ्गवृन्द दुःखित हुए। उसके भाई, पुत्र, भार्य्या और सब बान्धव इकट्ठे होकर उस ब्राह्मणके निकट गये। उन्होंने उस निर्जन नदीके तटपर नियतव्रत, निराहारी, जपपरायण ब्राह्मणको बैठे हुए देखा। वे सब कोई उस अतिथि ब्राह्मणके निकट उपस्थित होकर बार बार उसकी पूजा करते हुए यह सन्देह रहित वचन बोले। हे धर्म्मवत्सल तपोधन! छःदिन आपको इस स्थान पर आये होगये, परन्तु भोजनके लिये आपने कुछ भी न कहा। आप हमारे समीप आये हैं, हम लोग भी आपके निकट उपस्थित हैं; अतिथिका सत्कार करना हमारा कर्त्तव्य कार्य्य है, क्यों कि हम सब कोई उस नागेन्द्रके कुटुम्ब हैं। हे द्विजसत्तम! फल, मूल, पत्र अथवा दूध वा आहारके निमित्त तुम्हें अन्न भोजन करना उचित बोध होता है। तुम्हारे आहार परित्याग करके इस वनमें निवास करनेसे धर्म्मसङ्कट होनेके कारण ये सब बालक और बूढ़े पीड़ित होरहे हैं। हमारे वंशमें कोई ब्रह्महत्या करनेवाला पुत्र उत्पन्न अथवा मत नहीं हुआ और देवता अतिथि तथा बान्धवोंके भूखे रहनेपर किसीने पहले कभी भोजन नहीं किया।

ब्राह्मण बोला, तुम लोगोंके उपदेशके सहारे ही मेरा आहार हुआ, मैं नागके आगमनके निमित्त आठ रात्रिकी उपेक्षा करता हूं, आठ रात्रिके अनन्तर यदि पन्नगराज आगमन न करेगा, तब मैं भोजन करूंगा, उस ही निमित्त यह व्रत धारण किया है, तुम लोग कुछ भी दुःख मत करो, जिस स्थानसे आये हो, वहां ही चले जाओ; मैंने नागके आगमनके लिये जो व्रत किया है, उसे भङ्ग करना तुम लोगोंको उचित नहीं है। हे नरनाथ! भुजङ्गवृन्द पूर्वोक्त रीतिसे उस ब्राह्मणके द्वारा अनुज्ञात तथा अकृतकार्य्य होकर निज स्थानपर चले आये।

३५८ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, अनन्तर समय पूरा होनेपर नागने सूर्य्यकी आज्ञा पाके कृतकार्य्य होके निज स्थान पर आगमन किया। उसकी भार्य्या पांव धोनेको निकट आई तब नागने उससे पूछा, हे कल्याणि! हे सुश्रोणि! स्त्रीबुद्धिके कारण तुमने मेरे वियोगमें अकृतार्थ धर्म्मसे वियुक्त होकर पहलेकी भांति युक्तियुक्त विधिके अनुसार देवता और अतिथि पूजन कार्य्यमें शिथिलता तो नहीं की?

नागपत्नी बोली, शिष्योंको गुरुसेवा, ब्राह्मणोंको वेदाध्ययन, सेवकोंको स्वामीकी आज्ञा प्रतिपालन करना, राजाको प्रजापालन, और इस लोकमें सब प्राणियोंके परित्राण करनेको ही क्षत्रधर्म्म कहा जाता है। वैश्योंको अतिथियुक्त यज्ञ कार्य्यका निर्व्वाह करना और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों वर्णोंकी सेवा करना शूद्रका कर्म्म है। हे नागेन्द्र! सब प्राणियोंको हितैषिता, नियताहारता और नित्य व्रताचरण विधिपूर्व्वक गृहस्थ धर्म्म कहके वर्णित हुआ है। इन्द्रियोंके धर्म्म सम्बन्धसे विशेष प्रकारका धर्म्म हुआ करता है, मैं कौन हूं, कहांसे आया हूं, मैं किसका हूं, और हमारा हो कौन है? मोक्षाश्रममें इस ही प्रकार ज्ञानका प्रयोजन होता है। हे नागराज! भार्य्याका पतिव्रत ही परम धर्म्म है, तुम्हारे उपदेशके अनुसार मैं उसे यथार्थ रूपसे जानती हूं, इसलिये धर्म्ममें रत तुम्हारे सहारे मैं धर्म्म जानकर किस प्रकार सत् पथको छोड़के

कुपथमें पांव रक्खूंगी। हे महाभाग ! देवताओंके समक्षमें धर्म्म परित्यक्त नहीं हुआ और अतिथियोंके सत्कार विषयमें मैं आलस रहित होके सदा नियुक्त रहती हूं। आज सात आठ दिन हुआ, यहां पर एक ब्राह्मण आया है ; उसने अपना प्रयोजन मुझसे नहीं कहा वह केवल तुम्हारे दर्शनकी अभिलाष करता है, वह संशितव्रती ब्राह्मण गोमतीके तटपर वेदकी आवृत्ति करतेहुए तुम्हारा दर्शनपानेके निमित्त बैठा है।

हे नागेन्द्र ! उस महाभाग ब्राह्मणने मुझे यह सत्य वचन कहा है, कि नागराजके आनेपर उन्हें तुम मेरे निकट भेजना। हे महाप्राज्ञ ! इसलिये यह वृतान्त सुनके उस स्थानपर तुम्हें जाना उचित है। हे दर्शनश्रव ! उस ब्राह्मणको दर्शनदेना तुम्हारा उचितकार्य्य मालूमहोता है।

३५८ अध्याय समाप्त।

नाग बोला, हे शुचिस्मिते ! तुमने ब्राह्मण रूपसे जिसे देखा है, वह कौन है ? केवल मनुष्य जातिका ब्राह्मण है अथवा कोई देवता है ? हे यशस्विनी ! मनुष्य होके कौन मुझे देखनेमें समर्थ होसकता है। और दर्शन करनेके निमित्त अभिलाषी होकर कौन इस प्रकार आज्ञासूचक वचन कह सकता है। हे भाविनि ! देवता असुर और महर्षियोंके बीच सुरभिगन्धवाहक बलवान् नागगण ही महावीर्य्यशाली, वन्दनीय और वरद हैं, मैं भी उन्हींका अनुयायी हूं, मुझे यह निश्चय है, कि मैं मनुष्योंका निरीक्ष्य नहीं हूं।

नागपत्नी बोली, हे पवनाशन ! उसका जैसा रूप और सरलता है, उससे जाना जाता है, कि वह देवता नहीं है, वह भक्तिमान और अत्यन्त क्रुद्ध स्वभाववाला ब्राह्मण है। वह जलकी इच्छा करनेवाले बालककी भांति कार्य्यान्तरका अभिलाषी है, जैसे वर्षाप्रिय चातक-पक्षी बादलके बरसनेकी कामना करता है, वैसे ही वह तुम्हारे दर्शनकी आकांक्षा कर रहा है ; तुम्हारे दर्शनके अतिरिक्त वह अन्य किसी विघ्नको नहीं मानता ; समान वंशमें उत्पन्न होके कोई किसीकी उपासना नहीं करता। इसलिये सहज रोष परित्याग करके उसे दर्शन देना तुम्हारा उचित कार्य्य है। उसकी आशाको भङ्ग करके इस समय तुम्हें आत्माको पवित्र जलाना उचित नहीं है, जो लोग आशा करके निकट आया करते हैं, उन लोगोंके आंसूको न पोंछनेसे राजा हो अथवा राजपुत्र ही हो, उसे अवश्य ही भ्रूणहत्याके पापमें लिप्त होना पड़ता है।

मौनावलम्बनसे ज्ञान फलकी प्राप्ति होती है, दानके सहारे महत् यश और सत्य वचनके द्वारा इस लोकमें वाग्मिताका लाभ करके मनुष्य परलोकमें पूजनीय हुआ करता है। भूमि दान करनेसे आश्रमवासी ऋषियोंके पास योग्य स्थान मिलता है, न्याय विषयके प्रतिपादनसे अवश्य ही फल भोग हुआ करता है। अभिप्रेत असंश्लिष्ट आत्म हित कर कर्म्म करके कोई नरकमें नहीं पड़ता, धर्म्म जाननेवाले महात्मा पुरुष ऐसा ही वचन कहा करते हैं।

नाग बोला, हे पतिव्रते ! अभिमानके हेतुसे मुझमें अहङ्कार नहीं है, जाति-दोषसे पहले मैं महान् अहंकारपदसे मत्त था, परन्तु मेरा वह संकल्प जनित रोष इससमय तुम्हारे वचनरूप अग्निसे जलगया, हे साध्वि ! मैंने रोषवशसे अधिक तमोगुण दर्शन नहीं किया, भुजङ्गगण उस विषयका विशेष वक्तव्य कह सकते हैं।

देवराज इन्द्रके साथ द्वेष करनेवाला अत्यन्त प्रतापशाली रावण क्रोधके वशमें होकर युद्धमें रामचन्द्रके द्वारा मारा गया। अन्तःपुरमें स्थित बछड़े परशुरामके द्वारा हरण किये गये, उसे सुनके क्रूरस्वभाव तथा क्रोधी कार्त्तवीर्य्यके सब पुत्र मारे गये। इन्द्रके समान पराक्रमी महाबलवान कार्त्तवीर्य्य भी क्रोधके वशमें होकर जमदग्निपुत्र परशुरामके हाथसे

मारा गया। इसलिये तुम्हारा यह वचन सुनके मैंने तपस्यामें विघ्नकारी और कल्याणयुक्त कार्य्योंके बाधक क्रोधको निग्रह किया।

हे विशालनयनी! जब तुम मेरी अनपायिनी और गुणशालिनी भार्य्या हो, तब मैं अपनी भी विशेष रूपसे प्रशंसा करता हूं। अब मैं उस स्थानमें जाता हूं, जहांपर वह ब्राह्मण निवास करता है, तुमने सब प्रकारसे सारी कथा कही है, अब वह अतिथि ब्राह्मण निःसन्देह कृतकार्य्य होकर प्रस्थान करेगा।

३६० अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, नागराजने मनही मन उस ब्राह्मणके कार्य्यकी चिन्ता तथा विचार करते हुए उसके समीप गमन किया। हे महाराज! स्वभावसे ही धर्म्मवत्सल वह बुद्धिमान नागराज ब्राह्मणके निकट जाके यह मधुर वचन बोला।

हे क्षमाशील! मैं तुमसे प्रश्न करता हूं, तुम क्रोध प्रकाशित न करना। तुम किस निमित्त इस स्थानमें आये हो, तुम्हारा कौनसा प्रयोजन है। हे द्विज! मैं सम्मुख आके स्नेहपूर्व्वक तुमसे पूछता हूं, कि तुम मनुष्यरहित इस निर्ज्जन स्थानमें गोमतीके पवित्र तटपर किसकी उपासना वा आराधना करते हो।

ब्राह्मण बोला, मैं धर्म्माग्रगण्य द्विजश्रेष्ठ पद्मनाभ नागका दर्शन करनेके लिये इस स्थानमें आया हूं, उन्हींके समीप मेरा प्रयोजन है, उनके स्वजनोंके निकट मैंने यह वचन सुना है, कि वह यहांपर नहीं हैं, इतना वृत्तान्त सुनके मैं इस प्रकार उनके आनेकी प्रतीक्षा कर रहा हूं, जैसे कृषक जल-वर्षाकी प्रतीक्षा करते हैं। मैं योगयुक्त और निराहारी रहके उस नागराजके अक्लेश और स्वस्ति होनेके लिये वेद-पाठ करता हूं।

नाग बोला, अहो! तुम क्या ही शुभ चरित्रयुक्त साधु और क्या ही सज्जन हो। हे महाभाग! तुम्हारे चरित्रकी कथा क्या कहूं, तुम मेरे ऊपर अत्यन्त ही स्नेहदृष्टि कर रहे हो। हे विप्रर्षि! मैं वही नाग हूं, तुम मुझे जैसा जानते हो, मैं वैसा ही हूं, तुम इच्छानुसार आज्ञा करो, मै तुम्हारा कौनसा प्रियकार्य्य साधन करूं। स्वजनोंके मुखसे तुम्हारा इस स्थानमें आना सुनकर मैं यहांपर स्वयं तुम्हें देखनेके लिये आया हूं। हे महाभाग विप्रवर! जब तुम इस स्थानमें आये हो, तो आज कृतकार्य्य होकेजाओगे, हे द्विजश्रेष्ठ! तुम विश्वासी होकर मुझे निज अभिलषित विषयके निमित्त आज्ञा करो। तुमने अपने विशेष गुणके सहारे मुझे क्रय किया है, क्यों कि तुमअपना हित परित्याग करके मेरे निमित्त शुभानुध्यायी हुए हो।

ब्राह्मण बोला, हे महाभाग भुजङ्गम! मैं तुम्हारे दर्शनका अभिलाषी होकर यहांपर आया हूं, मैं अर्थानभिज्ञ हूं, इसलिये तुमसे कोई विषय पूछनेकी इच्छा करता हूं। मैं आत्मा अर्थात् जीवका विश्रामस्थान अन्वेषण करते हुए आत्मस्थ अर्थात् समस्त विषयोंसे विरत होके चलचित्तके बीच वासार्थी महाप्राज्ञ आत्माकी उपासना करता हूं, मैं अनुरक्त वा विरक्त नहीं हूं। तुम यशपूरित गभस्तियुक्त चन्द्रकिरण सदृश स्पर्श सुखकर हृदयग्राही आत्म प्रकाशित निज गुणोंके सहारे विख्यात हुए हो। हे अनिलाशन! इसलिये मेरे अन्तःकरणमें जो प्रश्न उपस्थित हुआ है, उसका उत्तर देके तुम उस सन्देहको छेदन करो, इसके अनन्तर फिर मैं अपने प्रयोजनका विषय कहूंगा, वह तुम्हें सुनना उचित है।

३६१ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, तुम पर्य्यायक्रमसे सूर्य्यदेवका एक चक्र रथको खींचनेके निमित्त जाया करते हो, वहांपर यदि कोई आश्चर्य्यविषय दीख पड़ता हो तो उसे मेरे निकट वर्णन करो।

नाग बोला, भगवान् सूर्य्य अनेक आश्चर्य्योंके स्थान हैं, तीनों लोकोंमें स्थित सब प्राणी उन-

होंसे उत्पन्न होते हैं। जैसे पक्षीवृन्द वृक्षकी शाखाके अवलम्बसे निवास करते हैं उस ही प्रकार उनकी सहस्र किरणोंके अवलम्बसे देवताओंके सहित सिद्ध और मुनिवृन्द निवास करते हैं; सूर्य्यकिरणके अवलम्बसे ही महान् वायु जिससे प्रकट होके आकाशमें चलती है, वहांपर इसकी अपेक्षा और आश्चर्य क्या होगा। हे विप्रर्षि! प्रजासमूहकी हितकामनासे उसही वायुको परोक्षितादि रूपसे विभक्त करके जो वर्षाकालमें जल बरसाता है इससे बढ़के और आश्चर्य दूसरा क्या होगा? जिसके मण्डलके मध्यवर्ती आत्मा परम तेजसे प्रदीप्त होकर सब लोकोंको अवलोकन करता है, उससे बढ़के और आश्चर्य क्या होगा? जो आठ महीनेतक पवित्र किरणोंके सहारे आकर्षित जलको फिर कालक्रमसे बरसाता है, इससे बढ़के और आश्चर्य क्या होगा? उसके तेज विशेषमें स्वयं आत्मा प्रतिष्ठित है। जिसके कारण चराचरोंसे युक्त पृथ्वीने बीज धारण किया है, जिसमें महाबाहु शाश्वत अनादि निधनदेव पुरुषोत्तम विराजमान है,—हे विप्र! इससे बढ़के और कौनसा आश्चर्य होगा? निर्म्मल आकाशमें अम्बर मणिके सहारे मैंने जिन सब आश्चर्य्योंका भी आश्चर्य देखा है, उसे तुम्हारे समीप कहता हूं, सुनो।

पहले समयमें मध्याह्नकालके बीच जब भगवान् सूर्य्य सब लोकोंको तपा रहे थे, उस समय आदित्यान्तर तुल्य तेजस्वी दूसरा कोई पुरुष दीख पड़ा। उसने निज तेज और कान्तिके सहारे समस्त लोकोंको प्रकाशित करके मानो आकाश मण्डलको विपाटन करते हुए आदित्य मण्डलकी ओर आने लगा। जिस अग्निमें आहुति की गई है, वैसी अग्नि ज्योतिकी निज तेजपुञ्ज तथा किरणोंके द्वारा आवरण करते हुए, वह अनिर्देश रूपसे द्वितीय सूर्य्यकी भांति आके उपस्थित हुआ, उसके आगमन करते ही भगवान् विवस्वान्ने उससे मिलनेके लिये दोनों हाथ उठाया। उसने भी उनकी पूजा करनेके लिये दक्षिणा हाथ प्रदान किया।

अनन्तर वह आकाशको भेद करके किरण मण्डलमें प्रविष्ट हुआ, वह तेज आदित्यके सङ्ग मिलकर क्षणभरमें एकत्रित हुआ। उस समय उन दोनोंके तेज एकत्रित होने पर हम लोगोंको सन्देह उत्पन्न हुआ, कि रवस्य और आगन्तुक, इन दोनोंमेंसे सूर्य्य कौन है? जब हम लोगोंको ऐसा सन्देह उत्पन्न हुआ, तब हमने दिवाकरसे पूछा, कि आकाशको आक्रमण करते हुए दूसरे सूर्य्यकी भांति जिसने आगमन किया है, वह कौन है?

३६२ अध्याय समाप्त।

सूर्य्य बोले, ये वायुके मित्र अग्निदेव अथवा असुर तथा पन्नग नहीं हैं, इस मुनिने उञ्छवृत्ति व्रतसे सिद्ध होकर स्वर्गमें गमन किया है, यह फल मूलाहारी होके तथा सूखे पत्ते खाकर अन्तमें जल वायु पानके द्वारा जीवन धारण करनेवाले समाधिमें निष्ठावान ब्राह्मण थे। इस ब्राह्मणने वेदपाठसे भगवान भवकी सब भांतिसे स्तुति की थी, इसहीके सहारे स्वर्ग-द्वारका कपाट खोलके इन्होंने स्वर्गधाममें गमन किया है। इसे किसी विषयमें आसक्ति वा अभिलाषा नहीं थी, यह सदा उञ्छवृत्ति और शिलाचार परिप्राप्त वृत्तिके सहारे जीविका निर्व्वाह करता था, यह ब्राह्मण सदा सब प्राणियोंके हितकर कार्य्योंमें रत रहता था। उत्तम गति पानेवाले प्राणियोंके ऊपर देवता, गन्धर्व्व, असुर और पन्नगगण प्रभुत्व करनेमें समर्थ नहीं हैं। हे द्विजश्रेष्ठ! उस सूर्य्यमण्डलमें इसही प्रकार मैंने आश्चर्य अवलोकन किया था। हे ब्रह्मन्! जो मनुष्य इच्छानुसार पूरी रीतिसे सिद्ध होकर उस सिद्धस्थानमें गमन करता है, वह सूर्य्यके सहित पृथ्वीपर परिभ्रमण करनेमें समर्थ होता है।

३६३ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, हे भुजङ्गम! यह अवश्य आश्चर्य है, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है, तुमने यथार्थ कथा कहके मुझे मार्ग दिखाया है, इससे मैं अत्यन्त ही प्रसन्न हुआ हूं। हे साधु भुजङ्ग-सत्तम! तुम्हारा कल्याण हो, मैं गमन करता हूं, सम्प्रेषण और नियोजनके सहारे मैं तुम्हारा स्मरणीय हुआ। नाग बोला, हे द्विज! तुम अपने मनसे कार्य्यको बिना कहे, इस समय कहां जाते हो? तुम जिस निमित्त इस स्थानमें आये हो, उसे वर्णन करो। हे सुव्रत विप्रवर! यह सब पृष्ठ अथवा अपृष्ठ विषय स्नेह वशसे मेरे द्वारा वर्णित हुआ है, तुम मुझे आमन्त्रण करोगे, अनन्तर मेरी अनुमतिके अनुसार निज अभिलषित स्थानपर जानेमें समर्थ होगे। हे विप्रर्षि! तुम प्रणयवान होकर इस स्थानमें मुझे अकेला देखकर वृक्षमूलमें समागत पुरुषकी भांति त्यागके चले जाओगे,—ऐसा करना तुम्हें उचित नहीं है, हे निष्पाप विप्रवर! मैं तुम्हारे ऊपर भक्तिमान हूं, तुम भी निःसन्देह मुझमें अनुरक्त हो, ये सब लोग तुम्हारे ही अनुगत हैं, इसलिये मेरे समान मुझ मित्रके वर्त्तमान रहते तुम्हें क्या चिन्ता है?

ब्राह्मण बोला, हे आत्मतत्त्वके जाननेवाले महाबुद्धिमान् भुजङ्गम! देवता लोग सब प्रकार तुमसे यथार्थ रूपसे पृथक् नहीं हैं, जो तुम हो, वही मैं हूं और जो मैं हूं, वही तुम हो, तुमने जो आदित्यान्तर्वर्त्ती पुरुषकी कथा कही है; तुम मैं और आकाश आदि समस्त भूत सदा उसमें ही निवास कर रहे हैं। हे नाग-राज! मुझे पुण्य सञ्चय विषयमें सन्देह था। हे साधु! अब मैं तुम्हारे उपदेशके अनुसार परमार्थसाधनके लिये उञ्छव्रतका आचरण करूंगा, वही मुझे श्रेष्ठ साधन निश्चय हुआ है, हे साधु! अब मैं तुम्हें आमन्त्रण करता हूं, तुम्हारा कल्याण हो, हे भुजङ्गम! अब मैं कृतार्थ हुआ।

३६४ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे महाराज! वह ब्राह्मण कृत निश्चय होकर नागराजको आमन्त्रण करके दीक्षाभिलाषी अर्थात् दीक्षा और प्रायश्चित्त आदि करके उञ्छव्रत करनेके निमित्त अभिलाषी होकर भृगुवंशमें उत्पन्न हुए च्यवनका आसरा ग्रहण किया। वह च्यवन मुनिके द्वारा संस्कार किये जाने पर धर्म्मनिष्ठावान हुआ। हे राजेन्द्र! महाराज जनकके स्थानपर भार्गव च्यवन मुनिने महात्मा नारद मुनिके निकट यह पवित्र कथा कही थी।

हे भरतश्रेष्ठ! हे राजेन्द्र! अक्लिष्टकर्म्मा नारद मुनिने देवराजके स्थानमें पूछे जानेपर इस कथाको कहा था। हे पृथ्वीनाथ! पहले समयमें देवराज इन्द्रने सब श्रेष्ठ विप्रोंसे यह कल्याणदायिनी कथा कही थी। हे राजन्! जिस समय परशुरामके सङ्ग मेरा अत्यन्त दारुण संग्राम हुआ था, उस समय वसुगणोंने इस कथाको मेरे समीप वर्णन किया था।

हे धार्म्मिकप्रवर महाराज! तुमने यथार्थ रीतिसे मुझसे जो कुछ पूछा था, मैंने तुम्हारे समीप उस पवित्र धर्म्मयुक्त उत्तम कथाको वर्णन किया है। हे भारत! तुमने मुझसे जो प्रश्न किया था, यह वही परम धर्म्म मैंने कहा है। धर्म्मार्थ विषयमें अनभिलाषी वीर पुरुषोंके जितेन्द्रिय होकर निष्काम कर्म्म करनेसे उनके लिये मोक्षका द्वार खुला रहता है।

हे महाराज! वह उञ्छव्रत साधनमें निश्चय करनेवाला ब्राह्मण नागराजकी आज्ञानुसार आत्मकृत्य निबाहते तथा यम नियमको सहन करते हुए उञ्छव्रत अवलम्बनके सहारे जीवन धारण करके वनमें प्रविष्ट हुआ था।

३६५ अध्याय समाप्त।

शान्ति पर्व्व-समाप्त।

महाभारत।

अनुशासन पर्व्व।

नारायण, पुरुषोत्तम नर और सरस्वती देवीको प्रणाम करके जय शब्द उच्चारण करे।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! शोकसे पार होनेके उपाय स्वरूप सूक्ष्म शम अनेक तरहका रूप धरता है इसे आपने कहा है, परन्तु शान्तिका ऐसा प्रभाव सुनके भी स्वजनोंके बध-रूपी शोकसे मेरा अन्तःकरण शान्त नहीं होता है। हे पितामह! इस विषयमें आपने अनेक प्रकार शान्तिके विषय कहे हैं, अनेक प्रकार शम जाननेसे किये हुए पापोंकी शान्ति किस प्रकार हो? हे वीर! आपका शरीर बाणोंसे सब प्रकार परिपूरित और तीव्र घावोंसे युक्त देखकर निज पापोंको सोचके मैं सुख लाभ करनेमें असमर्थ हो रहा हूं। हे पुरुषप्रवर! झरनेवाले पर्व्वतकी भांति आपके रुधिरसे परिपूरित अंगोंको देखकर मैं वर्षाकालके बाद-लकी भांति अवसन्न होता हूं। हे पितामह! इससे बढ़के और क्या कष्ट होगा, कि हमारे लिये शत्रुओंके विरुद्ध खड़े होनेपर मेरी ओरके अर्ज्जुन और शिखण्डी आदिसे आप इस अवस्थामें युक्त पड़े और दूसरे राजा लोग भी पुत्र तथा बान्धवोंके सहित मेरे ही लिये मारे जावें, उससे बढ़के और दुःख क्या है? हे राजन्! हम लोग तथा धृतराष्ट्रके पुत्र काम-क्रोधके वशमें होकर इस निन्दित कर्म्मको कर-केसे कैसी गति पावेंगे। हे प्रजानाथ! दुर्य्योध-नके पक्षमें युद्ध कल्याणकारी बोध होता है, कि वह आपको ऐसी अवस्थामें पड़े हुए नहीं देखता है। मैं आपका नाशक और सुहृदोंका बध करानेवाला होकर आपको पृथ्वीपर पड़े और दुःखित देखकर किसी प्रकार भी शान्ति लाभ करनेमें समर्थ नहीं होता हूं। दुष्टात्मा कुलनाशक दुर्य्योधन युद्धमें सब सेना और सहो-दर भाइयोंके सहित, इस क्षत्रधर्म्मसे मरा है; वह दुष्टात्मा इस समय आपको पृथ्वीपर पड़े हुए नहीं देखता है, इसलिये मैं मरना ही कल्याणकारी समझता हूं, जीवनको इस समय उत्तम नहीं समझता। हे वीर! हे अच्युत! पहले यदि मैं भाइयोंके सहित मारा जाता, तो आपको इस प्रकार बाणोंसे पीड़ित और दुःखसे आर्त्त न देखता। इसलिये, हे नरनाथ! मुझे निश्चय बोध होता है, कि विधाताने हम लोगोंको पापकर्म्म करनेके ही लिये उत्पन्न किया है। हे राजन्! आप यदि मेरी प्रियकामना करते हों, तो उपदेश करिये कि जन्मान्तरमें किस प्रकार इस पापसे मुक्त हूंगा।

भीष्म बोले, हे महाभाग! काल, प्रारब्ध और ईश्वरके आधीनमें रहनेवाले आत्माको तुम किस लिये पाप पुण्यका कारण समझते हो? आत्माका अकर्त्तृत्व सूक्ष्म है, इससे वह मनसे प्रत्यक्ष नहीं होता, इसलिये अतिन्द्रिय है, प्राचीन लोग इस विषयमें काल, व्याधा, सर्पके सहित मृत्यु और गौतमीके सम्वादयुक्त इस पुरातन इतिहासको कहा करते हैं। वे

कुन्तीपुत्र ! गौतमी नामी एक शम गुणसे युक्त बूढ़ी ब्राह्मणीने निज पुत्रको सांपके काटनेसे चेत-रहित देखा। अनन्तर अर्जुन नाम किसी व्याधाने क्रोधके वशमें होकर उस सांपको तांतकी जालसे बांधके गौतमीके समीप लाकर कहा ; हे महाभागे ! यह अधम सर्प तुम्हारे पुत्रका नाशक है, इसलिये किस प्रकार इसका वध करूं, सो शीघ्र कहो। इसको आगमें डालूं अथवा टुकड़े टुकड़े करके काटूं ? यह बालकका नाशक पापात्मा बहुत समय तक जीवित रहनेके योग्य नहीं है।

गौतमी बोली, हे अर्जुन ! तुम इसे छोड़ दो तुम्हें बुद्धि नहीं है, तुम इसका वध न करना। कौन पुरुष प्राप्त होनेवाली शोक-चिन्ता न करके अपनेको पापभारसे नरकमें डाला करता है। इस लोकमें धर्मसे जो लोग हलके हुए हैं, वेही जलके बीच नौकाकी भांति दुःखरूपी समुद्रसे पार होते हैं, और जो लोग पापके द्वारा भारी हुए हैं, वे जलके बीच गिर हुए शस्त्रकी भांति डूब जाते हैं। इसे मारनेसे मेरा मरा हुआ पुत्र जीवित न होगा, और इस सर्पके जीते रहनेसे ही तुम्हारी कौनसी बुराई होगी। इस प्राणयुक्त जीवको मारके कौन पुरुष अनन्त नरकमें जायगा।

व्याधा बोला, हे गुण और गुणोंको जाननेवाली देवी ! मैं जानता हूं, बड़े लोग सबकीही पीड़ासे पीड़ित हुआ करते हैं ; परन्तु ये सब उपदेश अपने चङ्गेके लिये हैं, दुःखितके वास्ते नहीं हैं, इसलिये इस क्षुद्र सर्पको मैं मारता हूं। शमयुक्त मनुष्य "कालके सहारेही इस पुरुषका नाश हुआ है" ऐसा समझकर शोक नहीं करते और प्रति-कार करनेवाले पुरुष उस ही समय शत्रुको मारके शोक परित्याग किया करते हैं, दूसरे लोग नित्य मोह निबन्धनसे कल्याणका नाश होता है, जानके शोक प्रकाश करते हैं, इसलिये मेरे हाथसे इस सांपके मरनेसे तुम शोक परित्याग करो।

गौतमी बोली, मेरे समान लोगोंको इस प्रकार पुत्र शोक जनित पीड़ा नहीं होती, क्यों कि सज्जन लोग सदा ही धर्मपरायण हुआ करते हैं ; इस बालककी मृत्युका यही समय निर्द्दिष्ट था। इसलिये इस सांपके नाश करनेमें असमर्थ हूं। ब्राह्मणोंमें क्रोध न होना चाहिये क्यों कि कोपके कारण दुःख हुआ करता है। हे साधु ! इसलिये तुम मृदुता अवलम्बन करके क्षमा करो और इस सर्पको छोड़ दो।

व्याधा बोला, इसे मारनेसे परलोककी हितकर अविनश्वर गति प्राप्त होगी जैसे यज-मान पशुओंको मारके अपने सङ्ग पशुओंको भी स्वर्गमें लेजाता है, वैसे ही शूर पुरुषोंको बलि-दानसे बड़ाई मिलती है। इस निन्दित अपकारी शत्रुके मरनेसे जो लाभ होगा, वह क्या तुम्हारे सम्बन्धमें शाश्वत सत्य और कल्याणकारी नहीं है।

गौतमी बोली, शत्रुको पराजित करके मारनेसे क्या लाभ है। और शत्रुको अपने वशमें करके फिर उसे छोड़ देनेसे क्या इष्ट-सिद्धि नहीं होती ? हे प्रिय दर्शन ! इसलिये किस निमित्त इस सर्पके विषयमें क्षमा न करूंगी और किस कारणसेही इसके छुड़ानेके निमित्त यत्नवती न हूंगी ?

व्याधा बोला, हे गौतमी ! इस एक जीवसे अनेक प्राणियोंकी रक्षा करना उचित है और अनेकको त्यागके एकको रक्षा करनी योग्य नहीं है। धर्म जाननेवाले मनुष्य अपराधीको नष्ट किया करते हैं, इसलिये तुम इस पापी सांपका वध करो।

गौतमी बोली, हे व्याध ! इस सर्पके मार-नेसे मेरा पुत्र जीवित न होगा और इसका वध करनेसे और कुछ पुण्य भी नहीं दीखता है, इसलिये इस सर्पको जीते ही छोड़ दो।

व्याधा बोला, इन्द्रने वृत्रासुरको मारके श्रेष्ठ भाग लाभ किया है, शूलधारी महादेवने यज्ञ नष्ट करके यज्ञ-भाग पाया है, इसलिये देवता-